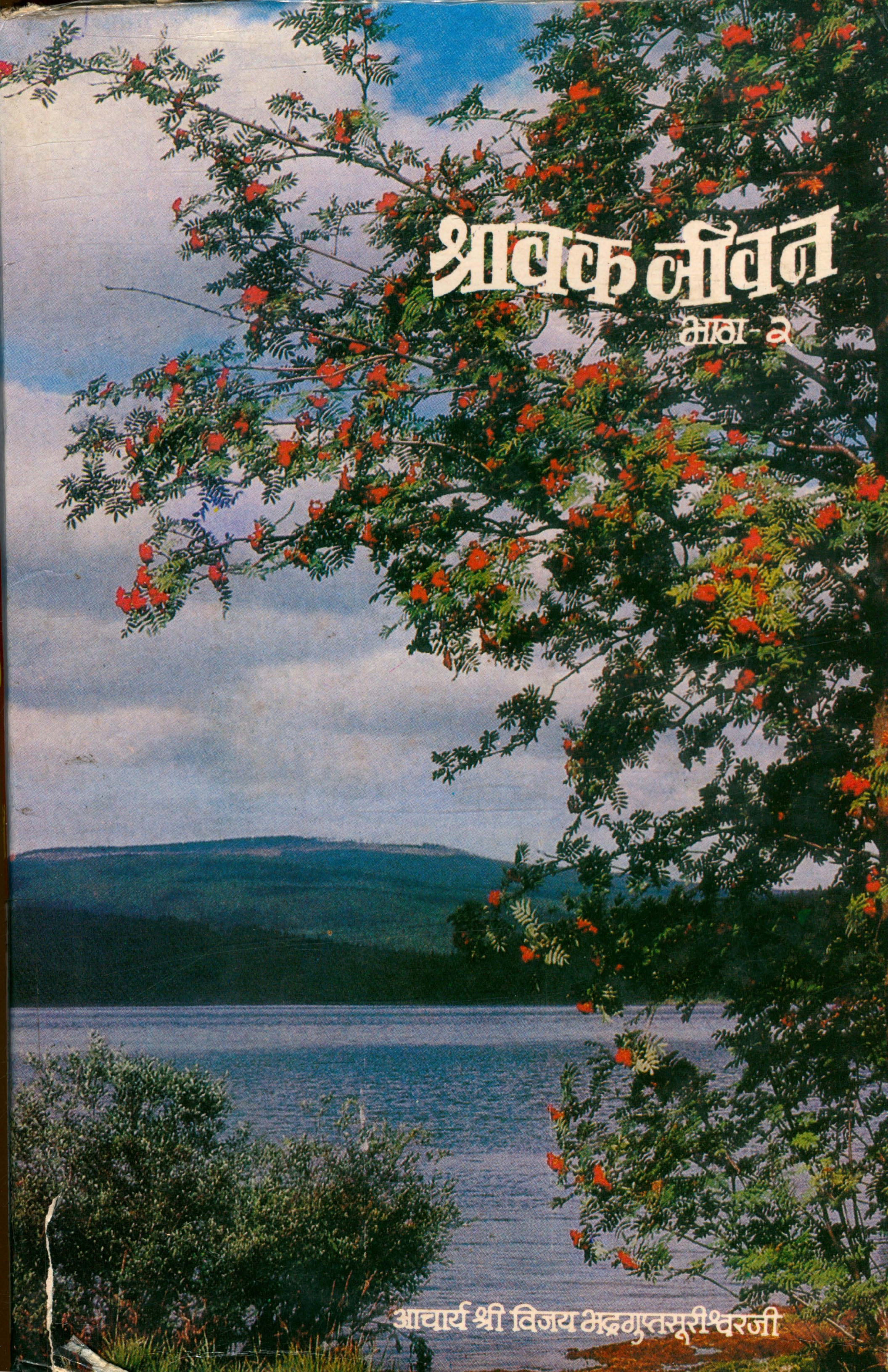
श्रावक जीवन
भाग २
आचार्य श्री विजय भद्रगुप्तसूरीश्वरजी

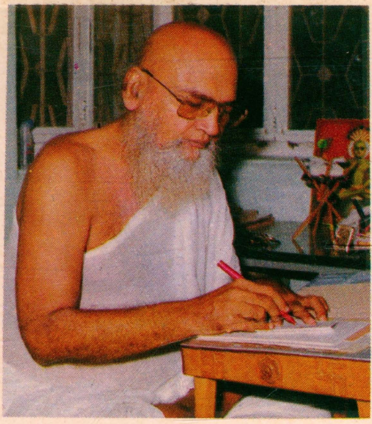

**प्रवचनकार व साहित्य सर्जक**
**आचार्य श्री विजय भद्रगुप्तसूरीश्वरजी.**

श्रावण शुक्ला १२ वि. सं. १९८९ के दिन पुदगाम-मेहसाणा (गुजरात) में मणीभाई एवं हीराबहन के कुलदीपक के रुप में जन्मे हुए मुलचन्दभाई, जूही की कली की भांति खिलती-खुलती ज़वानी में १८ बरस की उम्र में वि. सं. २००७, महा वद ५ के दिन राणपुर (सौराष्ट्र) में अपने परम श्रद्धेय सुप्रसिद्ध जैनाचार्य भगवंत श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराजा के करकमलों द्वारा दीक्षित होकर पू. भानुविजयजी (वर्तमान में आ. श्रीमद् विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी) के शिष्य बनते है। मुनिश्री भद्रगुप्तविजयजी के रूप में दीक्षा-जीवन के प्रारंभ से ही अध्ययन-अध्यापन की सुदीर्घ यात्रा प्रारंभ हो चुकी थी। ४५ आगमों के सटीक अध्ययनोपरांत दार्शनिक, भारतीय एवं पाश्चात्य तत्वज्ञान, काव्य-साहित्य वगैरह के 'मीलस्टोन' पास करती हुई वह यात्रा सर्जनात्मक क्षितिज की तरफ मुड़ गई। 'महापंथ नो यात्री' से २० साल की उम्र में शुरू हुई लेखनयात्रा आज भी अथक एवं अनवरत चल रही है। तरह तरह का मौलिक साहित्य, तत्वज्ञान विवेचना, दीर्घकथाएं, लघु कथाएं काव्य गीत पत्रों के जरिये स्वच्छ व स्वस्थ मार्गदर्शन, यों साहित्य सर्जन का सफर दिन व दिन भरापूरा बन रहा है। प्रेमभरा हँसमुख स्वभाव, प्रसन्न व मृदु आंतर-बाह्य व्यक्तित्व एवं बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय वैसी प्रवृत्तियां उनके जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। संघ-शासन विशेष करके युवा पीढी, तरुण पीढी एव शिशु-संसार के जीवन-निर्माण की प्रक्रिया में उन्हें रुचि है... संतुष्टि है। प्रवचन, वार्तालाप, संस्कार-शिबिर, जाप-ध्यान अनुष्ठान एवं परमात्म भक्ति के विशिष्ट आयोजनों के माध्यम से उनका सहिष्णु व्यक्तित्व भी उतना ही उन्नत एवं उज्वल बना है। मुनिश्री जानने योग्य व्यक्तित्त एवं महसूसने योग्य अस्तित्व से सराबोर है। कोल्हापूर में ता. ४-५-८७ के दिन उनके गुरुदेव ने उन्हें आचार्यपद प्रदान किया तब से वे **आचार्यश्री विजय भद्रगुप्तसूरीश्वरजी महाराज** के नाम से जाने जाते है।

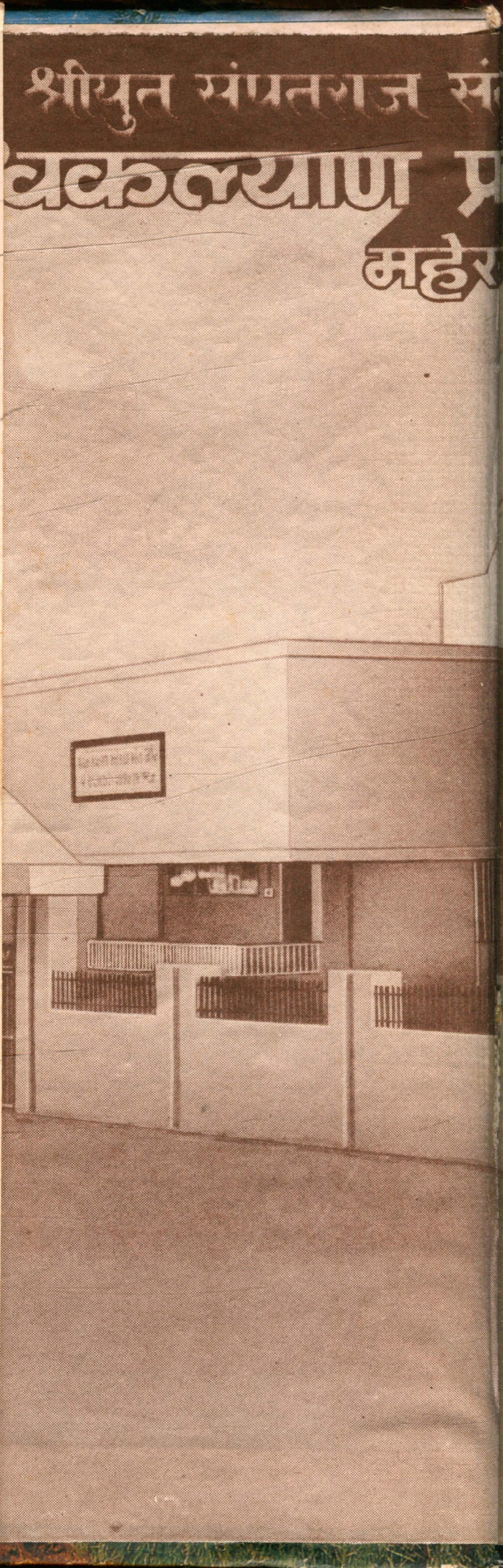

# श्रावक जीवन

## भाग : दूसरा

आचार्यश्री हरिभद्रसूरि-विरचित "धर्मबिंदु" ग्रंथ के तीसरे अध्याय पर दिये गये मननीय, रसपूर्ण और प्रेरणादायी प्रवचन.

(प्रवचन : २४ से ४७)

: प्रवचनकार :

आचार्यदेवश्री विजयभद्रगुप्तसूरीश्वरजी

**प्रकाशक : श्री विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्ट,** मेहसाना–३८४००२.

**मूल्य :** ५० रुपये/प्रथम आवृत्ति/प्रत : ३०००/वि. सं. २०४९, मागसर

**लेसर टाईपसेटिंग :** मेक ग्राफिक, अहमदाबाद–३८०००६.

**मुद्रक :** महेश मुद्रणालय, अहमदाबाद.

# प्रासंगिक

'धर्मबिंदु' ग्रंथ के पहले अध्याय पर आधारित ९६ प्रवचनों का प्रकाशन "धम्मं सरणं पवज्जामि" के नाम से चार भागों में किया था। आज वे चारों भाग अनुपलब्ध हैं। उनका पुनः प्रकाशन होगा दो भागों में। एक–एक भाग में ४८/४८ प्रवचनों का संकलन छपेगा।

इसी ग्रंथ के तीसरे अध्याय पर भी संभवतः ९६ प्रवचन प्रकाशित होंगे। "**श्रावक जीवन**" पहले भाग में २३ प्रवचन प्रकाशित हुए हैं। दूसरे भाग में २४ से ४७ प्रवचन प्रकाशित कर रहे हैं। तीसरा भाग प्रेस में जाने की तैयारी में है।

यदि मनुष्य को अच्छा जीवन जीना है; सात्त्विक, धार्मिक और आदर्शयुक्त जीवन जीना है, तो ये सारे प्रवचन उनके लिए मार्गदर्शक बन सकेंगे। अनेक उदाहरण और अनेक तर्क के द्वारा, इन प्रवचनों में उन्नत और उदात्त जीवन जीने के मार्ग बताए गए हैं। वर्तमानकालीन मानवसमाज के सामने ये सारे प्रवचन दिए गए हैं।

आप इन प्रवचनों को शान्ति से पढ़ें। पढ़कर चिंतन–मनन करें। आप क्या–क्या कर सकते हैं.... इसकी नोट्स करें और प्रयोगात्मक ढंग से कुछ करना शुरू करें। दैनिक जीवनचर्या में शक्य परिवर्तन करें। 'यह तो नहीं हो सकता, यह तो अशक्य है....' वगैरह निर्बल विचार नहीं करें।

मनुष्य जीवन दुर्लभ है। इस जीवन का हो सके इतना सदुपयोग कर, आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर होते रहें, यही मंगल कामना।

पंचगीनी
मागसर–पूर्णिमा, २०४९

**भद्रगुप्तसूरि**

# धर्मबिंदुः सूत्राणि

* समान धार्मिकमध्ये वासः ॥४०॥
* वात्सल्यमेतेष्विति ॥४१॥
* धर्मचिन्तया स्वपनम् ॥४२॥
* नमस्कारेणावबोधः ॥४३॥
* प्रयत्नकृतावश्यकस्य विधिना चैत्यादिवंदनम् ॥४४॥
* सम्यक् प्रत्याख्यान क्रिया ॥४५॥
* यथोचितं चैत्यगृहगमनम् ॥४६॥
* विधिनाऽनुप्रवेशः ॥४७॥
* उचितोपचार करणम् ॥४८॥
* भावतः स्तवपाठः ॥४९॥
* चैत्यसाधु वन्दनम् ॥५०॥
* गुरुसमीपे प्रत्याख्यानाभिव्यक्तिः ॥५१॥
* जिनवचन श्रवणे नियोगः ॥५२॥
* सम्यक् तदर्थालोचनम् ॥५३॥
* आगमैकपरता ॥५४॥
* श्रुतशक्यपालनम् ॥५५॥
* अशक्ये भावप्रतिबन्धः ॥५६॥
* तत्कर्त्तृषु प्रशंसोपचारौ ॥५७॥
* निपुणभावचिन्तनम् ॥५८॥
* गुरुसमीपे प्रश्नः ॥५९॥
* निर्णयावधारणम् ॥६०॥
* ग्लानादिकार्याभियोगः ॥६१॥
* कृताकृतप्रत्युपेक्षा ॥६२॥
* उचितवेलयाऽऽगमनम् ॥६३॥
* धर्मप्रधानो व्यवहारः ॥६४॥
* द्रव्ये संतोषपरता ॥६५॥
* धर्मे धनबुद्धिः ॥६६॥
* शासनोन्नतिकरणम् ॥६७॥
* विभवोचितं विधिना क्षेत्रदानम् ॥६८॥
* सत्कारादिर्विधिः निःसंगता च ॥६९॥
* वीतराग धर्मसाधवः क्षेत्रम् ॥७०॥
* दुःखितेष्वनुकम्पा यथाशक्ति द्रव्यतो भावतश्च ॥७१॥

# प्रवचन : २४

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी, स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में गृहस्थ जीवन का विशेष धर्म बता रहे हैं। बारह व्रतों का विशेष धर्म बताने के पश्चात् वे व्रतधारी गृहस्थ की सामान्य जीवनचर्या बता रहे हैं । व्रतमय जीवन सुरक्षित रहे, इस द्रष्टि से ग्रंथकार आचार्यदेव ने जीवनचर्या बतायी है । सामान्यतः सभी व्रतधारियों के लिए यह जीवन–पद्धति बतायी है । विशिष्ट संयोग पैदा होने पर, इस जीवन–पद्धति में परिवर्तन किया जा सकता है । द्रष्टि व्रतसुरक्षा की रहनी चाहिए ।

## ज्ञानी पुरुष सर्वांगीण द्रष्टिवाले होते हैं :

व्रत देने मात्र से या लेने मात्र से कार्य पूर्ण नहीं होता है । व्रत देनेवालों को चाहिए कि व्रत लेनेवाला ठीक ढंग से व्रतपालन कर सके, वैसा मार्गदर्शन दें । व्रत लेनेवालों को चाहिए कि वे व्रत लेने मात्र से अपने आपको कृतार्थ नहीं समझें । व्रत देनेवाले ज्ञानीपुरुष एकांगी नहीं होने चाहिए, उनकी द्रष्टि सर्वांगीण होनी चाहिए । 'व्रत लेनेवाला गृहस्थ कहाँ रहता है ? उस स्थान में– वैसी 'लोकालीटी' में वह व्रतपालन कर सकेगा क्या ? जिस परिवार में वह रहता है, उस परिवार में वह ठीक ढंग से व्रतपालन कर सकेगा क्या ?' ऐसी अनेक बातें सोचने की होती हैं । ऐसी बातें सोचे बिना यदि व्रत दिये जाते हैं, तो प्रायः प्रतिकूल संयोगों में व्रतधारी मनुष्य व्रतभंग कर देता है । व्रतभंग नहीं करता है, तो व्रतों को दूषित करता है । इसलिए सर्वप्रथम, व्रतधारी को कहाँ रहना चाहिए, उसका घर कैसी जगह होना चाहिए – यह बात ग्रंथकार बताते हैं !

**'समान धार्मिकमध्ये वासः ।'**

आपको वैसी जगह में रहना चाहिए कि जहाँ आपके समान धर्मवाले लोग रहते हों ! आप जिस धर्म को मानते हैं, उसी धर्म को माननेवाले जहाँ रहते हों, वहाँ आपको रहना चाहिए ।

## समान धर्मवालों के पास रहें :

यह बात ग्रंथकार ने किस दृष्टि से कही है—समझे न ? आपके व्रतमय जीवन की सुरक्षा की दृष्टि से कही है यह बात। कभी आपका मन व्रतों के प्रति लापरवाही करे, आप व्रतपालन में दोष लगायें, उस समय आपका साधर्मिक आपको प्रेरणा देकर, व्रतपालन में दृढ़ कर सकता है। साधर्मिकों का परस्पर यह कर्तव्य होता है। आप भी दूसरे साधर्मिकों को प्रेरणारूप बन सकते हैं।

इस विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें सोचनी पड़ेगी।

– रहने के लिए जगह की पसंदगी किस दृष्टि से करना।

– साधर्मिक परिवारों के साथ मैत्री का संबंध बनाये रखना।

– आसपास रहनेवाले साधर्मिकों के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना।

इसमें पहली महत्त्वपूर्ण बात है रहने के लिए जगह की पसंदगी। यदि आप बंबई, मद्रास, बेंगलोर, दिल्ली, कलकत्ता, अहमदाबाद जैसे बड़े नगरों में रहते हैं, आपके आसपास साधर्मिक (जैन) रहते हैं और आप जिस बिल्डिंग में रहते हैं, उस बिल्डिंग में सभी जैन रहते हैं – तब तो कोई प्रश्न नहीं है.... ।

**सभा में से :** परंतु यदि हम 'व्रतधारी' नहीं हैं, तो साधर्मिकों के साथ रहना क्या आवश्यक है ?

**महाराजश्री :** हाँ, चूँकि भले आप व्रतधारी नहीं हैं, जैन तो हैं न ! आपको यदि अपना जैनत्व निभाना है, जैन के आचार–विचारों को जीना है, तो भी आपको जैनों के साथ रहना होगा। जैनाचारों के पालन के आग्रही जैनों के साथ रहना होगा ! मात्र नाम के जैनों के साथ रहने से ज्यादा लाभ नहीं है।

## जैनों में भी आचारभ्रष्टता बढ़ रही है :

चूँकि जो जैन–परिवार साधु–साध्वी के परिचय में नहीं होते हैं, जिनको धर्म का उपदेश सुनने को नहीं मिलता है, जैनधर्म का साहित्य पढ़ने को नहीं मिलता है..... यानी जो लोग जैनधर्म से दूर हैं...... वैसे जैन–परिवारों में जैनाचारों का पालन नहीं होता है। वे लोग रात्रिभोजन करते हैं, जमीनकंद खाते हैं, बासी रोटी खाते हैं, कुछ लोगों के घर में शराब शुरू हो गई है, कुछ लोग अंडे भी खाने

लगे हैं..... जैन-परिवारों में विडियो आ गये.... उनमें गंदी फिल्में देखी जाती हैं..... सदाचार और व्यभिचार के भेद भूल गये हैं..... ऐसे लोग, भले जैन हों, उनके पास रहने से आपका व्रतमय जीवन सुरक्षित नहीं रहेगा ।

और, आज तो घर-घर में कॉलेज की डिग्रीवाले माता-पिता और लड़के-लड़कियाँ हो गये ! धर्म के विषय में वाद-विवाद करते रहते हैं । 'धर्म क्यों करना चाहिए ?' ऐसे प्रश्न करेंगे, परंतु 'पाप क्यों करना चाहिए ?' इस प्रश्न का जवाब उनके पास नहीं होता है । वे लोग ऐसे कुतर्क करते रहते हैं कि यदि आपके पास उनको चुप करने की बुद्धि नहीं होगी, उनको प्रभावित करने की प्रतिभा नहीं होगी, तो वे लोग आपके व्रतमय जीवन की भावना को नष्ट कर सकते हैं । ऐसे जैनों के साथ रहने के बजाय, श्रद्धावान और धार्मिक प्रकृतिवाले अजैन लोगों के साथ रहना अच्छा होता है । वे लोग आपकी धर्मभावना नहीं तोड़ेंगे । यदि वे मध्यस्थ भाववाले लोग होंगे, तो वे आपके जैनाचारों की सराहना करेंगे । कभी कभी आपके साथ वे मंदिर आयेंगे, उपाश्रय में व्याख्यान सुनने आयेंगे, उपवास भी कभी कर लेंगे ! जैनधर्म की प्रशंसा करेंगे ।

## बड़े शहरों की समस्याएँ :

बड़े शहरों में, यदि पहले से - ५०-६० साल से - आप अच्छी जगह में रह रहे हो तब तो चिंता नहीं, परंतु आज यदि आप साधर्मिकों के पास रहने जाओ, तो जगह मिलना मुश्किल है । अच्छी लोकालीटी में, लाखों रुपये के बिना जगह नहीं मिलती है ।

**सभा में से :** आजकल व्रतधारी श्रावक-श्राविका बहुत कम होंगे ?

**महाराजश्री :** बहुत कम है । बारह व्रतों का स्वीकार कर, व्रतमय जीवन जीनेवाले श्रावक-श्राविकाएँ बहुत कम संख्या में हैं । ऐसी स्थिति में, व्रतधारी के साथ रहने की बात सरल नहीं है । पहले की तरह मुहल्ले और शेरी, पोल वगैरह की व्यवस्था अब नहीं रही है । हाँ, जैनों की सोसायटियाँ होती हैं । यदि आप जैन लोगों की सोसायटी में रहते हैं, तो भी जैनाचारों के पालन में सरलता रह सकती है । सुख-दुःख में एक-दूसरे के सहयोगी बन सकते हैं । परंतु यह बात तभी संभव हो सकती है, जब आपस में मैत्रीभाव हो ! आपस में स्नेहभाव

हो।

## साधर्मिक मैत्री आवश्यक है :

आपके पास अच्छा साधर्मिक परिवार रहता है, अच्छा सदाचारी परिवार है, परंतु यदि उस परिवार के साथ आप झगड़ा करते हैं, उस परिवार की निंदा करते हैं, तो वह परिवार आपके लिये उपयोगी नहीं बन सकता। आप व्रतधारी हैं, परंतु यदि आपके हृदय में आपके साधर्मिकों के प्रति मैत्रीभाव नहीं है, स्नेहभाव नहीं है, तो आपका साधर्मिकों के पास रहना व्यर्थ है। मैत्रीभाव–स्नेहभाव तभी बनता है, जब आपका परिवार किसी से भी झगड़ा करना, लड़ना, निंदा करना पसंद नहीं करता है। मैत्रीभाव बनाये रखने के लिए कभी छोटा–बड़ा नुकसान भी सहन करना पड़ता है। कभी कुछ त्याग भी करना पड़ता है।

पहली बात तो, अच्छा साधर्मिक परिवार मिलना ही मुश्किल है। क्या आप दूसरों के लिए अच्छे परिवार का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं ? आपके आसपास रहनेवाले साधर्मिकों का खयाल करते हो ? उनके लिए हितकारी बातें सोचते हो ?

– कौन साधर्मिक सुखी है, कौन दुःखी है ?

– कौन जैनाचारों का पालन करते हैं, कौन नहीं करते हैं ?

– कौन गुणानुरागी हैं, कौन निन्दा करने के अभ्यस्त हैं ?

इस प्रकार जानकारी प्राप्त कर, समान धर्मवालों का व समान विचारवालों का एक संघ स्थापित कर, परमार्थ के कार्य करने चाहिए। जो धर्मविमुख हों उनके साथ मैत्री स्थापित कर, उनको धर्म–सन्मुख बनाने चाहिए। जो अनाचार और दुराचार के मार्ग पर हैं, उनसे प्रेमभाव स्थापित कर, उनको सदाचार के मार्ग पर ले आने चाहिए। एक बात याद रखना कि मैत्रीभाव स्थापित किये बिना आप किसी को भी सही रास्ते पर नहीं ला सकेंगे।

सभा में से : हम लोग तो गिरे हुए की निंदा करते हैं, उनका तिरस्कार करते हैं !

महाराजश्री : क्योंकि उनके प्रति आपके हृदय में प्रेम नहीं है। मैत्रीभाव

नहीं है । प्रेम होगा तो निन्दा नहीं होगी, मैत्री होगी तो तिरस्कार नहीं होगा । इसलिए कहता हूँ कि सभी जीवों के प्रति मैत्रीभाव पैदा करें । साधर्मिकों के प्रति विशेष रूप से प्रेमभाव स्थापित करें ।

ग्रंथकार आचार्यश्री ने समान धार्मिकों के साथ रहने का जो मार्गदर्शन दिया है, उसका मूल हेतु यही है : एक–दूसरे की जीवनयात्रा में सहयोगी बनने का। एक–दूसरे को सहयोगी तभी बन पायेंगे, जब एक–दूसरे के प्रति मैत्रीभाव होगा, स्नेहभाव होगा । साधर्मिकों के साथ रहकर भी, यदि उनके साथ वैर–विरोध करते हैं, तो साथ रहने का कोई विशेष महत्त्व नहीं रहता है । इसलिए ग्रंथकार ने आगे का सूत्र दिया है –

'वात्सल्यमेतेषु ।'

साधर्मिकों के प्रति वात्सल्य होना चाहिए ! 'वात्सल्य' के रचनात्मक प्रकार बताते हुए टीकाकार आचार्यश्री कहते हैं :

– साधर्मिकों को अपने घर आमंत्रित कर, उनको भोजन कराना ।

– मिलने के लिए आये तो उनको पानी वगैरह पेय देना, मुखवास देना ।

– साधर्मिक बीमार हो तो उनके पास जाना, सुखशाता पूछना, उनके पास बैठना, रात्रि के समय बीमार की सेवा में रहना । हॉस्पिटल में जाना आवश्यक हो तो हॉस्पिटल में जाना । यदि दुःखी साधर्मिक हो तो उनको आर्थिक सहाय भी करनी चाहिए, यदि आप संपन्न श्रावक हैं तो !

ये हैं साधर्मिक वात्सल्य के रचनात्मक प्रकार । परंतु मूल में होना चाहिए मैत्रीभाव । परस्पर मैत्रीभाव होना चाहिए । एक–दूसरे के वहाँ आने–जाने से, भोजन करने से, अच्छी वस्तुओं का आदान–प्रदान करने से, एक–दूसरे की सेवा (बीमारी में) करने से मैत्रीभाव में वृद्धि होती है । यदि शत्रुभाव होता है, तो बीमारी में, अवसरोचित सेवा करने से, शत्रुभाव मिट जाता है, मैत्रीभाव जागृत हो जाता है ।

## बीमारी में सेवा करें :

एक छोटे शहर की घटना है । एक मुहल्ले में दो जैन–परिवार पास–पास

में रहते थे। दोनों परिवारों में अच्छा प्रेम था। एक–दूसरे के घर में दिन में दस बार आते–जाते होंगे। रसोई में कोई भी अच्छी वस्तु बनाते तो दूसरे घर वह वस्तु अवश्य पहुँच जाती। एक–दूसरे के सुख–दुःख की बातें करते रहते। तीर्थयात्रा करने जाते तो दोनों परिवार साथ जाते। ऐसा घनिष्ठ प्रेम था दोनों परिवारों का।

परंतु एक दिन इस प्रेम के हजार टुकड़े हो गये। एक छोटी–सी बात... आग में बदल गयी और प्रेम जलकर राख हो गया। दोनों घर के छोटे–छोटे बच्चे आपस में लड़े–झगड़े। लड़ाई–झगड़ा औरतों में पहुँचा। १० वर्ष में यह पहली लड़ाई थी, पहला झगड़ा था। बात शाम को पुरुषों में पहुँची। परंतु दोनों घर के पुरुषों ने मौन धारण किया। क्योंकि दोनों घर के पुरुषों ने पहले से निर्णय किया हुआ था कि 'महिलाओं में कभी झगड़ा हो सकता है, परंतु महिलाओं की बातें सुनकर हमें झगड़ा नहीं करना है!'

आप लोगों को ऐसी प्रतिज्ञा लेनी है क्या? औरतों के झगड़े आपको मोल नहीं लेना है। उनकी बातें सुनकर तुरंत किसी से झगड़ना नहीं! यदि यह प्रतिज्ञा ले लो तो ६० प्रतिशत झगड़े खत्म हो जाय!

**सभा में से :** महिला की बात सही हो तो भी नहीं मानने की क्या?

**महाराजश्री :** झगड़ा करने की बात नहीं मानने की! सही बात मानने से कौन इन्कार करता है? सही बात मानने की तत्परता हो, तो हमारी बातें मानो न? हम सही बात ही कहते हैं न? झगड़ा करने की बात से दूर रहो।

वे दोनों घर के पुरुष समझदार थे। महिलाओं ने उनको उकसाने का बहुत प्रयत्न किया, परंतु वे शान्त रहे। परंतु दो घरों का व्यवहार टूट गया। बोलने का व्यवहार भी नहीं रहा। एक घर के प्रमुख का नाम था अवनीशभाई और दूसरे परिवार के प्रमुख का नाम था रजनीशभाई। दोनों की समझदारी से एक वर्ष तक कोई कलह या झगड़ा नहीं हुआ। औरतों ने भी झगड़ा नहीं किया। क्योंकि घर में प्रभुत्व पुरुषों का था। घर में समझदारों का प्रभुत्व रहने से घर बुराइयों से बचता है। समझदार स्त्री हो या पुरुष हो। समझदार स्त्री का प्रभुत्व रहता है तो भी अच्छा है।

एक दिन की बात है । दोपहर का समय था । अवनीशभाई अपने घर में आराम कर रहे थे । अचानक रजनीशभाई के घर में से औरत की चीख सुनायी दी । अवनीशभाई खड़े हुए । घर से बाहर आये । औरत की कराहने की आवाज सुनायी दी । उन्होंने अपनी पत्नी को बुलाकर गंभीरता से कहा : 'जरा उस घर में जाकर देखो.. क्या बात है ?' एक बार तो औरत ने पति के सामने देखा और खड़ी रही । अवनीश ने कहा : 'क्यों खड़ी है ? तू नहीं जाती है तो मुझे जाना पड़ेगा । कोई महिला दर्द से कराह रही है ।' आगे अवनीश और पीछे उनकी पत्नी, रजनीशभाई के घर में गये ।

घर में अकेली औरत थी, रजनीशभाई की पुत्रवधू । वह 'प्रेग्नन्ट' थी और पेट में घोर वेदना हो रही थी । प्रसव की वेदना थी । घर में और कोई भी स्त्री-पुरुष नहीं थे । अवनीश ने अपनी पत्नी को कहा : 'तू शोभा के पास बैठ, मैं गाड़ी निकालता हूँ । तुरंत ही हॉस्पिटल में भर्ती करा देना चाहिए ।' अवनीश ने अपनी गाड़ी निकाली । शोभा को गाड़ी में बिठाया । घर बंद कर, ताला लगाया और तीनों हॉस्पिटल पहुँचे । शोभा को भर्ती कर, अवनीश ने रजनीशभाई को ऑफिस में फोन किया । सारी परिस्थिति बता दी । 'आप यहाँ आयेंगे, तब तक हम दोनों शोभा के पास हैं, किसी प्रकार की चिंता नहीं करें ।' फोन कर, अवनीश कमरे के बाहर बैठे ही थे कि उनकी पत्नी ने आकर कहा : 'शोभा ने पुत्र को जन्म दिया है ।' अवनीश आनंदित हुए ।

आधे घंटे में रजनीशभाई की गाड़ी हॉस्पिटल पहुँची । अवनीश द्वार पर ही खड़े थे । उन्होंने रजनीश को समाचार दिये : 'शोभा ने पुत्र को जन्म दिया है और दोनों कुशल हैं ! तुम्हारी भाभी शोभा के पास है, मैं जाता हूँ ।'

रजनीश की पत्नी वगैरह औरतें हॉस्पिटल में शोभा के पास चली गई, परंतु रजनीश ने अवनीश का हाथ पकड़ लिया । रजनीश के बड़े पुत्र कोशल ने अवनीश के चरणों में प्रणाम किया । पिता-पुत्र दोनों की आँखें आँसूओं से भर गई । रजनीश बोले : 'अवनीशभाई, आपने हमारे पर महान उपकार किया है, आपने शोभा के प्राण बचाये, आनेवाले बच्चे के प्राण भी बचाये, हम आपका उपकार जिंदगीपर्यंत नहीं भूलेंगे ।' अवनीश कुछ नहीं बोले । खड़े रहे ।

कोशल बोला : 'अंकल, जब तक शोभा घर नहीं आयेगी, तब तक हम भोजन आपके घर करेंगे !' अवनीश ने कोशल के सर पर हाथ फेरते हुए कहा : 'बेटा, तेरा ही घर है ! अवश्य, भोजन अपने साथ बैठ कर करेंगे। इससे तेरी चाची (आँटी) को बहुत आनन्द होगा !'

इतने में रजनीश की पत्नी वहाँ आयी और बोली : 'शोभा और बच्चा– दोनों कुशल हैं। कोशल ने कहा : 'माँ, तू यहाँ रह, हम सब भोजन अवनीश अंकल के वहाँ करेंगे। तू चाची (आँटी) को भेज दे।' कोशल की माँ ने अवनीश को, दो हाथ जोड़ कर प्रणाम किये और बोली : 'भैया, मुझे क्षमा कर दो। मेरी ही वजह से अपने दो परिवारों के बीच दरार पड़ी थी। तुमने दरार को मिटा दिया...... हमारे पर महान उपकार किया...... हम कभी नहीं भूलेंगे।'

अवनीश ने कहा : 'भाभी, मैंने कोई उपकार नहीं किया है, मेरी पुत्रवधू को बचाने का मेरा कर्तव्य था इससे ज्यादा कुछ नहीं।'

दोनों परिवार में पुनः मैत्री बँध गई।

## जिनशासन की सारभूत बातें :

'धर्मबिन्दु' के टीकाकार आचार्यश्री 'साधर्मिक वात्सल्य' को जिनशासन का सार कहते हैं :

> **जिनशासनस्य सारो जीवदया निग्रहः कषायाणाम्।**
> **साधर्मिक वात्सल्यं भक्तिश्च तथा जिनेन्द्राणाम्॥**

१. जीवदया, २. कषायों का निग्रह, ३. साधर्मिक वात्सल्य और ४. जिनेन्द्र भगवंत की भक्ति–ये चार बातें जिनशासन की सारभूत बातें हैं। यदि ये चार बातें जीवन में आ जाती हैं तो जिनशासन जीवन में आ जाता है।

## जीवदया :

पहली बात बतायी है जीवदया की। 'दया' सामान्यतया दुःखी जीवों के प्रति बतायी जाती है। दया का जन्म कोमल हृदय में होता है। यदि आपका हृदय कोमल होगा, मृदु होगा, तो ही दया का जन्म होगा। कठोर और क्रूर हृदय में दया का जन्म नहीं होता है।

दया और मैत्री का कार्य समान होता है। 'परहित' करना जैसे मैत्री का कार्य है वैसे दया का भी कार्य है। दया करना यानी परहित करना है। मैत्रीभाव रखना यानी परहित करना है। जिनशासन का सारभूत प्रथम तत्त्व है परहित। दूसरे जीवों के हित का ही विचार करना है। द्रव्यहित और भावहित–दोनों प्रकार का हित करना है।

जो भूखा है उसको भोजन देना, जो प्यासा है उसको पानी देना, जो नंगा है उसको वस्त्र देना, निर्धन को धन देना, रोगी को औषध देना – यह सब द्रव्यदया है। जो हिंसक है उसको अहिंसक बनाना, जो मृषावादी है उसको सत्यवादी बनाना, जो चोरी करता है उसको प्रामाणिक और नीतिमान बनाना, जो दुराचारी है उसको सदाचारी बनाना, जो परिग्रही है उसको अपरिग्रही बनाना, क्रोधी को क्षमाशील बनाना, अभिमानी को विनम्र बनाना, मायावी को सरल बनाना – यह सब भावदया है। यह द्रव्यदया और भावदया–दोनों परहित के कार्य हैं। यह परमार्थ है। यह परमार्थ, जिनशासन का सारभूत तत्त्व है।

कभी आपके हृदय में दूसरे जीवों के हित का, सुख का, शान्ति का विचार आता है क्या ? 'संसार के सभी जीवों का हित हो ! सभी जीव सुखी हों, सभी जीवों को शांति मिले, किसी का भी अहित न हो, कोई जीव दुःखी न हो, किसी को भी अशान्ति न हो...' ऐसी संवेदना पैदा होती है क्या ? यदि होती है तो समझना कि आपका हृदय कोमल है, मृदु है। यदि आप आपके ही स्वार्थों में लीन होंगे, आपके ही सुखों के विचारों में डूबे हुए होंगे तो परमार्थ की द्रष्टि नहीं खुलेगी। स्वार्थ के मार्ग पर चलने में कषायों के भूत कदम–कदम पर सताते रहते हैं।

## कषायों का निग्रह :

और कषायों का निग्रह करना, जिनशासन का दूसरा सारभूत तत्त्व है। कषाय–निग्रह करने के लिए स्वार्थ का विसर्जन करना होगा। जब तक स्वार्थ रहेगा, थोड़ा–सा भी स्वार्थ रहेगा तब तक कषाय हटनेवाले नहीं हैं। कषायों का निग्रह करने के लिए प्रयत्न करना ही होगा। कषायों की वजह से ही हम क्लेश, अशान्ति, उद्वेग और संताप का अनुभव करते हैं। कितनी भी धर्मक्रियाएँ करने पर, यदि

कषायों का निग्रह नहीं किया है, तो शान्ति–समता–समाधि मिलनेवाली नहीं है। कषाय की वजह से मैत्रीभाव भी टूट जाता है । कषायनिग्रह करनेवाला मनुष्य ही मैत्रीभाव को अखंड बनाये रखता है ।

**सभा में से :** कषायों का निग्रह करना बड़ा मुश्किल लगता है.... कषाय बढ़ रहे हैं ।

**महाराजश्री :** निराश नहीं होना है । कषायों का निग्रह करने का संकल्प करें। 'मुझे कषायों को घटाने ही हैं ।' ऐसा संकल्प कर, कषायों को घटाने की योजना बना लें । योजना का प्रारूप बताता हूँ ।

– सर्वप्रथम आप ऐसी बातों की नोट्स लिखें कि कैसी–कैसी बातों में आपको क्रोध आता है, कैसी–कैसी बातों में अभिमान आता है, कब–कब माया–कपट करने की इच्छा होती है और कब लोभ उछलता है ।

– उस नोट्स के आधार पर आप सोचें कि आप कहाँ–कहाँ क्रोध, मान, माया और लोभ से बच सकते हैं । कहाँ–कहाँ क्रोध वगैरह टाल सकते हैं।

– आपको लगे कि 'ऐसी–ऐसी स्थिति में मैं क्रोध वगैरह से बच नहीं सकता हूँ' – तो उसको भी नोट कर लें ।

– 'मुझे क्रोध होगा तो मैं दूसरे दिन बिना नमक का भोजन करूँगा, बहुत ज्यादा क्रोध आया तो दूसरे दिन उपवास करूँगा, अथवा सौ रुपये अनुकंपा–दान में दूँगा ।' इस प्रकार स्वयं दंड का स्वीकार करें ।

– इसी प्रकार अभिमान होने पर, माया–कपट करने पर, लोभ करने पर स्वयं दंड का स्वीकार करें ।

– ऐसी पुस्तकें पढ़ें कि जो पढ़ने से, कषायों के प्रति तिरस्कार पैदा हो जाय। कषाय करने के कटु परिणामों का ज्ञान हो और क्षमा–नम्रता–सरलता–निर्लोभता के पालन से होनेवाले लाभों का ज्ञान हो ।

– क्रोधी, अभिमानी, मायावी और लोभी को मित्र नहीं बनाना, यदि मित्र हो तो छोड़ देना । ऐसे क्रोधी वगैरह के पास बैठना नहीं, ज्यादा वार्तालाप करना नहीं ।

– द्वेष–ईर्ष्या–घृणा–तिरस्कार, अभिमान, कपट, लोभ को बढ़ावा देनेवाले पिक्चर नहीं देखें । कषायों पर विजय पाना है तो सिनेमा बंद करें, नाटक देखने भी बंद करें ।

किसी भी तरह से कषायों का निग्रह करना है । कषायों का निग्रह करना जिनशासन का सार है ।

## साधर्मिक वात्सल्य :

जैसे कषायनिग्रह सारभूत तत्त्व है वैसे साधर्मिक वात्सल्य भी सारभूत तत्त्व है । 'वात्सल्य' के प्रकार आपको बताये हैं । सर्वप्रथम साधर्मिकों के प्रति मैत्रीभाव होना आवश्यक है । मैत्रीभाव होगा तो ही सच्चा वात्सल्य हो सकेगा । किसी भी साधर्मिक के प्रति द्वेष–तिरस्कार–घृणा नहीं करना । नहीं करते हो न ?

**सभा में से :** बहुत करते हैं । द्वेष करते हैं, झगड़े करते हैं ।

**महाराजश्री :** तो फिर साधर्मिक वात्सल्य का धर्म आप नहीं कर सकते । जो कषायनिग्रह नहीं कर सकता है, वह साधर्मिक मैत्री नहीं कर सकता है । मैत्री के बिना वात्सल्य नहीं हो सकता है ।

## साधर्मिक वात्सल्य में विवेक आवश्यक :

एक बात याद रखें कि जैसे उपवास वगैरह तपश्चर्या करना धर्म है, वैसे साधर्मिक वात्सल्य भी धर्म है, एक विशिष्ट धर्मक्रिया है । परंतु आजकल आप लोग साधर्मिक वात्सल्य को जिमणवार समझने लगे हैं । 'स्वामि–वात्सल्य' कहें या साधर्मिक वात्सल्य कहें–एक ही है । साधर्मिक वात्सल्य की क्रिया प्रायः सभी जैनसंघो में होती है, परंतु भावना मृतप्रायः हो गई है । विवेक तो रहा ही नहीं है । मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछता हूँ, मुझे उत्तर देना ।

१. क्या आप स्वामि–वात्सल्य के दिन जिनपूजा करते हैं ?

२. क्या उस दिन आप ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं ?

३. क्या उस दिन आप गुरुसेवा करते हैं ?

४. क्या उस दिन दुःखी जीवों के लिए अनुकंपा–दान देते हैं ?

५. क्या स्वामि–वात्सल्य में भोजन करते हुए मौन रखते हो ?

६. क्या उस दिन खाते–खाते बोलते तो नहीं हो न ?

७. अधिक भीड़ होने पर धक्का–मुक्की तो करते नहीं हो न ?

८. किसी के साथ झगड़ा तो करते नहीं हो न ?

९. जूठा तो नहीं छोड़ते हो न ?

– यदि आप इन नौ बातों का पालन करते हैं, तो आपका साधर्मिक वात्सल्य श्रेष्ठ कहा जायेगा ।

– कम–से–कम तीन बातों का पालन करते हैं तो आपका साधर्मिक वात्सल्य ठीक–ठीक कहा जायेगा ।

– और तीन से ज्यादा एवं नौ से कम बातों का पालन करते हैं, तो आपका साधर्मिक वात्सल्य मध्यम कहा जायेगा । आप लोग सोचना । साधर्मिकों की सेवाभक्ति, मैत्रीभाव से करना है ।

## जिनेन्द्रपूजा :

जिनशासन का चौथा सारभूत तत्त्व है जिनेन्द्रपूजा । जिनेश्वर भगवंतों का दर्शन और पूजन प्रतिदिन करना चाहिए । यदि उनका स्मरण हृदय में निरंतर चलता होगा, तो उनका दर्शन–पूजन करने की भावना सहजता से होगी। परमात्मा का स्मरण तभी आता रहता है हृदय में, जब परमात्मा के प्रति प्रीति बन जाती है ।

कुछ जीवों को, पूर्वजन्म के संस्कारों की वजह से सहजता से परमात्मा के प्रति प्रेम होता है । कुछ जीवों को प्रेम बाँधना होता है । प्रेम का नया संबंध बाँधना होता है । प्रेम बन गया कि स्मरण होता रहेगा । स्मरण होता रहेगा तो दर्शन करने की इच्छा बनी रहेगी । दर्शन के बाद स्पर्शन की इच्छा जागृत होगी ही । स्पर्शन का अर्थ है पूजन । विधिपूर्वक और भावपूर्वक पूजन होगा आपका । पहला काम करें परमात्मा से प्रेम करने का ।

## उपसंहार :

समान धार्मिकों के साथ रहने से ये सारी बातें सरलता से संभवित हो सकती हैं । आपके आसपास रहनेवाले प्रतिदिन सुबह उठते ही मंदिर जाते हैं, तो आप भी मंदिर जायेंगे । वे लोग प्रतिदिन पूजा करते हैं तो आप भी पूजा करने जाओगे।

अथवा, आप रोजाना मंदिर जाते हैं, दर्शन–पूजन करते हैं, तो आपको देखकर आपके आसपास के लोग मन्दिर जाने लगेंगे । आप साधर्मिकों की भाव से भक्ति करते हैं, तो वे भी करने लगेंगे । आप दीन–दुःखी जीवों को वस्त्र–भोजन वगैरह देते हैं, तो वे भी देने लगेंगे ।

आप यदि साधर्मिकों की आपत्ति में सहयोगी बनेंगे, आपत्ति दूर करने में सहायक बनेंगे, तो वे साधर्मिक भी दूसरों के दुःखों में सहयोगी बनने की प्रेरणा पायेंगे । आपको 'साधर्मिक वात्सल्य' के धर्म में आलंबन बनना है । बनोगे न? आप लोग यहाँ मेरे पास आते हैं, धर्म का उपदेश सुनते हैं, धर्मतत्त्व को समझते हैं..... तो आपको दूसरों के लिए आलंबन बनना ही होगा । जो लोग प्रमाद से या दुसरे कारणों से धर्मगुरुओं के पास नहीं जा सकते हैं, सद्धर्म की बातें नहीं सुन पाते हैं, जो लोग सन्मार्ग से भटक गये हैं, उनके सहयोगी बनना होगा आपको ।

समझना कि साधर्मिक भक्ति परमात्मा की भक्ति है । क्योंकि परमात्मा के धर्मशासन को वहन करनेवाला साधर्मिक है । परमात्मा की जय पुकारनेवाला साधर्मिक है । समय आने पर धर्म की रक्षा के लिए प्राणों की आहूति देनेवाला साधर्मिक है । इसलिए ग्रंथकार महर्षि कहते हैं कि साधर्मिकों के प्रति मैत्रीभाव रखें । उनका अवसरोचित आदर–सत्कार करें ।

अहिंसक और दयाप्रधान समाज के साथ रहने से पारिवारिक सुरक्षा भी हो जाती है । मारामारी और डकैती जैसे अनिष्ट प्रायः कम होते हैं । जीवन व्यवहारों में न्याय–नीति और प्रामाणिकता का पालन सरल बनता है । इस दृष्टि से, अहिंसक और दयाप्रधान जैनसमाज के साथ रहना दूसरी जाति के लोग भी पसंद करते हैं । जैन सोसायटी में दूसरे हिन्दु वगैरह भी बंगला लेना पसंद करते हैं, जो शान्तिप्रिय होते हैं और अहिंसा में श्रद्धा रखते हैं ।

इसलिए, हो सके वहाँ तक साधर्मिकों के साथ रहें और उनके साथ मैत्रीभाव रखते हुए वात्सल्य करते रहें ।

आज बस, इतना ही ।

* * *

# प्रवचन : २५

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में गृहस्थ जीवन का विशेष धर्म बताया है। बारह व्रतमय विशेष धर्म बताकर, विशेष धर्म का पालन करनेवाले श्रावक–श्राविकाओं की दिनचर्या कैसी होनी चाहिए, उस विषय में विशद मार्गदर्शन दिया है ।

'समान धार्मिक लोगों के आसपास रहना चाहिए और उन साधर्मिकों का वात्सल्य करना चाहिए,' इतना मार्गदर्शन देने के बाद वे कहते हैं :

**'धर्मचिन्तया स्वपनम् ।'**

'धर्मभावना का चिंतन करते–करते निद्राधीन होना चाहिए ।'

## सोते समय धर्मचिन्तन करें :

यदि आप सोते समय शुभ भावना में होंगे, तो आपकी संपूर्ण रात्रि शुभ भाव में व्यतीत होगी । निद्रा के पूर्व जो भाव होता है, यानी जिस भाव के साथ आप निद्राधीन होते हैं, वह भाव निद्रा में भी अवस्थित रहता है । टीकाकार आचार्यश्री ने कहा है :

**'शुभभावनासुप्तो हि तावन्तं कालमवस्थितशुभपरिणाम एव लभ्यते ।'**

यदि रात्रि को शुभ बनानी हो तो धर्मचिंतन करते–करते सोने का अभ्यास करें । इससे अनेक लाभ होते हैं :

१. बुरे – अशुभ स्वप्न नहीं आते हैं ।

२. सतत पुण्यबंध होता रहता है ।

३. निद्रा में ही आयुष्य पूर्ण हो जाय तो सद्गति ही प्राप्त होती है ।

पहला लाभ कितना महत्त्वपूर्ण है ? कई लोगों को बहुत बुरे स्वप्न आते हैं । स्वप्न में रोते हैं, स्वप्न से डरते हैं और बहुत परेशान होते हैं । ऐसे लोग यदि शुभ भावना भाते भाते सो जाय, तो इस परेशानी से मुक्त हो जाते हैं ।

दूसरा लाभ तो महान है। रातभर शुभ–धार्मिक भावना चलती रहती है, उससे सतत पुण्यकर्म का बंध होता रहता है ! निद्रा में पुण्यकर्म का बंध ! बिना प्रयत्न किये पुण्यकर्म का उपार्जन होता है !

तीसरा लाभ भी असाधारण है। कई लोग नींद में श्वास तोड़ देते हैं। मौत हो जाती है। यदि धर्मभावना भाते भाते सो गया है, तो उसकी आत्मा सद्‌गति में जाती है। दुर्गति में जाने से आत्मा बच जाती है।

चौथा विशिष्ट लाभ है : शान्त निद्रा पाने का। जिनको अनिद्रा का रोग हो, यानी नींद नहीं आती हो, उनको धर्मभावना भाते भाते सहजता से नींद आ जाती है। क्योंकि धर्मचिंतन करने से मन में चिंतायें नहीं रहती हैं। मन चिंताओं से मुक्त हो जाता है। कषायों से भी मन मुक्त हो जाता है। इसलिए सहजता से नींद आ जाती है।

**सभा में से :** धर्मचिंतन करने का समय नहीं मिलता हो, बिस्तर में पड़ते ही नींद आ जाती हो, तो क्या करना चाहिए।

**महाराजश्री :** श्री नवकार मंत्र का स्मरण करते–करते सो जाओ। एक, दो, तीन... जितने भी नवकार मंत्र जप सको... जपते रहो ! जपते जपते सो जाओ ! जिस दिन नींद नहीं आती हो, उस दिन धर्मचिंतन करते रहो।

## धर्मचिंतन कैसे करेंगे ? :

धर्मचिंतन भिन्न–भिन्न प्रकार से हो सकता है। 'धर्मबिन्दु' के टीकाकार आचार्यदेव ने ब्रह्मचारी महापुरुषों का स्मरण करने का निर्देश दिया है।

**धन्यास्ते वन्दनीयास्ते तैस्त्रैलोक्यं पवित्रितम् ।**
**यैरेष भुवनक्लेशी काम मल्लो विनिर्जितः ।।**

'जिन महापुरुषों ने कामवासना पर विजय पायी है – जिस कामवासना ने समग्र विश्व को परेशान कर रखा है – वे महापुरुष धन्य हैं और वंदनीय हैं। इन महापुरुषों से ही त्रिलोक–तीन भुवन पवित्र हैं।'

इस प्रकार ब्रह्मचारी महापुरुषों की पुण्यस्मृति करनी चाहिए। परंतु इस प्रकार ब्रह्मचारी महापुरुषो की स्मृति तभी होगी, जब आपके मन में ब्रह्मचर्य का महत्त्व

रहा होगा। ब्रह्मचर्य का मूल्यांकन आपके मन में स्थापित होगा। आपका स्वयं का भी आदर्श ब्रह्मचर्यपालन होगा। 'कब मैं ब्रह्मचर्य का पालन करने में समर्थ बनूँगा ? विषयवासना पर मैं कब विजय पाऊँगा ?' ऐसी भावना आपके मन में है क्या ? विषयभोग के प्रति नफरत पैदा हुई है क्या ? विषयभोग करते हुए भी, विषयभोग से निवृत्त होने की इच्छा पैदा हुई है क्या ? सोचना, गंभीरता से सोचना। वैषयिक सुख के प्रति विरक्ति का भाव जागृत होना बहुत जरूरी है, और वह भाव जागृत करने के लिए, ब्रह्मचारी महापुरुषों के प्रति आदरभाव एवं पूज्यभाव होना–एक उपाय है।

चार संज्ञाओं में मैथुन संज्ञा मनुष्य में प्रबल होती है। उस संज्ञा पर विजय पाना आसान काम तो नहीं है। बड़े बड़े तपस्वियों को भी यह वासना सताती है। बड़े बड़े योगीपुरुषों को भी परेशान करती है। फिर भी, अशक्य बात नहीं है। कामवासना पर विजय पाने की भावना जागृत होनी चाहिए और प्रतिदिन, सोने के पहले ब्रह्मचारी महापुरुषों का पुण्यस्मरण करते रहना चाहिए। उन महापुरुषों की अलौकिक कृपा से कभी न कभी आप ब्रह्मचर्य का पालन करने में समर्थ बन पायेंगे।

इस प्रकार, दूसरा भी धर्मचिंतन बताया गया है –

## तीर्थों को भाववंदना करें :

तीर्थों का धर्मचिंतन करें। 'यतिदिनचर्या' नामक ग्रंथ में आचार्यश्री भावदेवसूरिजी ने लिखा है –

> नंदीसर अट्ठावय सित्तुंजय उज्जयंत सम्मेयं।
> पमुहाइं तित्थाइं वंदेऽहं परमभत्तिए ॥१४४॥

नंदीश्वर, अष्टापद, शत्रुंजय, गिरनार और सम्मेतशिखर वगैरह तीर्थों को मैं परम भक्ति से वंदना करता हूँ।'

यहाँ आचार्यदेव ने जिन तीर्थों के नाम दिये हैं उनमें से पहले दो तीर्थ हममें से किसी ने नहीं देखे हैं। नंदीश्वर तीर्थ और अष्टापद तीर्थ – ये दो तीर्थ हमने नहीं देखे हैं। नंदीश्वर दूर है, अष्टापद अदृश्य है ! फिर भी, शास्त्रों

में दोनों तीर्थों का वर्णन पढ़ने को मिलता है। आपको जानना है न इन तीर्थों के बारे में ? पहले नंदीश्वर तीर्थ का वर्णन करता हूँ।

## नंदीश्वर तीर्थ :

नंदीश्वर तीर्थ, नंदीश्वर द्वीप पर आया हुआ है। अपन यानी यह भारत, जंबूद्वीप में है। अपना द्वीप जंबूद्वीप कहा जाता है। जंबूद्वीप एक लाख योजन के विस्तारवाला है।

जंबूद्वीप के चारों तरफ 'लवणसमुद्र' आया हुआ है। उसका विस्तार दो लाख योजन का है। उसके बाद धातकीखंड आया हुआ है, जो चार लाख योजन के विस्तार का है। धातकीखंड के चारों ओर कालोदधि समुद्र है, जो आठ लाख योजन के विस्तार का है। कालोदधि समुद्र के चारों ओर पुष्करवर द्वीप आया हुआ है। वह १६ लाख योजन का है। पुष्करवर द्वीप के चारों ओर पुष्करवर समुद्र आया हुआ है, जो ३२ लाख योजन के विस्तारवाला है। उसके बाद वारुणीवर द्वीप है, जो ६४ लाख योजन का है। वारुणीवर द्वीप के चारों ओर वारुणीवर समुद्र है, जो १२८ लाख योजन का है। उसके बाद क्षीरवर द्वीप है, जो २५६ लाख योजन विस्तृत है। क्षीरवर द्वीप के चारों ओर क्षीरवर समुद्र है, जो ४१२ लाख योजन विस्तृत है। उसके बाद घृतवर द्वीप है, जो ८२४ लाख योजन विस्तृत है। उसके चारों ओर घृतवर समुद्र है, जो १६४८ लाख योजन विस्तृत है। उसके बाद इक्षुवर द्वीप है, जो ३२१६ लाख योजन विस्तृत है। उसके चारों और इक्षुवर समुद्र है, जो ६५९२ लाख योजन विस्तृत है।

उसके बाद नंदीश्वर द्वीप आया हुआ है। वह द्वीप १३,१८४ लाख योजन के विस्तार का है। यानी उसका घेराव १,६३,८४,००,००० योजन का है।

इस नंदीश्वर द्वीप के मध्य चारों दिशाओं में चार 'अंजनगिरि' नाम के पहाड़ हैं। पूर्व दिशा में 'देवरमण' नाम का अंजनगिरि है, दक्षिण में 'नित्योद्योत' नाम का अंजनगिरि है, पश्चिम में 'स्वयंप्रभ' नाम का और उत्तर में 'रमणीय' नाम का अंजनगिरि है। इन चारों पहाड़ के उपर एक-एक विशाल मंदिर है।

चार अंजनगिरि की चारों दिशाओं में एक-एक लाख योजन दूर चार-चार

बावडियाँ हैं, यानी १६ बावडियाँ हैं। हर बावडी के मध्य एक–एक पहाड़ है। 'दधिमुख' नाम के १६ पहाड़ हैं और हर पहाड़ के उपर एक–एक जिनमंदिर है।

चार अंजनगिरि के चार जिनमंदिर और १६ दधिमुख पहाड़ों पर १६ जिनमंदिर – कुल (Total) २० जिनमंदिर हैं। ये जिनमंदिर चार–चार द्वारवाले होते हैं। १०० योजन लंबे, ५० योजन चौड़े और ७२ योजन ऊँचे होते हैं।

नंदीश्वर द्वीप की चार विदिशा में चार 'रतिकर' नाम के पहाड़ हैं। चार पहाड़ पर चार जिनचैत्य हैं। ये पहाड़ १०,००० योजन लंबे और १०,००० योजन चौड़े होते हैं। १००० योजन ऊँचे और २५० योजन गहरे हैं।

इस प्रकार नंदीश्वर द्वीप के उपर २४ जिनचैत्य हैं।

दूसरी मान्यता के अनुसार ५२ जिनचैत्य हैं नंदीश्वर द्वीप के उपर।

यह नंदीश्वर तीर्थ, विशेष रूप से देवताओं का तीर्थ है। देवलोक के देवी–देवता वहाँ जाते–आते हैं और परमात्मभक्ति करते हैं। विद्याधर मनुष्य भी वहाँ जाते हैं। अपने नहीं जा सकते वहाँ। परंतु मानसिक यात्रा कर सकते हैं! कल्पना से वहाँ जाना – मानसिक यात्रा करना बहुत महत्त्व रखती है।

## अष्टापद तीर्थ :

दूसरी मानसयात्रा करनी है अष्टापद तीर्थ की।

कुछ वर्षों से यह तीर्थ अदृश्य है। परंतु भगवान महावीर स्वामी के समय में, श्री गौतम स्वामी पैदल यात्रा कर अष्टापद तीर्थ पर गये थे, यह बात अनेक ग्रंथों में आती है। इससे फलित होता है कि मगधदेश (बिहार) के पास में ही यह तीर्थ होना चाहिए। भगवान ऋषभदेव भी अपने निर्वाण का काल और निर्वाणभूमि को जानकर, अयोध्या से विहार कर अष्टापद के पहाड़ पर पधारे थे। इस बात से भी यह अनुमान पुष्ट होता है कि अष्टापद मगध के पास, अयोध्या के पास होना चाहिए। मगध और अयोध्या के पास, अभी इस समय तो हिमालय है! दूसरा कोई ३२ गाऊ ऊँचा पहाड़ उस प्रदेश में नहीं है।

भगवान ऋषभदेव का अष्टापद के पहाड़ पर निर्वाण हुआ। उनके पुत्र भरत

चक्रवर्ती ने पिता और परमात्मा की स्मृति में वहाँ 'सिंहनिषद्या' नाम का अति भव्य प्रासाद (चैत्य) बनवाया। सोने का मंदिर बनवाया। उसमें भगवान ऋषभदेव से लगाकर भगवान महावीर स्वामी तक के २४ तीर्थंकर भगवंतों की रत्नमय प्रतिमाएँ बनवा कर स्थापित की। प्रत्येक तीर्थंकर के देहमान (Height and body) के प्रमाणवाली प्रतिमाएँ बनवाई। चार दिशा में वे प्रतिमाएँ स्थापित की।

- पूर्व दिशा में ऋषभदेव और अजितनाथ की दो प्रतिमाएँ,
- दक्षिण दिशा में संभवनाथ, अभिनंदन, सुमतिनाथ और पद्मप्रभ की चार प्रतिमाएँ,
- पश्चिम दिशा में सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, सुविधिनाथ, शितलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ और अनंतनाथ की आठ प्रतिमाएँ और
- उत्तर दिशा में धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लीनाथ, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, नेमनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी की दस प्रतिमाएँ स्थापित की।

आप लोग अष्टापद तीर्थ की कल्पना कर, २४ तीर्थंकर भगवंतों के दर्शन-वंदन करना। विशेष रूप से श्री ऋषभदेव भगवंत की स्तुति-प्रार्थना करना। क्योंकि ऋषभदेव भगवान की यह निर्वाणभूमि है, कल्याणक भूमि है, बहुत ही पवित्र और प्रभावक भूमि है। मन से, भावपूर्ण हृदय से उस भूमि की स्पर्शना करना।

## शत्रुंजय तीर्थ को भाववंदना करें :

उसके बाद शत्रुंजय तीर्थ की भाव-यात्रा करनी है। आप लोगों ने सौराष्ट्र में आये हुए इस तीर्थ की यात्रा तो की है न ? गये हो न पालिताना ? यदि नहीं गये हैं तो एक बार अवश्य जा कर शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा करना। शत्रुंजय के पहाड़ पर बाहरी सौन्दर्य नहीं देखना है। उसकी भीतर की पवित्रता को स्पर्श करना है। इस पवित्र पहाड़ पर अनंत-अनंत आत्माओं ने अपने कर्मों के बंधन तोड़े हैं और वे सिद्ध बने हैं। इस पहाड़ का एक-एक कंकर उन सिद्धात्माओं

के स्पर्श से पवित्र बना हुआ है ।

यदि यात्रा की होगी तो उस तीर्थ की स्मृति आ सकेगी । तलहटी के मंदिरों के दर्शन–वंदन और पूजन से यात्रा का प्रारंभ करना । पहाड़ पर चढ़ते समय, इस पहाड़ पर कौन–कौन–से महापुरुषों ने मोक्ष प्राप्त किया, उनको याद करना । कौन–कौन–से महापुरुषों ने इस गिरिराज के उपर मंदिरों का निर्माण किया, मंदिरों का जिर्णोद्धार किया, उनको याद करना । किन–किन महापुरुषों ने इस तीर्थ की रक्षा की, रक्षा करते–करते अपने प्राणों का बलिदान दिया, उनको याद करना।

उपर पहुँच कर, भगवान शान्तिनाथ के दर्शन–वंदन–पूजन कर, भगवान ऋषभदेव के दरबार में पहुँच जाना । तीन प्रदक्षिणा देना । तीन बार प्रणाम कर, हर्षविभोर चित्त से भगवान के दर्शन करना, स्तुति बोलना, अष्ट प्रकारी पूजा करना, भावपूजा करना और परमात्मा में लीन बनकर स्तवना करना । परमात्मा की भव्य मूर्ति के सामने अपनी आँखों से त्राटक करना । द्रव्यपूजा और भावपूजा पूर्ण कर मंदिर से बाहर आना । आसपास के मंदिरों में दर्शन–पूजन कर, 'रायणवृक्ष' के नीचे जाकर, भगवान ऋषभदेव के चरणों में सर झुकाना, पूजन करना ।

उसके बाद नौ टूंक में जा कर, एक–एक भव्य मंदिर, एक–एक नयन मनोहर मूर्ति के दर्शन–वंदन करते जाना । नौ टूंक की यात्रा पूर्ण कर, 'घेटी की पाग' पर पहुँचना है । वहाँ के जिनमंदिर में जाकर दर्शन–पूजन करना और फिर गिरिराज को प्रणाम कर नीचे उतरना है ।

धर्मशाला में पहुँच कर, साधु–साध्वी को सुपात्रदान देना है, साधर्मिक भक्ति करना है, बाद में आपको भोजन करना है । अभक्ष्य का त्याग और रात्रिभोजन का त्याग करना है । हुई न भावयात्रा ? रोज़ाना सोने के पहले करते रहो भावयात्रा।

## गिरनार तीर्थ की यात्रा करें :

कल्पना से, पालिताना से जूनागढ पहुँचने में देरी नहीं लगेगी ! एक क्षण में आप जूनागढ पहुँच कर, शरीरशुद्धि कर, शुद्ध वस्त्र धारण कर, गिरनार के पहाड़ पर चढ़ना प्रारंभ करें । इस तीर्थ का इतिहास यदि आपने पढ़ा होगा तो

अनेक रोमांचक बातें आपके मन में घुमराने लगेगी। कम से कम, भगवान नेमनाथ के तीन कल्याणक तो याद करना ही।

– भगवान नेमनाथ ने इस पहाड़ के उपर दीक्षा ली थी।

– भगवान नेमनाथ को इसी पहाड़ पर केवलज्ञान प्राप्त हुआ था।

– भगवान नेमनाथ का निर्वाण भी इसी पहाड़ पर हुआ था!

– भगवान नेमनाथ की वाग्दत्ता राजीमती ने इसी पहाड़ पर आकर, भगवान के पास दीक्षा ग्रहण की थी!

– इस पहाड़ पर करोड़ों देवता उतर आते थे। समवसरण रचाते थे। भगवान ने यहाँ धर्मतीर्थ की स्थापना की थी। चतुर्विध संघ की स्थापना की थी। ज्ञान की गंगा बहायी थी।

– इसी पहाड़ की एक गुफा में साध्वी राजीमती और महाश्रमण रथनेमि का रोमाचंक संवाद हुआ था। साध्वी ने साधु की कामवासना को निर्मूल कर, पतन के खड्डे में गिरते हुए साधु को बचाया था।

इन सारी बातों को याद करते करते पहाड़ के उपर पहुँच जाओगे। वहाँ धवल मंदिरों के उन्नत शिखरों पर लहराती धजाओं के दर्शन होते ही 'नमो जिणाणं' बोलकर प्रणाम करना। भगवान नेमनाथ के मंदिर में जा कर, श्यामवर्ण की जिनप्रतिमा का दर्शन–वंदन–पूजन करना। भगवद्भक्ति से गद्गद् होना। अन्य जिनमंदिरों में जाकर एक–एक जिनप्रतिमा के दर्शन–वंदन करना।

इस प्रकार गिरनाथ तीर्थ की भावयात्रा कर, कल्पना के यान में आरूढ़ होकर सम्मेतशिखर पहुँच जाना! सौराष्ट्र से सीधे बिहार में पहुँच जाना!

## सम्मेतशिखर तीर्थ की स्पर्शना करें :

बिहार में सम्मेतशिखर का विशालकाय पहाड़ आया हुआ है। यह भी सिद्धक्षेत्र है। आप लोगों में से कइयों ने इस तीर्थ की यात्रा की होगी? पूर्व देश के तीर्थों की यात्राएँ आजकल ४० वर्षों से बढ़ी हैं। बहुत यात्रा प्रवास, संघयात्राएँ आयोजित होती हैं।

इस पहाड़ पर २० तीर्थंकर भगवंतों का निर्वाण हुआ था। यह निर्वाण भूमि

है। यहाँ पर अनेक मुनिवरों ने अनशन कर मुक्ति पायी है। २४ तीर्थंकरों में से भगवान ऋषभदेव का निर्वाण अष्टापद के पहाड़ पर हुआ था। भगवान वासुपूज्य का निर्वाण चंपानगरी में हुआ था। भगवान नेमनाथ का निर्वाण गिरनार के पहाड़ पर हुआ था और भगवान महावीर स्वामी का निर्वाण पावापुरी में हुआ था।

इस पहाड़ पर चढ़ते चढ़ते आप २० तीर्थंकर भगवंतों के जीवनचरित्रों के विचार करना। जानते हो न २४ तीर्थंकरों के जीवनचरित्र ? नहीं जानते हो तो पढ़ लेना। "त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र" का गुजराती अनुवाद छप गया है। प्रायः हिन्दी में भी छपा है–प्राप्त कर अवश्य पढ़ना।

सम्मेतशिखरजी के पहाड़ पर सर्वप्रथम भगवान पार्श्वनाथ के मंदिर में जाना। भगवान पार्श्वनाथ के दर्शन–पूजन–स्तवन कर आत्मा को निर्मल करना। उसके बाद अन्य तीर्थंकर भगवंतो की जहाँ जहाँ चरणपादुकाएँ स्थापित हैं वहाँ जाकर दर्शन–पूजन करना। उस उस तीर्थंकर भगवंतों की स्तुति बोलना। आती है २४ तीर्थंकरों की २४ स्तुतियाँ ? याद कर लेनी चाहिए। गुजराती और हिन्दी–दोनों भाषा में छपी हैं स्तुतियाँ। आप लोगों को संस्कृत और प्राकृत भाषा तो आती नहीं है। उस भाषा में अनेक स्तुतियाँ बनी हुई हैं, परंतु अर्थज्ञान के बिना स्तुति बोलने से कोई लाभ नहीं होता है।

इस प्रकार सम्मेतशिखर तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए भाव से, मन से।

## अन्य तीर्थों की भी स्मृति कर लें :

इसके अलावा शंखेश्वर, आबू, राणकपुर, हस्तिनापुर, पावापुरी, राजगृही वगैरह तीर्थों की मानसिक यात्रा कर लेनी चाहिए। आपने जो जो तीर्थ की यात्रा की हो, उन सभी तीर्थों की स्मृति कर, तीर्थाधिपति भगवंतों के दर्शन–वंदन कर लेना चाहिए।

फालतू विचार करने की बजाय, ऐसे पवित्र विचार करते–करते सोओगे तो आपकी रात, शुभ भावों में व्यतीत होगी। आपको शान्त निद्रा आयेगी। निद्रा में आप शुभ स्वप्न देखेंगे।

## तीर्थंकरों को वंदना करें :

तीर्थवंदना के बाद तीर्थंकर भगवंतों को भाववंदना करनी चाहिए ।

- उर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक में रहे हुए जिनचैत्यों को मैं वंदना करता हूँ ।
- उन जिनचैत्यों में रही हुई सभी जिनप्रतिमाओं को वंदन करता हूँ ।
- 'महाविदेह' क्षेत्र में विचरते हुए २० तीर्थंकर भगवंतों को वंदन करता हूँ ।
- जंबूद्वीप के महाविदेह में विहरमान सीमंधर स्वामी, युगमंधर स्वामी, बाहु स्वामी और सुबाहु स्वामी को वंदना करता हूँ ।
- धातकीखंड के महाविदेह में विहरमान आठ तीर्थंकर भगवंतों – सुजात, स्वयंप्रभु, ऋषभानन, अनंतवीर्य, सूरप्रभ, श्रीविशाल, श्री वज्रधर और श्री चंद्रानन – को वंदन करता हूँ ।
- पुष्करवर द्वीप के महाविदेह में विहरमान आठ तीर्थंकर भगवंत – श्री चन्द्रबाहु, श्री भुजंगम स्वामी, श्री ईश्वर, श्री नेमिप्रभु, श्री वीरसेन, श्री महाभद्र, श्री देवयशा और श्री अजितवीर्य – को वंदन करता हूँ ।

यदि कल्पना कर सको तो समवसरण में बैठकर देशना देते हुए तीर्थंकरों को वंदना करना ।

## मुनिश्रेष्ठों का स्मरण करें :

- भगवान ऋषभदेव के प्रथम शिष्य श्री पुंडरिक स्वामी को नमन करता हूँ ।
- भगवान ऋषभदेव के प्रथम पुत्र श्री भरत केवली को वंदना करता हूँ ।
- भगवान ऋषभदेव के द्वितीय पुत्र श्री बाहुबली केवली को नमन करता हूँ ।
- सनत्कुमार राजर्षि को नमन करता हूँ ।
- भगवान महावीर स्वामी के प्रथम शिष्य श्री गौतम स्वामी को नमन करता हूँ ।
- श्री प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को नमन करता हूँ ।
- श्री दशार्णभद्र राजर्षि को नमन करता हूँ ।

- श्री गजसुकुमाल मुनि को, श्री मेतार्य मुनि को, श्री शालिभद्र मुनि को, श्री दढ़कुमार मुनि को, श्री धन्ना अणगार को, श्री चिलातीपुत्र मुनि को, श्री उदयन राजर्षि को वंदना करता हूँ ।
- श्री जंबूस्वामी को, श्री सुदर्शन मुनि को, श्री स्थूलभद्र मुनि को, श्री अयवंतीसुकुमाल मुनि को और श्री वज्रस्वामी मुनि वगैरह मुनिवरों को नमन करता हूँ ।

इस प्रकार मुनिवरों का पुण्य स्मरण करना चाहिए । यह वंदन-स्मरण करने के पश्चात् 'अधिकरणों की आलोचना' करनी चाहिए ।

## अधिकरणों का त्याग कर सोया करें :

इस प्रकार चिंतन करें कि गत जन्मों में उपार्जित किये हुए जो क्रोध-मान-माया और लोभरूप अधिकरण हैं, जिनका मैंने भाव से त्याग नहीं किया है, उनका मैं त्याग करता हूँ । देह के प्रमाद से और निद्रा के प्रमाद से जो अधिकरण (कर्मबंध के हेतु) पैदा होते हैं, उनका भी त्याग करता हूँ ।

अनेक जन्मों से जो कषायों की परंपरा चलती है आत्मा के साथ, इस प्रकार के चिंतन से वह परंपरा टूट जाती है । कषायों की तीव्रता कम होती है ।

## त्रिविध पाप-व्यापार का त्याग करें :

कषायों की आग शान्त हो, उसके साथ मन-वचन-काया की धर्मविरुद्ध प्रवृत्ति का मिच्छामि दुक्कडं देना चाहिए ।

- जो भी धर्मविरुद्ध मन में विचार किये हों,
- जो भी धर्मविरुद्ध वचन बोले हों,
- जो भी धर्मविरुद्ध शरीर की प्रवृत्ति की हो, वह मिथ्या हो, वह मिथ्या हो, मैं मिच्छामि दुक्कडं देता हूँ । पुनः मेरे जीवन में धर्मविरुद्ध, मन-वचन-काया की प्रवृत्ति न हो - ऐसी मैं भावना रखता हूँ ।

'यतिदिनचर्या' नाम के ग्रन्थ में यह बात कही गई है :

**जो मे धम्मविरुद्धो जाओ मण-वयण-कायवावारो ।**
**मिच्छामि दुक्कडं तस्स पुणरवि मा हुज्ज पावमई ।।**

## चार शरण का स्वीकार करें :

**'अरिहंते सरणं पवज्जामि,**
**सिद्धे सरणं पवज्जामि,**
**साहू सरणं पवज्जामि,**
**केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ।'**

'मैं अरिहंत परमात्मा की शरण स्वीकार करता हूँ, मैं सिद्ध भगवंतों की शरण स्वीकार करता हूँ, मैं साधुपुरुषों की शरण स्वीकार करता हूँ और सर्वज्ञ-प्रणित धर्म की शरण स्वीकार करता हूँ ।'

हम इन चार परम तत्त्वों की शरण स्वीकार करते हैं, तो वे तत्त्व हमारी रक्षा करते हैं । हमें सहारा देते हैं ।

चार शरण स्वीकार करने के बाद हमें सर्वत्र शुभ..... प्रशस्त और सुंदर की कल्पना करने की है -

## सर्वत्र प्रसन्नता है ! :

'अभी सभी शकुन प्रशस्त हैं, सभी स्वजन, सभी ग्रह और सभी नक्षत्र मेरे उपर प्रसन्न हैं । तीन भुवन के हितकारी जिनेश्वर भगवंत मेरे हृदय में हैं ।'

कितनी अच्छी बात कही है यह ? सोते समय अशुभ की, अमंगल की और उद्वेग की कल्पनाएँ नहीं करें । शुभ की, मंगल की और प्रसन्नता की कल्पनाएँ करें, भावना भायें ।

'मेरे सभी स्वजन मेरे उपर प्रसन्न हैं !' आप इस भावना से, आपके परिवार के साथ प्रसन्नतापूर्ण वातावरण निर्माण कर सकते हैं । भले, व्यवहार में वे आपसे संतुष्ट न भी हों, आपके प्रति नाराज हों, फिर भी आप सोचते रहें कि 'मेरे सभी स्वजन मेरे उपर प्रसन्न हैं ।'

'सभी ग्रह और नक्षत्र मेरे प्रति प्रसन्न हैं ।' यह भावना यदि प्रबल हो जाय तो प्रतिकूल ग्रह-नक्षत्र भी सानुकूल बन, आपके लिए आशीर्वाद रूप बन सकते हैं । 'मेरे सभी ग्रह प्रतिकूल हैं' इस प्रकार रोते रहने से, ग्रहों के प्रति तिरस्कार की भावना भाने से वे अनुकूल नहीं होते हैं । भले, शनि के ग्रह की महादशा

चलती हो । आप सोचें कि 'मेरे सभी ग्रह मेरे उपर प्रसन्न हैं..... प्रसन्न हैं...... प्रसन्न हैं !'

'मेरे हृदय में तीन भुवन के हितकारी जिनेश्वर बिराजमान हैं ।' यह भावना हमें निर्भय बनाती है । हमारे सभी प्रकार के अहितों की कल्पना को मिटा देती है । 'मेरे हृदय में परम हितकारी जिनेश्वर भगवंत हैं, मेरा कल्याण ही होगा।'

एक दूसरी भावना इस प्रकार भायें – 'सभी दिशाओं में से मुझे शुभ विचार प्राप्त हों ।' आप अनुभव करेंगे कि आपके मन में शुभ विचारों का ताँता लगा हुआ है ! शुभ की, मंगल की, कल्याण की ही कल्पना करते रहो ।

## आपकी श्रद्धा को दोहरायें :

अब आपकी आँखों में नींद उतर रही है, आपको सोना है, तो आपकी श्रद्धा को दोहरा कर सो जायँ !

**अरिहं देवो, गुरुणो सुसाहुणो, जिणमयं मह पमाणं ।**
**इय सम्मत्तविसुद्धो धम्मो मे होउ सइ सरणं ।।**

'अरिहंत मेरे देवता हैं, मेरे परमात्मा हैं, सुसाधु मेरे गुरु हैं और जिनशासन मेरा धर्म है,' इस प्रकार सम्यक्त्व से निर्मल धर्म, सदैव मुझे शरणभूत हो !'

'अरिहंत ही मेरे देवता हैं, मेरे आराध्य हैं, मेरे तारणहार हैं, उनके अलावा मैं किसी को मेरे देवता, मेरे भगवान नहीं मानता हूँ । सर्वज्ञ–वीतराग परमात्मा ही मेरे आराध्य और उपास्य रहेंगे ।' इस प्रकार आपकी श्रद्धा बनी रहनी चाहिए ।

'मैं तो सभी देवताओं को मानता हूँ ।' रागी–द्वेषी देवता और वीतराग परमात्मा – सभी को समान लाईन में बिठानेवाले मूर्ख लोग कैसी गंभीर भूल करते हैं ? नहीं करना ऐसी भूल । हाँ, दूसरे देवताओं का अनादर या तिरस्कार नहीं करना है, परंतु अपने आराध्य तो वीतराग परमात्मा ही रहने चाहिए ।

'मैं सुसाधुओं को ही मेरे गुरु मानता हूँ ।' गुरुतत्त्व का निर्णय होना चाहिए। जो मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं, जो जीवों को सन्मार्ग बताते हैं, वे ही सद्‌गुरु कहलाते हैं । जो स्वयं जिनाज्ञा को शिरोधार्य करते हैं और जिनाज्ञानुसार धर्मोपदेश देते हैं, वे ही सद्‌गुरु कहे जाते हैं ।

'जिनमत ही मेरा धर्म है !' क्योंकि जिनधर्म ही सही रूप में धर्म है। दुर्गति से जीवों को यह धर्म बचाता है। 'सभी धर्म समान हैं।' ऐसा कभी मानना नहीं, ऐसा कभी बोलना नहीं। सभी पत्थर भी समान नहीं होते हैं, तो फिर सभी धर्म कैसे समान हो सकते हैं ?

**'धर्मचिन्तया स्वपनम्।'** धर्मचिंतन करते करते सोना चाहिए, यह ग्रंथकार आचार्यदेव का उपदेश है। इस विषय में इतना विवेचन पर्याप्त है। इतना चिंतन करना होगा, तो भी एक घंटा लग जायेगा। इतना समय नहीं मिले तो इस चिंतन में से जितना भी हो सके उतना चिंतना करना। बात इतनी है कि शुभ भाव में निद्राधीन होना है ! ताकि समग्र रात्रि शुभ भावों में व्यतीत हो !

आज बस, इतना ही।

* * *

# प्रवचन : २६

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित '**धर्मबिंदु**' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में विशेष गृहस्थधर्म बताया है । यानी श्रावकधर्म का प्रतिपादन किया है । बारह व्रत और उन व्रतों के अतिचारों का विवेचन करने के बाद, श्रावक की दिनचर्या बतायी जा रही है ।

'नमो अरिहंताणं' बोलते ही निद्रात्याग करना है । यानी जगते ही श्री नमस्कार महामंत्र बोलना है । ग्रंथकार ने कहा : '**नमस्कारेणावबोधः ।**' जगते ही आपके मुँह से नमस्कार महामंत्र का शब्दोच्चार होना चाहिए । नये दिन का मंगल प्रारंभ, पाँच परमेष्ठी को नमस्कार करके करना है । क्योंकि ये पाँच नमस्कार, दुनिया के सभी मंगलों में श्रेष्ठ मंगल हैं । जीवात्मा के सभी पापों का नाश करने की शक्ति, इन पाँच नमस्कार में रही हुई है । अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु–ये पाँच परमेष्ठी हैं । क्योंकि ये पाँच ही विश्व में परम श्रेष्ठ हैं ।

## परम श्रेष्ठ ही परम इष्ट :

आप लोग किसको श्रेष्ठ मानते हो ? 'ये पाँच परमेष्ठी ही श्रेष्ठ है,' ऐसा विचार आपके मन में आता है ? 'पाँच परमेष्ठी से बढ़ कर कोई भी वस्तु या कोई भी व्यक्ति श्रेष्ठ नहीं है,' ऐसा निर्णय क्या आपके मन में हो गया है ? जब तक अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परम श्रेष्ठ नहीं लगेंगे तब तक वे आपके परम इष्ट नहीं बनेंगे । आप भुलावे में फँस जायेंगे । अरिहंतादि को परमेष्ठी मानते रहोगे और परम इष्ट दूसरे ही तत्त्व बन जायेंगे । आप सोचें । वर्तमान में आपको परम इष्ट क्या क्या है ?

याद रखें कि मनुष्य को इष्ट अनेक बातें हो सकती हैं, परम इष्ट एक ही वस्तु होती है । अनेक वस्तु प्रिय हो सकती हैं, परम प्रिय एक ही वस्तु होती है । उस परम प्रिय वस्तु के लिए, उस परम इष्ट वस्तु के लिए, दूसरी प्रिय और इष्ट वस्तुओं को छोड़ना पड़े तो वह छोड़ देता है ।

## इष्ट और परम इष्ट – प्रिय और परम प्रिय :

सीताजी को राजमहल प्रिय था, सुंदर वस्त्र–अलंकार भी प्रिय थे, स्नेही–स्वजन प्रिय थे, माता–पिता और भाई भी प्रिय थे; परंतु परम प्रिय तो मात्र राम ही थे ! इसीलिए जब श्रीराम वनवास के लिए चल दिये तब सीताजी सभी प्रियजनों को छोड़ कर, सभी प्रिय वस्तुओं को छोड़ कर उनके साथ वनवास में गये। यदि उनको राजमहल और सुख–सुविधायें परम प्रिय होती तो वे अयोध्या में रहती, श्रीराम के साथ वनवास में नहीं जाती। कह देती श्रीराम को कि 'मेरे से वनवास के कष्ट नहीं सहे जायेंगे, मैं यहाँ अयोध्या में रहूँगी, आपका नाम रटती रहूँगी, आपका इन्तजार करती रहूँगी, आप कुशल रहना !'

यदि सीताजी को परम प्रिय माता–पिता होते तो वह मिथिला चली जाती। हालाँकि माता–पिता प्रिय थे, परंतु परम प्रिय नहीं। परम प्रिय तो राम ही थे। इसलिए सभी प्रिय वस्तु और सभी प्रिय व्यक्ति का त्याग कर वह श्रीराम के साथ वन में चली थी।

एक गाँव में आग लगी थी। जिस घर में आग लगी थी, उस घर के स्त्री–पुरुष बाहर निकल गये थे। बहुत लोग इकट्ठे हो गये थे। आग बुझाने के प्रयत्न कर रहे थे। घर के एक कमरे में दो साल की लड़की सोयी हुई थी और उसी कमरे में लाख रुपये से भरी सूटकेस पड़ी हुई थी। दो में से एक बाहर लाया जा सकता था। या तो लड़की, अथवा लाख रुपये। पति–पत्नी के बीच कुछ कानाफूसी हुई, पति फायरप्रूफ कोट पहन कर घर में गया और चंद क्षणों में सूटकेस लेकर बाहर आ गया। लोग बोलने लगे : 'अच्छा किया, यह घर तो जल गया, रुपये बचा लिये तो नया घर बन जायेगा। बच्ची तो....' लोग हँसने लगे ! पति–पत्नी को बच्ची प्रिय होगी, परंतु पैसे परम प्रिय थे। इसलिए पैसे बचा लिये, लड़की को आग में जलने दी !

एक पिता को अपनी पुत्री परम प्रिय थी। वह मेरे पास आ कर, आँखों में से आँसू बरसाता हुआ कहने लगा था : 'महाराज सा., भगवान मेरी बेटी को बचा लेगा न ? मेरी बेटी को ब्लड–केंसर हुआ है। मैं भगवान को कहता हूँ – 'प्रभो, तूँ मुझे तेरे पास बुला ले, मेरी बेटी को बचा ले !' वह पिता, अपनी

पुत्री के लिए स्वयं अपने प्राण देने को तत्पर था ! क्योंकि लड़की उसको परम प्रिय थी, परम इष्ट थी ।

इंग्लैन्ड के एक राजा को एक प्रेयसी परम प्रिय थी । वह उससे शादी करना चाहता था । परंतु कानून के हिसाब से यदि वह उस लड़की से शादी करे तो राजसिंहासन छोड़ना पड़ता था । उसने राजसिंहासन छोड़ दिया और उस लड़की से शादी कर ली । क्योंकि लड़की उसे परम प्रिय थी !

वैसे, हमें पंच परमेष्ठी भगवंत प्रिय हैं क्या ? परम इष्ट हैं क्या ? प्रिय हो सकते हैं, परम प्रिय हैं क्या ? आत्मसाक्षी से सोचना । जब तक पंच परमेष्ठी सर्वश्रेष्ठ नहीं लगेंगे, तब तक वे परम प्रिय लगने मुश्किल हैं । मनुष्य का स्वभाव है कि वह जिसको अच्छा समझता है, उसको वह प्रिय लगता है । वह जिसको श्रेष्ठ समझता है, उसको वह इष्ट लगता है ।

जिस वस्तु को या जिस व्यक्ति को मनुष्य सुखदायी समझता है, वह उसको इष्ट लगता है, प्रिय लगता है । वैसे, दुःख दूर करनेवाली वस्तु और दुःख नष्ट करनेवाला व्यक्ति भी मनुष्य को प्रिय लगता है । इष्ट होता है । अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु–ये पाँच परमेष्ठी हमें सुखदायी और दुःखमोचक प्रतीत होंगे, तब वे हमें इष्ट और प्रिय लगेंगे । हमारी वह प्रतीति ज्यों ज्यों दृढ़ होती जायेगी, त्यों त्यों वे हमें परम इष्ट लगते जायेंगे, परम प्रिय बन जायेंगे । 'पंच परमेष्ठी ही भौतिक और आध्यात्मिक सुख देनेवाले हैं, वे ही कर्मजन्य सभी दुःखों से मुक्ति दिलानेवाले हैं,' ऐसी प्रतीति हृदय में हो जानी चाहिए ।

## पंच परमेष्ठी परम सुखदायक :

अनुभवी–ज्ञानी महापुरुषों ने श्री नमस्कार महामंत्र की महिमा बताते हुए कहा है :

**किं एस महारयणं ? किं वा चिंतामणि व्व ? नवकारो ।**
**किं कप्पदुमसरिसो ? न हु न हु ताणं पि अहिययरो ।।**
**चिंतामणि–रयणाइं कप्पतरू इक्कजम्मसुहहेऊ ।**
**नवकारो पुण पवरो, सग्ग–पवग्गाण दायारो ।।**

'क्या यह नवकार मंत्र महारत्न है ? चिन्तामणि रत्न है या कल्पवृक्ष समान है ? नहीं, नहीं, यह तो उन सबसे भी श्रेष्ठ है । क्योंकि चिंतामणि रत्न, कल्पवृक्ष वगैरह तो एक जन्म में सुख देनेवाले हैं, जब कि परम श्रेष्ठ नवकार तो स्वर्ग के सुख और मोक्ष के सुख देनेवाला है !' पंच परमेष्ठी को नमस्कार करने का यह श्रेष्ठ फल बताया है !

इसलिए, सर्वप्रथम मन से पाँच परमेष्ठियों के गुणों का स्मरण करें । वाणी से उनके गुणों की स्तुति करें और काया से उनको प्रणाम करें, नमस्कार करें। यह करने से आप जो भी मन से चाहेंगे, वचन से जो भी माँगेंगे और काया से जो भी कार्य शुरू करेंगे, आपका कार्य पूर्ण होगा, आपकी इच्छा पूर्ण होगी। आपकी प्रार्थना सफल होगी । श्री पंच परमेष्ठी भगवंतों का प्रणिधान कर, किसी भी शुभ कार्य का प्रारंभ करें, आपको शीघ्र कार्यसिद्धि प्राप्त होगी । मृत्यु के समय जिस मनुष्य के मुख में पंच परमेष्ठी भगवंत के नाम होते हैं, वह भवांतर में सद्गति ही पाता है । यदि उसका मोक्ष नहीं होता है तो वह अवश्य वैमानिक देवता होता है ! यानी देवताओं की श्रेष्ठ योनि में उत्पन्न होता है ।

**पंच परमेष्ठी परम दुःखविदारक :**

जिस प्रकार पंच परमेष्ठी का स्मरण परम सुखदायक है, वैसे उनका स्मरण–दर्शन–पूजन..... स्तवन, जीवों के दुःखों को मिटानेवाला है । अनुभवी–ज्ञानी पुरुषों की वाणी :

जो भव्य जीव करजाप से १०८ नवकार मंत्र का जप करता है उसे पिशाच वगैरह व्यंतरदेव परेशान नहीं करते हैं !

**न हु किंचि तस्स पहवइ डाइणि वेयाल रक्ख मारिभयं ।**
**नवकार पभावेणं नासंति य सयलदुरियाइं ।।**

'श्री नमस्कार महामंत्र के प्रभाव से डाकिनी, वैताल, राक्षस, रोग–भय वगैरह कुछ नहीं कर सकते और सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ।'

पंच परमेष्ठी–नमस्कार का चिंतन–स्मरण करने मात्र से पानी की बाढ़ रूक जाती है और आग स्तंभित हो जाती है । शत्रु के, रोग के, चोर के और राजाओं

के घोर उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। इधर–उधर भटकने की जरूरत ही नहीं है। दुःखों को दूर करने का यह श्रेष्ठ उपाय है ! अनुभव करके देखना, तब ये पंच परमेष्ठी प्रिय ही नहीं, परम प्रिय बन जायेंगे।

रोगों को नष्ट करने की भी शक्ति, इस नमस्कार महामंत्र में है। एक महर्षि ने कहा है :

> जापाज्जयेत्क्षयमरोचकमग्निमान्द्यं,
> कुष्ठोदराम–कसन–श्वसनादि–रोगान् ।
> प्राप्नोति चाऽप्रतिमवाग् महतीं महद्भ्यः
> पूजां परत्र च गतिं पुरुषोत्तमाप्ताम् ॥

'श्री नमस्कार महामंत्र के प्रभाव से, उसके जाप से क्षयरोग, अन्नअरुचि, अपच, कुष्ठरोग, आमरोग, श्वास, खाँसी वगैरह रोग नष्ट हो जाते हैं। इस महामंत्र का जाप करनेवाले मनुष्य को अप्रतिम वचनशक्ति प्राप्त होती है। वह महापुरुषों का भी पूज्य बनता है और परलोक में परम गति–मोक्ष पा लेता है कि जिसको पुरुषोत्तम ऐसे तीर्थंकर–गणधरों ने प्राप्त की है।'

कहने का तात्पर्य यह है कि श्री पंच परमेष्ठी–नमस्कार दुःखों को दूर करता है, सुखों को देता है, यश को विस्तृत करता है और भवसागर से पार लगाता है। इहलौकिक और पारलौकिक सभी सुखों का मूल यह नमस्कार महामंत्र हैं। पंच परमेष्ठी भगवंतों का स्मरण और चिंतन करना है। करते हो स्मरण–चिंतन परमेष्ठी भगवंतों का ? जब आप उनकी श्रेष्ठता जानोगे, आपके हृदय में वे परमेष्ठी परम प्रिय बन जायेंगे। तब स्वतः उनका स्मरण–चिंतन चलता रहेगा। आपको स्मरण करना नहीं पड़ेगा। जो परम प्रिय होता है उसकी स्मृति, प्रगाढ स्मृति बनी ही रहती है।

## पंच परमेष्ठी का स्वरूप :

**सभा में से :** हमें परमेष्ठी भगवंतों के स्वरूप का ही ज्ञान नहीं है, तो उनका स्मरण कैसे करें ?

**महाराजश्री :** बताता हूँ उनका स्वरूप ! आप उनकी सरलता से कल्पना

कर सकें, उनका ध्यान कर सकें, उस प्रकार बताता हूँ उनका स्वरूप। संक्षेप में बताता हूँ ताकि याद रह जाय ! सर्वप्रथम अरिहंत परमात्मा :

'देवताओं ने श्रेष्ठ और दिव्य पुद्‌गलों से नयनरम्य समवसरण की रचना की है। उस समवसरण पर विशाल अशोकवृक्ष की छाया है। मणिमय सिंहासन पर अरिहंत प्रभु बिराजमान हैं। उनके उपर तीन देदीप्यमान छत्र हैं। उनके मस्तक के पीछे तेजःपुंज समान भामंडल है। उनके दोनों ओर देवता चँवर लेकर खड़े हैं। सिंहासन के आगे पादपीठ है, उस पर दोनों पैर स्थापित कर वे बैठे हैं। अतिशय सौंदर्य है उनके शरीर का। अद्‌भुत कारुण्य है उनके नयनों में और सर्वाधिक माधुर्य है उनकी वाणी में। आकाश मुखरित है, देवदुंदुभि की आवाज सुनाई देती है, दिव्य ध्वनि कर्णगोचर होता है और आकाश से सुंदर, सुगंधी पुष्पों की अनवरत वृष्टि हो रही है।

अरिहंत परमात्मा के मुख से धर्मोपदेश का अमृत बह रहा है। सभी देव–देवेन्द्र, मनुष्य, पशु–पक्षी...... उस धर्मामृत का तन्मय हो, पान कर रहे हैं ! ऐसे अरिहंत मेरे शरण हो ! उनको मेरा नमस्कार हो !'

**सभा में से :** बहुत आनन्द आया ! लगा कि हम स्वयं समवसरण में ही बैठे हैं !

**महाराजश्री :** अब आपको यह महसूस करना है कि आप सिद्धशिला पर बैठे हैं ! सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप–ध्यान करें :

'आठों कर्म का क्षय कर, आप विशुद्ध बने हैं, संबुद्ध बने हैं, विमुक्त बने हैं। आप परमानन्दमय हैं। आप ज्योतिस्वरूप हैं। देहरहित हैं। अनामी और अरूपी हैं। अब आप जन्म और मृत्यु से मुक्त हो गये। अजर, अमर और अक्षय बन गये। अमल, अरुज और अनंत बन गये। सभी ध्याताओं के ध्येय बने और सभी श्रद्धावंतों के श्रद्धेय बने हैं। ऐसे सिद्ध परमेष्ठी मेरी शरण हो ! उनको मेरा नमस्कार हो !'

अनंत सिद्ध भगवंतों का, इस प्रकार कुछ क्षण प्रणिधान करते रहना चाहिए।

अब तृतीय आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप बताता हूँ :

'ज्ञान–दर्शन–चारित्र और तपश्चर्या से आप भावित हैं, प्रभावित हैं। औरों को आप ज्ञान–दर्शन–चारित्र और तपश्चर्या में प्रेरित करते रहते हो। जिनशासन के आप आधार–स्तंभ हैं। चतुर्विध संघ का योगक्षेम करनेवाले हैं, रखवाले हैं। जिनशासन की शान बढ़ानेवाले हैं। अनेक शिष्यों से परिवृत्त और अनेक गुणों से अलंकृत आचार्य परमेष्ठी मेरी शरण हो, उनको मेरा नमस्कार हो।'

अब चौथे उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप सुनें :

'आप एकादश अंग के ज्ञाता हैं, आप श्रेष्ठ ज्ञानी हैं। ज्ञानी हैं इतना ही नहीं, दूसरे सुयोग्य जीवों को ज्ञानी बनाने की आपमें तमन्ना है। ज्ञान का दान देते आप कभी थकते नहीं! आलस्य तो आपसे सौ योजन दूर भाग गया है! करुणा से और वात्सल्य से आपका छात्रवृन्द प्रभावित है, आप्लावित है, ज्ञान के शीतल प्रकाश से प्रकाशमान उपाध्याय परमेष्ठी मेरी शरण हो, उनको मेरा नमस्कार हो।'

अब पाँचवें साधु परमेष्ठी का स्वरूप बताता हूँ :

'महाव्रतों के धारक और पालक साधु भगवंत, आप मोक्षमार्ग की आराधना में लीन रहते हैं। समिति–गुप्ति आपकी माता है और आत्मा का शुद्धोपयोग आपके पिता हैं। आठों कर्मों का क्षय करने के लिए आप कटिबद्ध हैं। बाह्य और आभ्यंतर तपश्चर्या करते रहते हैं। हे साधु भगवंत, संयमधर्म का पालन करने में मैं असहाय हूँ, आप मुझे सहाय करते हैं, इसलिए **णमामिऽहं सव्व साहूणं**। साधु परमेष्ठी मेरी शरण हो, उनको मेरा नमस्कार हो।'

पंच परमेष्ठी का संक्षिप्त स्वरूप बताया। इसका जितना विस्तार करना हो, कर सकते हैं। कई घंटों तक कई दिनों तक पंच परमेष्ठी का स्वरूप–गान किया जा सकता है। परंतु वह गीत आपके हृदय में स्वतः स्फूरायमान हो, यह मैं चाहता हूँ। उनके प्रति आपके हृदय में परम प्रेम जागृत हो जायेगा, गीत स्वतः स्फूरित होंगे।

## ऐसे परमेष्ठी ही परम इष्ट होने चाहिए :

उन गीतों में जब आप मस्त होकर झूमने लगेंगे तब आपके चारों ओर दिव्य

वातावरण बन जायेगा । दिव्य अनुभूतियाँ होने लगेंगी । आप परमानन्द का आस्वाद करोगे ।

परन्तु पहला काम आपको परमेष्ठी भगवन्तों की पुनः पुनः स्तवना करते हुए, उनकी श्रेष्ठता का खयाल दृढ़ करना होगा । दुःखनिवारण की उनकी शक्ति पर विश्वास पक्का करना होगा । सुख प्रदान करने की उनकी परम करुणा पर एतबार दृढ़ करना होगा ।

अभी कल ही एक भाई मेरे पास आये थे । सुशिक्षित हैं, धनवान और बुद्धिमान हैं वे । परन्तु पारिवारिक दुःख से त्रस्त हैं । सभी प्रकार के सुख संसार में किसी को नहीं मिलते । वे जैन हैं । जन्म से उनको नवकार मंत्र मिला है, परन्तु नवकार मंत्र की शक्ति का, पंच परमेष्ठी भगवन्तों की अनन्त शक्ति का उनको ज्ञान नहीं होने से, उन्होंने दूसरे देवी–देवताओं की भी पूजा–भक्ति शुरू कर दी थी। फिर भी उनका दुःख वैसा का वैसा बना रहा ! मानसिक त्रास कुछ ज्यादा ही बढ़ गया । उन्होंने मुझसे पूछा : 'मैं नवकार मंत्र का स्मरण करता हूँ, ध्यान करता हूँ, फिर भी मेरे मन की अशुभ, राजसी वृत्तियाँ शान्त क्यों नहीं होती हैं ?' मैंने कहा : क्योंकि आपकी नवकार मंत्र के प्रति, पंच परमेष्ठी के प्रति अडिग–अखंड श्रद्धा नहीं है । आप माला फेरते रहे नवकार मंत्र की और पूजा करते रहे अम्बिका की, भैरव की और शंकर की ! आपका मन विभाजित हो गया । नवकार मंत्र की दुःखनिवारण की शक्ति पर आपका विश्वास नहीं रहा, आपका विश्वास घंटाकर्ण वीर पर हो गया । वहाँ भी आपका दुःख दूर नहीं हुआ तो आप देवी अम्बिका के पास गये । वहाँ भी निराशा मिली, तो आप भैरव की आराधना में लगे ! माला फेरते रहे नवकार मंत्र की, परन्तु यह मानते हुए कि 'नवकार मंत्र से मेरे दुःख दूर होनेवाले नहीं हैं ।'

जिस विधि से, जिस श्रद्धा से और जिस भाव से नवकार मंत्र का स्मरण, जाप और ध्यान करना चाहिए, उस प्रकार नहीं करते हैं और बोल देते हैं–'नवकार मंत्र से न तो मेरे दुःख दूर हुए, न सुख मिला, नवकार मंत्र का प्रभाव ही नहीं रहा...... !'

उस भाई ने कहा : 'आपकी बात सत्य है, मैं श्रद्धाभ्रष्ट हुआ हूँ, दिशाशून्य

बना हूँ । मुझे क्या करना चाहिए, क्या नही करना चाहिए, आप ही बताने की कृपा करें ।'

मैंने कहा : 'जैसे मैं कहूँ वैसे करने की आपकी तत्परता है ? यदि हाँ, तो मैं बता सकता हूँ ।'

उन्होंने दृढ़ता के साथ कहा : 'अवश्य करूँगा ।'

'ध्यान' करने का उनका अभ्यास था । अतः मैंने प्रथम परमेष्ठी अरिहंत का ध्यान करने की प्रक्रिया बतायी ।

**सभा में से :** हमें भी बताने की कृपा करें ।

**महाराजश्री :** बता सकता हूँ, परन्तु वैसे ध्यान करने की आपकी तत्परता होनी चाहिए । मुझे विश्वास है कि कुछ भाई–बहन अवश्य ध्यान करने का प्रयत्न करेंगे । अभी आप ध्यान से सुनेंगे, लिखेंगे नहीं । बाद में यदि लिखना होगा तो लिखवा दूँगा । अभी एकाग्र मन से सुनें ।

## अरिहंत परमात्मा के ध्यान की एक प्राचीन प्रक्रिया :

- शरीर को स्नान से पवित्र कर, ऊनी शुद्ध आसन पर, श्वेत वस्त्र धारण कर बैठें ।
- सुखासन अथवा पद्मासन लगाकर बैठें, पूर्व दिशा सन्मुख अथवा उत्तर दिशा सन्मुख बैठें ।
- शरीर को स्थिर करें, मौन धारण करें, मन को विचारों से मुक्त करें ।
- नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि स्थिर करें ।
- श्वास–निःश्वास मंद करें, प्रमाद का त्याग करें ।
- 'सभी जीव मेरे मित्र हैं, मेरे अपराधों को क्षमा करें.....' ऐसी प्रार्थना करें ।
- परम गुरुदेव गौतम स्वामी का स्मरण कर, भाववंदना करें ।

## अब, समवसरण की रचना की कल्पना करें :

- वायुकुमार देव आते हैं और भूमिशुद्धि करते हैं ।
- मेघकुमार देव आते हैं और सुगंधी जल का छिड़काव करते हैं ।

- ऋतुदेवता पुष्पवृष्टि करते हैं ।
- उस भूमि पर भवनपति देव और ज्योतिष देव रजत के, स्वर्ण के और रत्न के तीन गढ बनाकर समवसरण की रचना करते हैं ।
- पादपीठ, तीन छत्र, भामंडल सहित सिंहासन की स्थापना करते हैं ।
- समवसरण के उपर अशोकवृक्ष की छाया होती है ।
- वह समवसरण चक्रध्वज, सिंहध्वज, धर्मध्वज और ध्वजपट से शोभायमान है ।
- व्यंतर देव स्वर्ण कमलों की रचना करते हैं, अरिहंत परमात्मा उन कमलों पर चलते हैं ।
- अरिहंत परमात्मा चलते हैं, उनके आगे–आगे धूपघटायें फैलती हैं, देवसमूह जय–जयारव करते हैं, इन्द्र मार्ग में से लोगों को दूर करते हैं, देवता वाजिंत्र बजाते हैं ।
- समवसरण के पूर्वद्वार से परमात्मा प्रवेश करते हैं और पूर्वदिशा सन्मुख सिंहासन पर परमात्मा बैठते हैं ।
- उत्तर, दक्षिण और पश्चिम दिशा में देव परमात्मा के तीन प्रतिबिंब स्थापित करते हैं, जो साक्षात् परमात्मा ही दिखते हैं ।
- रत्नजड़ित दंडवाले चँवरों से इन्द्र हर्षित हो, परमात्मा की भक्ति करते हैं ।

**अब, समवसरण में कौन कहाँ पर बैठे हैं, ध्यान से देखें :**

- अग्निकोण में देखें । वहाँ गणधर भगवन्त बैठे हैं, मुनिवृन्द बैठा है, देवियाँ और साध्वीवृन्द खड़ा है ।
- वो है नैर्ऋत्य कोण । वहाँ जो हैं वे सभी देव हैं ! वाणव्यंतर देव, भवनपति देव और ज्योतिष देव हैं ।
- वायव्य कोण में जो खड़ी हैं वे सभी देवियाँ हैं । वाणव्यंतर, भवनपति और ज्योतिष की देवियाँ ।
- ईशान कोण में जो तेजस्वी देव दिखते हैं वे वैमानिक देव हैं और मनुष्य

हैं, मनुष्य महिलायें हैं ।

– दूसरे वलय में परस्पर का वैर–विरोध भूल कर, पशु शान्ति से कैसे बैठे हैं ! परमात्मा का ही यह प्रभाव है कि उनके सान्निध्य में सहजता से जीवों का वैरभाव दूर हो जाता है ।

**अब, तुम्हारी द्रष्टि अरिहंत परमात्मा की ओर केन्द्रित करें :**

– देखो परमात्मा अशोकवृक्ष के तले, तीन छत्रों के नीचे रत्नसिंहासन पर बैठे हैं और सभी श्रोतागण उनके चरणकमल में नतमस्तक हैं ।

– परमात्मा का शरीर, बारह–बारह सूर्य का तेजःपुंज ही देख लो ! कैसा देदीप्यमान है !

– देव और देवेन्द्रों के रूप से भी परमात्मा का रूप बढ़कर है ।

– परमात्मा, जीवों के मोहवृक्ष का उन्मूलन करनेवाले हैं ।

– परमात्मा रागरूप महारोग को मिटानेवाले हैं ।

– परमात्मा क्रोधाग्नि को शान्त करनेवाले हैं ।

– परमात्मा द्वेषरूप व्याधि के औषध समान हैं ।

– संसार–समुद्र में डूबते हुए जीवों का उद्धार करनेवाले हैं ।

– तीन भुवन के वे गुरु हैं, तीन भुवन के वे मुकुट समान हैं ।

– मोक्षमार्ग का उपदेश दे कर, जीवों के सभी पापों का नाश करनेवाले हैं ।

– परमात्मा सभी जीवों की सर्व संपत्ति के मूलरूप हैं, सर्वोत्तम पुण्य के उत्पादक हैं !

– जो उनका ध्यान करते हैं उनको वे मुक्ति देते हैं, महायोगी पुरुषों को आनंदित करते हैं ।

– परमात्मा जन्म, जरा और मृत्यु से मुक्त हैं..... !

इस प्रकार, परमात्मा अरिहंतदेव जैसे अपने पास ही हैं, वैसा आभास हो वहाँ तक निश्चल चित्त से ध्यान करते रहना है । अत्यंत भक्ति से नतमस्तक होकर परमात्मा के चरणों का स्पर्श करते हो, वैसी कल्पना करना और चिंतन

करना – 'हे भगवंत, मैंने आपकी शरण ग्रहण की है, आप ही मेरे शरण्य हो, मैं आपका हूँ ।'

ऐसा चिन्तन कर, सुगंधी उत्तम द्रव्यों से पूजा करना, स्तुति करना और 'बोधिलाभ' की प्रार्थना करना ।

– तत्पश्चात् आँखें खोलना ।

ध्यान पूर्ण हुआ ।

आया न आनन्द ? कल्पना के आलोक में समवसरण देखा न ? परमात्मा की सृष्टि में भ्रमण करने का मजा आया न ? भूल गये थे न इस दुःखमय दुनिया को ? परमात्म–मिलन का रोमांच अब भी अनुभव कर रहे हो न ?

शायद अभी नहीं परंतु बाद में आपके मन में प्रश्न पैदा हो सकता है कि 'इस ध्यान की फलश्रुति क्या होगी ?' कोई भी क्रिया हम करते हैं, तो क्रिया के फल के विषय में जिज्ञासा पैदा होना स्वाभाविक होता है ।

आचार्यश्री देवभद्रसूरिजी ने 'पार्श्वनाथ चरित्र' में इस ध्यान की फलश्रुति बताने की कृपा की है । बताता हूँ वह फलश्रुति, जो निम्नलिखित है :

- जो मनुष्य इस प्रकार प्रतिदिन ध्यान करता है उस मनुष्य की आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं करता है, उसका वचन मान्य होता है ।
- यदि उसके शरीर में रोग पैदा हुए हो, तो वे रोग शांत होते हैं ।
- अर्थोपार्जन के निमित्त मिल जाते हैं, अर्थप्राप्ति होती है और वह धनाढ्य बनता है ।
- उसे सौभाग्य और यश–कीर्ति की प्राप्ति होती है ।
- ये फल तो तुच्छ हैं, उसको जन्मांतर में देवलोक के दिव्य सुख मिलते हैं और (तीन अथवा आठ भवों में) मुक्ति के सुख प्राप्त होते हैं ।

प्रथम परमेष्ठी के ध्यान से दुःखक्षय और सुखप्राप्ति होती ही है, इस सत्य का स्वीकार करना ही होगा । वैसे पाँचों परमेष्ठी का ध्यान करना चाहिए । समवसरण में अरिहंत परमात्मा का ध्यान करने से जो पाँच प्रकार की फलप्राप्ति

बतायी है, उस विषय में एक प्राचीन कथा भी कही गई है। मंत्री शिवदत्त की कथा है।

## मंत्री शिवदत्त :

एक नगर था।

नगर का जो राजा था, उसके मंत्रीमंडल में 'शिवदत्त' नाम का एक मंत्री था।

शिवदत्त की कोई गलती हो गई और राजा ने उसको अपमानित कर दिया, मंत्रीपद से उसको हटा दिया। शिवदत्त की संपत्ति भी राजा ने ले ली। शिवदत्त दरिद्र हो गया। मंत्री, मंत्रीपत्नी, मंत्रीपुत्र और पुत्रवधू–परिवार में चार व्यक्ति थे। सभी दुःखी हो गये।

कुछ वर्षों के बाद, एक दिन उस नगर में एक 'अवधिज्ञानी' महर्षि पधारे। शिवदत्त सपरिवार उनका धर्मोपदेश सुनने गया। उपदेश सुनने के बाद, शिवदत्त ने महर्षि को वंदना कर प्रश्न किया : 'भगवंत, पूर्व जन्म में मैंने और मेरे परिवार ने ऐसे कौन से पापकर्म किये हैं; जिसकी वजह से मैं इस जन्म में घोर दरिद्रता को भोग रहा हूँ... ?'

अवधिज्ञानी महर्षि ने कहा : 'महानुभाव, तेरा जो यह पुत्र देवप्रसाद है, उसने पूर्व जन्म में एक सार्थवाह का विश्वासघात किया था। सार्थवाह के पास बहुत सारे मूल्यवान रत्न थे। देवप्रसाद के जीव ने, वे रत्न पाने के लोभ से, उस सार्थवाह को मूर्च्छित कर दिया और कपट से रत्न ले लिये। उस समय उसके परिवार में तुम तीनों थे। तुम तीनों ने उसके कपट की, चोरी की सराहना की और रत्नों से बहुत सारे सुख के साधन प्राप्त कर, साथ में ही उपभोग किया। तुम चारों ने घोर अंतराय कर्म बाँध लिया।

अनीति से, अन्याय से और छल–कपट एवं चोरी से धनप्राप्ति करनेवाले मनुष्य प्रगाढ 'लाभांतराय कर्म' बाँधते हैं। जब वह कर्म उदय में आता है तब जीव को अति दरिद्र बनाता है। निर्धन बनाता है।

– तुम चारों मरे, मर कर पशुयोनि में तुम्हारा जन्म हुआ। पशुजीवन में तुमने

बहुत दुःख पाया । बहुत कष्ट सहन किये । मृत्यु हुई ।

- मरकर तुम चारों मनुष्य बने । मनुष्य जीवन में भी अनेक दुःख सहने पड़े। संपूर्ण जीवन दुःखमय हुआ । परंतु दुःखों से त्रस्त होकर, श्वासरुंधन कर तुम चारों ने आत्महत्या कर ली ।
- मरकर तुम चारों व्यंतर–देवलोक में उत्पन्न हुए । दीर्घकाल तक उस जन्म में तुमने सुख भोगे । आयुष्य पूर्ण होने पर पुनः तुम्हारा मनुष्य गति में जन्म हुआ ।
- मनुष्य जीवन में सद्गुरु का संयोग मिला, तुम चारों ने दीक्षा ली । इस देवप्रसाद के जीव को छोड़ कर, तुम तीनों ने तपश्चर्या की और बहुत से पापकर्मों का क्षय कर डाला । इस देवप्रसाद की आत्मा संक्लिष्ट होने से, उसका कर्मक्षय नहीं हुआ..... । फिर भी साधुधर्म का पालन करने से, समाधि–मृत्यु हुई । मरकर तुम चारों, यहाँ इस नगर में जन्मे हो ।

देवप्रसाद का अन्तराय कर्म, तुम तीनों के लिए दुःख का निमित्त बना है। तुम चारों ने समूह में पापकर्म बाँधा था न ? इसलिए जब तक चारों में से एक व्यक्ति का भी वह अंतराय कर्म शेष रहेगा तब तक चारों को दुःख भोगने होंगे ।'

अवधिज्ञानी महर्षि के वचन सुनते सुनते चारों को पूर्व जन्मों की स्मृति हो आयी । शिवदत्त मंत्री ने कहा : 'भगवंत, आपने हमारे जो भव बताये, सत्य हैं । हमें पूर्व जन्मों की स्मृति हो आयी है । हम देख रहे हैं हमारे पूर्व जन्मों को । अब, देवप्रसाद के जो कर्म शेष हैं, उन कर्मों का नाश करने के लिए क्या करना चाहिए, यह बताने की कृपा करें ।'

'महानुभाव, समवसरण में अरिहंत परमात्मा का ध्यान करें । यह ध्यान, अशेष कर्मवृक्षों को समूल उखाड़ फेंक देने के लिए प्रचंड वायु समान है ।'

अवधिज्ञानी महर्षि ने उनको समवसरण का ध्यान करने की पद्धति बतायी, जो मैंने आपको अभी बतायी है । देवप्रसाद ने खड़े होकर कहा : भगवंत, मुझे श्रावकधर्म प्रदान करें, मैं आपके बताये अनुसार ध्यान करूँगा ।'

ध्यान के प्रभाव से देवप्रसाद का अन्तराय कर्म टूट गया ।

शिवदत्त राजा को प्रिय बन गया । राजा से सन्मान प्राप्त किया । समृद्धि मिली । जीवन के उत्तरार्ध में चारों विरक्त बने, दीक्षा अंगीकार कर ली ।

समाधि-मृत्यु होती है ।

चारों जीव, 'सनत्कुमार' नाम के देवलोक में उत्पन्न होते हैं ।

देवप्रसाद का जीव, देवलोक का आयुष्य पूर्ण कर, क्षितिप्रतिष्ठित नगर में 'सोम' नाम का राजकुमार होता है । यौवन में चंपकमाला नाम की राजकन्या से शादी करता है । बाद में वह राजा बनता है । रानी की और पुत्र की मृत्यु हो जाने से वह वैरागी बन जाता है ।

भगवान पार्श्वनाथ का वह समय था ।

सोम राजा ५०० राजकुमारों के साथ, भगवान पार्श्वनाथ के पास जाकर दीक्षा लेता है । भगवान पार्श्वनाथ के वे पाँचवें गणधर होते हैं ।

सभी कर्मों का क्षय कर वे मुक्तिगामी बने ।

समवसरण में अरिहंत परमात्मा का ध्यान करने से दुःख दूर होते हैं, सुख प्राप्त होते हैं, यश-कीर्ति फैलती है और मनुष्य कर्मक्षय कर, मुक्ति पा लेता है ।

पंच परमेष्ठी भगवंतों की यही श्रेष्ठता है । श्रेष्ठ हैं, इसलिए हमारे इष्ट हैं, परम इष्ट हैं । परम इष्ट वैसे पंच परमेष्ठी भगवंतों का स्मरण, सुबह उठते ही करना चाहिए । 'नमो अरिहंताणं......' बोलते ही जागना है । जागते ही मुँह से 'नमो अरिहंताणं' निकलना चाहिए । इससे पूरा दिन शुभ, मंगलमय और कल्याणकारी पसार होता है ।

जागने के बाद क्या करना चाहिए, दैनिक कार्यक्रम क्या होना चाहिए, ये सारी बातें आगे बताऊँगा ।

आज बस, इतना ही ।

* * *

# प्रवचन : २७

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित '**धर्मबिंदु**' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में विशिष्ट श्रावकधर्म बताया है। श्रावक जीवन की दिनचर्या विस्तार से बतायी है। सुबह से शाम तक श्रावक-श्राविकाओं को क्या करना चाहिए - इस विषय में स्पष्ट और विशद मार्गदर्शन दिया है। यदि जीवन को नियमित, व्यवस्थित और नियमबद्ध जीना है, तो यह मार्गदर्शन आपके लिए उपयोगी सिद्ध होगा। अनियमित, अव्यवस्थित और असंयमित जीवन जीनेवालों के लिए यह मार्गदर्शन कोई काम का नहीं है। उनको 'मार्ग' ही पसंद नहीं होता! फिर मार्गदर्शन किसलिए पसंद करेगा? उनको मार्ग नहीं, उन्मार्ग पसंद होता है! वे अर्थपुरुषार्थ में और कामपुरुषार्थ में भी उन्मार्गगामी होते हैं, धर्मपुरुषार्थ की तो बात ही छोड़ो।

शान्त, सुखी और समृद्ध जीवन की अपेक्षा रखते हो, तो अर्थ, काम और धर्म - तीनों पुरुषार्थ में नियमित, व्यवस्थित और संयमित बनना ही होगा। स्वच्छंदी और उन्मार्गगामी जीवन में शान्ति और सुख की आशा रखना व्यर्थ है। समृद्धि की अपेक्षा रखना बेकार है। अशान्ति और व्यथा-वेदनाओं में ही जीवन पूरा हो जाता है।

## दिन का मंगल प्रारंभ नवकार मंत्र से :

मनुष्य जीवन यदि ऐसे ही पूरा हो गया, तो अनंत जन्म दुर्गतियों में काटने होंगे। इसलिए कहता हूँ कि प्रमाद का त्याग कर, जीवन को नियमित, व्यवस्थित और संयमित बना लो। नियमित नौ बजे या दस बजे सो जाया करो, सुबह चार बजे या पाँच बजे उठ जाया करो। सोते समय श्री नवकार मंत्र का स्मरण और उठते समय भी श्री नवकार मंत्र का स्मरण! नये दिन का स्वागत श्री नवकार मंत्र से करो। पूरा दिन शुभ और मंगलमय 'पास' होगा।

**सभा में से :** रात में बारह-एक बजे के पहले सोते ही नहीं और सुबह सात-आठ बजे के पहले उठते नहीं!

महाराजश्री : परिवर्तन करना होगा । आदतें सुधारनी पड़ेगी । यदि सचमुच इस जीवन का साफल्य प्राप्त करना है, आत्मकल्याण के मार्ग पर चलना है, सात्त्विक आनंद प्राप्त करना है, तो मैं कहूँ वैसा सुधार करना ही पड़ेगा । चार या पाँच बजे जागना होगा और जागते ही नमस्कार महामंत्र का स्मरण करना होगा । नये दिन का मंगल प्रारंभ, परम मंगलभूत पंच परमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार कर, करना है !

## चैत्यवंदन :

उसके बाद 'चैत्यवंदन' करना है । छाने हुए अल्प पानी से स्नान कर, श्वेत और शुद्ध वस्त्र धारण कर आपको 'चैत्यवंदन' करना है । गृहमंदिर में जा कर करना है । पुष्प, धूप, दीपक, अक्षत, नैवेद्य, फल आदि से परमात्मा की पूजा करना है और चैत्यवंदन करना है । पुष्पादि से द्रव्यपूजा की जाती है, चैत्यवंदन भावपूजा–रूप है ।

यदि गृहमंदिर नहीं है तो पुष्पपूजा वगैरह पूजा नहीं कर सकते, परंतु चैत्यवंदन कर सकते हैं । ईशान कोण में श्री सीमंधर स्वामी की कल्पना कर, उनका आलंबन लेकर चैत्यवंदन कर सकते हैं । आजकल यह पद्धति नहीं है । हाँ, यदि प्रतिक्रमण करते हैं प्रतिदिन, तो प्रतिक्रमण के अंतर्गत 'चैत्यवंदन' करते हैं । परंतु परमात्मपूजा कर, चैत्यवंदन करने की परंपरा आज नहीं चलती है । फिर भी, आपकी भावना हो तो आप देहशुद्धि और वस्त्रशुद्धि के साथ 'चैत्यवंदन' कर सकते हो ।

## धर्म कौन कर सकता है ? :

परंतु हृदय में परमात्मा के प्रति भक्ति होगी और सम्यग् दर्शन का प्रकाश होगा तो ही 'चैत्यवंदन' करने की इच्छा पैदा होगी । अन्यथा नहीं । परमात्मा के प्रति 'संभ्रम'युक्त भक्ति जब जगती है तब हृदय हर्षोल्लास से भर जाता है । चमत्कारी हर्ष की अनुभूति होती है । 'मुझे कैसी सुंदर धर्मक्रिया प्राप्त हुई ! कैसे सर्वज्ञ–वीतराग परमात्मा मिले ! मैं धन्य हो गया !' प्रीति और भक्ति से हृदय गद्‌गद् हो जाना चाहिए । चित्त हर्षविभोर हो जाना चाहिए । प्रीति और भक्ति के उत्कट भाव से 'चैत्यवंदन' करना है । तब हृदय में अपूर्व शुभ विचार–अध्यवसाय पैदा होंगे ।

प्रीति–भक्ति का मूल सम्यक् श्रद्धा है । श्रद्धा में से पैदा हुई प्रीति–भक्ति, धर्मक्रिया को चैतन्यपूर्ण बनाती है । क्रिया में जड़ता नहीं रहती है । क्रिया आत्मा को स्पर्श करती है ।

– सम्यक् श्रद्धा है आपके हृदय में, परंतु प्रीति–भक्ति नहीं है ।

– प्रीति–भक्ति का उल्लास है, परंतु सम्यक् श्रद्धा नहीं है ।

तो आपके 'चैत्यवंदन' की धर्मक्रिया का कोई महत्त्व नहीं है । कोई विशेष फल नहीं मिलता है । न मन को तृप्ति होती है, न ही शुभ भाव की प्राप्ति होती है । अशुभ भाव नष्ट नहीं होते हैं । इसलिए श्रद्धा से एवं प्रीति–भक्ति के उल्लास से चैत्यवंदन करना है ।

## चैत्यवंदन कैसे करना है ? :

वह भी विधि से करना है । आगमदर्शित विधि से करना है । हर धर्मक्रिया करने की विधि आगमों में बतायी गयी है । जो भी धर्मक्रिया आपको करनी हो, आप ज्ञानी पुरुषों से उसकी विधि जान लें, समझ लें । चैत्यवंदन करने की जो विधि बतायी है, उस विधि से चैत्यवंदन करना है । मनमाने ढंग से.... जैसे तैसे नहीं करना है । विधि से की हुई प्रवृत्ति का अच्छा फल प्राप्त होता है । संसार–व्यवहार में भी विधि का महत्त्व माना गया है ।

जिस प्रकार आपके संसार में, हर कार्य में विधि का आग्रह रखते हो; हर कार्य, जिस प्रकार होना चाहिए, जिस समय होना चाहिए, उसी प्रकार करें, उस समय करें, तो आपका कार्य प्रशंसापात्र बनता है । आपकी उन्नति होती है । धर्मक्रिया भी, जिस प्रकार करने का विधान हो, वैसे ही करनी चाहिए । जिस समय जो धर्मक्रिया करने को कहा गया है, उस समय वो ही धर्मक्रिया करनी चाहिए । 'काल'–समय का बड़ा महत्त्व होता है ।

– मंत्रसाधना में समय का महत्त्व माना गया है । जिस दिन, जिस समय जो मंत्र जपने का होता है, उस दिन, उस समय मंत्रसाधना करने से ही कार्यसिद्धि होती है ।

– जिस समय जो बीज खेत में बोने का होता है, उस समय वही बीज किसान

बोता है.... तो अच्छी फसल प्राप्त करता है ।

- स्त्री जब ऋतुस्नाता होती है, उस समय संभोग करने से वह गर्भवती हो सकती है ।
- जिस समय औषध लेना होता है, उसी समय औषध लिया जाता है तो रोग दूर होता है । सुबह लेने का औषध शाम को लें और शाम को लेने का औषध सुबह लें तो ? रोग मिटने के बजाय बढ़ जाता है न ?

वैसे प्रत्येक धर्मक्रिया का अपना-अपना समय निश्चित होता है । आपकी जानकारी होनी चाहिए कि कौन-सी धर्मक्रिया किस समय करने की है । 'चैत्यवंदन' सुबह उठते ही प्रभात में करने का समय बताया गया है न ? वैसे पूजा का समय मध्याह्न है.... प्रतिक्रमण का समय सूर्योदय और सूर्यास्त है ।

धर्मक्रियाओं में कैसे बैठना, कैसे खड़े रहना, कैसे हाथ जोड़ना, कैसे पैर रखना वगैरह शास्त्रों में बताया गया है । जानकारी प्राप्त करनी चाहिए । आपका संकल्प चाहिए कि 'मुझे प्रत्येक धर्मक्रिया विधिपूर्वक करनी है । अविधि से.... अविवेक से नहीं करनी है !' तो ही आप हर धर्मक्रिया विधि से कर पाओगे। आसन-मुद्रा वगैरह का खयाल करोगे और पालन करोगे ।

## मन को धर्मक्रिया में जोड़ें :

फिर भी, विधि बाह्य क्रिया से संबद्ध है । आसन, मुद्रा वगैरह शरीर की विशिष्ट क्रियाएँ हैं । आप विधि का पालन करते हैं, परंतु आपका मन यदि उस धर्मक्रिया में जुड़ता नहीं है.... दूसरी बातों में भटकता है, तो धर्मक्रिया के प्राण ही नष्ट हो जायेंगे । सावधान रहें । मन फालतू विचारों में, दूसरे विचारों में चला न जाय अथवा शून्य न हो जाय । जो धर्मक्रिया आपकी चलती हो, उसी धर्मक्रिया में आपके मन का उपयोग रहना चाहिए । एक धर्मक्रिया करते समय दूसरी धर्मक्रिया के विचार भी नहीं करने चाहिए । यानी 'चैत्यवंदन' की क्रिया करते समय 'प्रतिक्रमण' की धर्मक्रिया के विचार नहीं करने चाहिए और प्रतिक्रमण करते समय चैत्यवंदन के विचार नहीं करने चाहिए । जो धर्मक्रिया चल रही हो, उसी धर्मक्रिया के विचार करें और भावसृष्टि को निर्मल एवं विशुद्ध बनायें ।

**सभा में से :** क्रिया में मन का उपयोग नहीं हो, तो क्या शुभ भाव उत्पन्न नहीं होते हैं ?

**महाराजश्री :** शुभ नहीं, अशुभ भाव पैदा होते हैं ! धर्मक्रिया में मन नहीं लगता है, तब मन कहाँ जाता है ? सिद्धशिला पर जाता है क्या ? महाविदेह क्षेत्र में सीमंधर स्वामी के पास जाता है क्या ? अनुभव होगा न आपको ? कहाँ जाता है ? दुकान में.... घर में.... स्नेही के पास.... पैसे के पास.... पत्नी के पास ? और क्या करता है ? धर्मध्यान या आर्तध्यान ? राग-द्वेष और मोह के विचार करता है न ? बार बार ऐसे अशुभ विचार करने से धर्मक्रिया निष्फल जाती है । धर्मक्रिया का फल जो मिलना चाहिए, नहीं मिलता है ।

धर्मक्रियाओं के दो फल प्राप्त करने हैं । दो प्रयोजन सिद्ध करने हैं ।

१. अशुभ भावों को मिटाकर शुभ भाव, शुभ अध्यवसाय पैदा करना ।

२. शुभ भाव में, शुद्ध भाव में चित्त को स्थिर करना ।

ज्यों ज्यों शुभ भाव में, शुद्ध भाव में चित्त की स्थिरता बढ़ती जायेगी त्यों त्यों ध्यान में, धर्मध्यान में प्रगति होती जायेगी । क्रमशः शुक्लध्यान की प्राप्ति और कैवल्य का प्रागट्य होगा । आत्मा पूर्णता के शिखर पर पहुँच जायेगी ।

## चित्तस्थिरता के तीन आलंबन :

परंतु, अशुभ भावों को मिटाने के लिए और शुभ भावों को जागृत करने के लिए आलंबन चाहिए चित्त के पास । मन जैसा शुभाशुभ आलंबन लेगा, वैसे शुभाशुभ भाव उत्पन्न होंगे । 'चैत्यवंदन' की धर्मक्रिया है, आप उस क्रिया में प्रवृत्त हैं.....

१. आपकी दृष्टि परमात्मा की मूर्ति पर स्थिर करें ।

२. आपके मन को चैत्यवंदन के सूत्र के शब्दों से जोड़े ।

३. चैत्यवंदन-सूत्र के अर्थ-चिंतन में मन को जोड़ें ।

मन को आज्ञा करें : 'तुझे चैत्यवंदन-सूत्र के एक-एक अक्षर को पढ़ना है और एक-एक शब्द के अर्थ का चिंतन करना है । जब तक मेरी यह क्रिया चलती रहे, तब तक तुझे यही काम करना है ।' दृढ़ संकल्प के बिना मन नहीं

मानेगा ।

**सभा में से :** हमें चैत्यवंदन-सूत्र के अर्थ नहीं आते हैं.....

**महाराजश्री :** अर्थज्ञान प्राप्त कर लो । यदि धर्मक्रिया की सार्थकता प्राप्त करनी है तो सूत्रों का शुद्ध उच्चारण करना सीख लो और अर्थज्ञान प्राप्त कर लो । आप लोगों के लिए मुश्किल नहीं है यह काम । आसन और मुद्राओं का ज्ञान भी प्राप्त कर लेना चाहिए । मेरे पास आना, मैं सिखाऊँगा । सीखने की गरज होनी चाहिए । धर्मक्रिया का सही फल प्राप्त करने की गरज होनी चाहिए ।

ये ही चित्तस्थिरता के आलंबन हैं । इन आलंबनों से ही चित्त स्थिर बन सकता है । स्थिर चित्त में शुभ भाव पैदा होते हैं । बस, शुभ भावों की प्राप्ति ही हमारा इष्ट है, हमारा उद्देश्य है । शुभ भावों से हमारा समग्र जीवन-व्यवहार पवित्र बन जायेगा । यह महान लाभ है ।

## एक सावधानी !

हृदय में श्रद्धा और प्रीति-भक्ति हो, क्रिया में विधि का पालन हो और चित्त का उपयोग हो, तो आपकी धर्मक्रिया निःसंशय शुभ भावों की जननी बनेगी । श्रेष्ठ क्रिया का श्रेष्ठ फल प्राप्त होगा । फिर भी एक सावधानी रखना ! मन में कोई भौतिक, सांसारिक सुख की आकांक्षा-कामना प्रवेश न कर दें ! 'इस चैत्यवंदन की धर्मक्रिया से मुझे धनसंपत्ति प्राप्त हो, पत्नी-पुत्र-परिवार की प्राप्ति हो, यश-कीर्ति प्राप्त हो, देवलोक के दिव्य सुख प्राप्त हो,' ऐसी इच्छाएँ पैदा नहीं होनी चाहिए ।

'मैं ऐसी धर्मक्रियाएँ करूँगा तो समाज की दृष्टि में 'अच्छा आदमी' बनूँगा, लोग मुझे धर्मात्मा कहेंगे, तपस्वी कहेंगे, सत्पुरुष कहेंगे ।' ऐसी कामनाएँ भी नहीं करना । दुनिया की दृष्टि में अच्छा दिखने से क्या ? हमें तो अनन्त सिद्ध भगवंतों की दृष्टि में और सज्जनों की दृष्टि में अच्छा बनना है । अच्छा बनने का प्रयत्न करना है, अच्छा दिखने का नहीं । अच्छा दिखने में तो दंभ आ जायेगा।

धर्म का उपयोग अच्छा बनने के लिए करना है, अच्छा दिखने के लिए नहीं । आप अच्छे हो, धर्म से अच्छे बने हो, फिर भी दुनिया की दृष्टि में आप अच्छे

नहीं दिखते हो, दुनिया आपकी प्रशंसा नहीं करती है, तो अफसोस नहीं करना। आपके जीवन में धर्म है, धर्म के प्रभाव से आपके विचार अच्छे हैं, व्यवहार अच्छा है, कार्य अच्छे हैं, तो आप कृतार्थ हैं ।

भौतिक, आधि भौतिक और देवीय सुखों की कामना से धर्मक्रिया करनेवाले लोग अपनी धर्मक्रिया को लाँछन लगाते हैं । कलंकित करते हैं । वह धर्मक्रिया शुभ भावों की जननी नहीं बन पायेगी । धर्मक्रियाओं को शुभ भावों की जननी ही रहने दो । उससे भौतिक–वैषयिक सुखों की कामना मत करें । सुख स्वतः मिलनेवाले हैं । शुभ भाव से पुण्यकर्म अर्जित होते हैं और पुण्यकर्म से भौतिक सुख मिलते ही हैं ।

भौतिक–वैषयिक सुखों की कामना–आकांक्षा से हृदय अशुद्ध बनता है, चित्त गंदा होता है । गंदे और अशुद्ध चित्त में धर्म पैदा ही नहीं होता है । धर्म का जन्म चित्त में ही होता है, यह बात आप जानते हो न ? निर्मल, पवित्र और विशुद्ध चित्त में धर्म का जन्म होता है और वह टिकता है । इसलिए भौतिक सुखों की आकांक्षा से चित्त को अशुद्ध नहीं करें ।

भौतिक सुखों की इच्छाएँ तो उत्पन्न होगी ही, परंतु धर्मक्रिया के फलस्वरूप भौतिक सुखों की आकांक्षा नहीं करें । हाँ, कभी किसी वैषयिक सुख की अत्यंत आवश्यकता उपस्थित होने पर 'मैं और देवताओं से सुख की याचना नहीं करूँगा, मुझे सुख माँगना है तो मेरे जिनेश्वर भगवंत से ही माँगूंगा ।' ऐसी श्रद्धा होने पर, यदि परमात्मा से वह भौतिक सुख माँगता है तो कोई दोष नहीं है । इससे उसका चित्त मलिन नहीं होता है ।

कभी कोई तीव्र पापकर्म उदय होता है, किसी सुख के अभाव में तीव्र आर्तध्यान होता है, उस समय यह जानते हुए भी कि 'मुझे भौतिक–वैषयिक सुख की आकांक्षा से धर्मक्रिया नहीं करनी चाहिए ।' वह आकांक्षा से करता है धर्मक्रिया, परंतु उसका मूलभूत लक्ष्य आर्तध्यान से बचने का है, नहीं कि वैषयिक सुखभोग, इसलिए उसका चित्त मलिन नहीं होता है ।

## धर्म करने की अधिकारिता किसको ? :

ये सारी बातें गंभीर हैं । धर्म करना, कोई सामान्य बात नहीं समझना । बड़ी गंभीर बात है । इस अपेक्षा से आचार्यदेव श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने 'ललितविस्तरा' नाम के ग्रंथ में धर्म करनेवालों की, धर्म ग्रहण करनेवालों की योग्यता देखने को कहा है । अयोग्य को धर्म देने का निषेध किया है । उन्होंने लिखा है :

**.....तथा अर्थी समर्थः शास्त्रेणापर्युदस्तो धर्मेऽधिक्रियते ।**

– जिस मनुष्य को धर्म की गरज हो,

– जो मनुष्य धर्म करने में समर्थ हो और

– जो मनुष्य धर्मशास्त्र से ही धर्म करने के लिए संमत हो ।

**सभा में से :** धर्म करने के लिए भी इतने नियम ?

**महाराजश्री :** हाँ, योग्यता–पात्रता देखनी ही पड़ती है । जैसे सेना में सभी पुरुषों को प्रवेश नहीं मिलता है न ? शरीर से जो सज्ज होता है और जिसका 'केरियर' अच्छा होता है, उसको ही सेना में प्रवेश मिलता है, वैसे ही धर्मक्षेत्र में भी प्रवेश पाने के लिए तीन प्रकार की योग्यता चाहिए ही ।

## धर्म पाने की गरज चाहिए :

धर्म वही मनुष्य पा सकता है, जिसको धर्म पाने की गरज हो । धर्म पाने की अभिलाषा हो । जिस प्रकार धन पाने की गरजवाला मनुष्य, कष्ट सहन करके भी धन पाने का पुरुषार्थ करता है, वैसे धर्म पाने की गरजवाला मनुष्य, कष्ट सहन करके भी धर्म का पुरुषार्थ करेगा । कष्ट देखकर धर्म छोड़ देगा नहीं । अथवा, धर्म पाने का प्रयत्न छोड़ देगा नहीं । परंतु जिसको धर्म की गरज नहीं होगी, उसको धर्म दिया जायेगा तो वह विधिपूर्वक, उल्लास से धर्म नहीं करेगा, कष्ट आने पर धर्म छोड़ देगा, दूर भाग जायेगा ।

जिस मनुष्य को धर्म की गरज नहीं है वह स्वयं धर्म खोजेगा नहीं, स्वयं चल कर किसी महात्मा के पास धर्म पाने के लिए नहीं जायेगा । किसी महात्मा ने उसके पास जाकर यदि समजा–पटा कर धर्म दे भी दिया, तो वह बे–मन से, अविधि से और खिन्न चित्त से धर्म करेगा । 'कब मेरी यह धर्मक्रिया पूर्ण

हो और मैं इस माहोल से बाहर निकलूँ !' यही उसका विचार होता है । वह कभी भी धर्मक्रिया करने के बाद उस क्रिया की प्रशंसा या अनुमोदना नहीं करता है ।

– जो मनुष्य अपने रोग की भयानकता समझता है, उसको औषध की कैसी गरज होती है, यह बात किसी केन्सर के पेशन्ट को जाकर पूछें । किसी टी.बी. के पेशन्ट से पूछो, किसी हार्ट–पेशन्ट को पूछो । और, जो बालक अपने रोग की भयानकता नहीं समझता है, वह औषध किस प्रकार लेता है, वह भी देखना। मुँह बिगाड़ेगा, रोयेगा, दवाई फेंक देगा.... । क्योंकि उसको दवाई की गरज नहीं है ! वह अपने रोग को समझता नहीं है ।

वैसे जो मनुष्य अपनी आत्मा के साथ लगे हुए अनंत कर्मों की भयानकताको नहीं समझता है, कर्मों के कटु विपाकों को नहीं समझता है, वह भी छोटे बच्चेवाली बात करता है ! वह धर्म के साथ वैसा ही व्यवहार करता है, जैसे बच्चा औषध के साथ व्यवहार करता है ।

इसलिए पहला काम धर्म देने का नहीं करना चाहिए गुरुजनों को । पहला काम जीवों में धर्म की गरज पैदा करने का करना चाहिए । उनके मन में यह बात उतारनी चाहिए कि 'तुम्हारे सभी दुःखों का मूल तुम्हारे ही बाँधे हुए पाप–कर्म हैं । वे पापकर्म जब तक नष्ट नहीं होंगे, तब तक तुम्हें दुःख भोगने ही पड़ेंगे । त्रास सहने ही पड़ेंगे ।'

तब यदि वह कहें कि 'उन पापकर्मों का नाश करने का उपाय बताने की कृपा करें ।' तो फिर आप उसको 'धर्म' का उपाय बतायें । 'धर्म के प्रभाव से कर्मों का नाश हो सकता है ' – यह बात अनेक तर्कों से और अनेक दृष्टांतों से समझाये । उसके मन में धर्म की गरज पैदा होगी । वह श्रद्धा से, प्रेम से और विधिसहित धर्म की आराधना करेगा ।

## धर्म – आराधना करने का सामर्थ्य चाहिए :

धर्म का स्वीकार करने की, धर्म का पालन करने की अभिलाषा मन में पैदा होने पर भी यदि धर्मपालन करने का सामर्थ्य न हो, तो मनुष्य धर्म–आराधना

नहीं कर सकता है। सामर्थ्य दो प्रकार का होना चाहिए : मानसिक और शारीरिक। मानसिक शक्ति और कायिक शक्ति होने पर, विशिष्ट धर्मपुरुषार्थ मनुष्य कर सकता है। धर्म-आराधना में आनेवाले विघ्नों पर विजय पा सकता है। उपसर्ग आने पर निर्भय हो, समताभाव से सहन कर सकता है।

श्रमण भगवान महावीर स्वामी के प्रमुख १० श्रावकों में 'कामेदव' का नाम आता है। आपने शायद कामदेव श्रावक का वृत्तांत नहीं सुना होगा।

**सभा में से :** नहीं सुना है, दसों श्रावकों के वृत्तांत-जीवनचरित्र नहीं सुने हैं।

**महाराजश्री :** अनेक भव्य प्रेरणाएँ प्राप्त होगी इन श्रावकों के जीवनचरित्रों में से। श्रमण भगवान महावीर स्वामी से धर्मोपदेश सुन, उनमें धर्मपुरुषार्थ करने की अभिलाषा पैदा हुई थी। गृहस्थधर्म का उत्कृष्ट रूप से पालन करने का सामर्थ्य उनमें देखकर, भगवान ने उनको बारह व्रत दिये थे। व्रतों का उन्होंने उत्कृष्ट रूप से पालन किया था। मिथ्यादृष्टि देवताओं ने उन पर उपसर्ग किये थे, कष्ट दिये थे.... फिर भी वे व्रतभ्रष्ट नहीं हुए थे। दृढ़ मनोबल से वे अपने व्रतधर्म में दृढ़ रहे थे। इस विषय में आज मैं 'कामदेव' का वृत्तांत सुनाता हूँ।

## महान श्रावक कामदेव :

मगध देश में 'चंपा' नाम की नगरी थी।

उस नगरी में कामदेव नाम का धनाढ्य श्रेष्ठी रहता था। वह नगर का बड़ा विश्वस्त पुरुष था। अनेकविध महत्त्वपूर्ण मंत्रणाओं में, गुह्य बातों में, विशिष्ट निर्णयों में और व्यवहारों में राजा कामदेव के साथ परामर्श करता था। वह राजमान्य था, साथ ही प्रजाप्रिय था। नगर के बड़े बड़े श्रीमंत सार्थवाह, कामदेव से परामर्श कर, महत्त्वपूर्ण कार्य करते थे।

अपने परिवार का भी वही आधार था।

उसके पास ६ करोड़ स्वर्णमुद्राएँ थी। ६ करोड़ स्वर्णमुद्राएँ व्यापार में लगी हुई थी। ६ करोड़ स्वर्णमुद्राएँ धन-धान्य, नौकर, वाहन, पशु, अनेक सुंदर राजमहल सदृश मकान, उद्यान वगैरह में लगी हुई थी। यानी ६ करोड़ की स्थावर

संपत्ति थी । गायों के ६ व्रज थे । एक एक व्रज में १०–१० हजार गौए थीं ।

कामदेव की भद्रा नाम की पत्नी थी । वह अत्यंत रूपवती थी, सर्वांगसुंदर थी, प्रियदर्शना थी और प्रमाणोपेत अंगोपांगवाली थी । पतिभक्ता थी । कामदेव समान कामदेव के साथ वह शब्द–रूप–रस–गंध और स्पर्श के वैषयिक सुखों को भोगती हुई, स्वर्ग समान सुख अनुभव कर रही थी ।

उस चंपानगरी के उत्तर–पूर्व दिशा के मध्य, ईशान कोण में अत्यंत प्राचीन और प्रसिद्ध 'पूर्णभद्र' नाम का एक चैत्य था । वह चैत्य चंदन के सुंदर कलशों से मंडित था और उसके हर एक दरवाजे पर चंदन के घड़ों के तोरण बँधे हुए थे । उपर–नीचे सुगंधित पुष्पों की बड़ी–बड़ी मालायें लटकाई हुई थीं । पंचवर्ण के सुगंधित फूल और श्रेष्ठ सुगंधयुक्त धूप से वह चैत्य महकता रहता था । चैत्य के शिखर पर विशाल ध्वजा फहरा रही थी । चैत्य के द्वार पर लगे हुए बड़े बड़े घंट बजते रहते थे ।

चैत्य के भीतर भूमि गोमयादि से लिपी हुई थी । दीवारों पर श्वेत रंग की चमकीली मिट्टी पुती हुई थी । उन पर चंदन के थापे लगे हुए थे । बहुत से भक्त लोग वहाँ पूर्णभद्र यक्ष को आहूति देने, उसकी पूजा करने, वंदन करने और ध्यान करने के लिए आते थे । बहुत लोगों की उपासना का वह स्थान था । पूर्णभद्र यक्ष की दैवी शक्ति, उपासकों की लौकिक कामनाओं को पूर्ण करती थी । अनेक लोग दूर–दूर से आकर पूर्णभद्र यक्ष की अर्चा–पूजा करते थे ।

श्रमण भगवान महावीर गाँव–गाँव नगर–नगर विहार करते हुए एक दिन चंपानगरी पधारे । वे पूर्णभद्र चैत्य में बिराजित हुए । वहाँ समवसरण हुआ । चंपानरेश जितशत्रु उस समवसरण में गया । हजारों नगरवासी भी समवसरण में गये ।

भगवान के आगमन की बात कामदेव को मालूम हुई । उसने भगवान के पास जाने का और दर्शन–वंदन करने का निर्णय किया । उसने स्नान किया, शुद्ध वस्त्र पहने, आभूषण पहने और विशाल परिवार के साथ वह पूर्णभद्र चैत्य की ओर चला । जहाँ भगवान बिराजते थे, वहाँ गया । तीन बार उसने भगवान

की परिक्रमा की और वंदना कर उपदेश सुनने बैठा ।

भगवान की धर्मदेशना सुन कर, कामदेव बड़ा संतुष्ट हुआ, बहुत ही प्रसन्न हुआ । उसने विनय से भगवान को कहा :

'भन्ते, मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में विश्वास करता हूँ । आपके निर्ग्रन्थ प्रवचन से मैं सन्तुष्ट हूँ । निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य है, वह मिथ्या नहीं है । भन्ते, मैं साधु बनने, निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या स्वीकार करने में असमर्थ हूँ । मुझे गृही–धर्म प्रदान करने की कृपा करें ।'

कामदेव ने भगवान के पास गृहस्थ धर्म के बारह व्रत ग्रहण किये । कुछ प्रश्न पूछे, भगवान ने उत्तर दिये, मन निःशंक हुआ । उसने भगवान को तीन बार वन्दना की और वह अपने घर लौट आया । हर्षित मन–वचन–काया से उसने अपनी पत्नी भद्रा से कहा :

'हे देवानुप्रिये, मैंने श्रमण भगवान महावीर से धर्म सुना और वह धर्म मुझे इष्ट है । वह धर्म मुझे बहुत रुचिकर लगा है । हे भद्रे, इसलिए तुम भी भगवान के पास जाओ । उनको वन्दना करो, उनकी पर्युपासना करो और उनसे व्रतमय गृहस्थ धर्म स्वीकार करो ।'

कामदेव की बात सुन कर भद्रा आनंदित हुई । भद्रा ने स्नान किया, कौतुक मंगल और प्रायश्चित किया । शुद्ध और प्रायोग्य वस्त्र पहन कर, अल्प और मूल्यवान अलंकारों से शरीर का शृंगार कर वह धार्मिक वाहन में बैठी । अनेक दासियों के साथ वह जहाँ श्रमण भगवान महावीर बिराजते थे उस पूर्णभद्र चैत्य में आयी ।

वह भगवान के सन्मुख गयी । उसने तीन बार भगवान को वंदना की और न अति दूर, न अति निकट, हाथ जोड़कर खड़ी रही ! भगवान का उपदेश सुनकर भद्रा बहुत संतुष्ट हुई । उसने भगवान को कहा : 'हे भन्ते, मैं आपके निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ । मैं प्रव्रजित होने में तो समर्थ नहीं हूँ, परंतु मैं बारह व्रत अंगीकार करना चाहती हूँ ।' भगवान के पास भद्रा ने बारह व्रत स्वीकार कर लिए और वह भगवान को वन्दना कर वापस अपने घर लौट गयी ।

व्रतपालन, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास वगैरह धर्म–आराधना करते करते १४ वर्ष व्यतीत हो गये। पंद्रहवाँ वर्ष चल रहा था। एक दिन रात्रि के उत्तरार्ध में धर्मानुष्ठान करते करते कामदेव ने विचार किया : 'मैं इस चंपानगरी में राजा–प्रजा और परिवार का आधार हूँ। इस व्यग्रता के कारण मैं विशिष्ट धर्मसाधना नहीं कर पाता हूँ। इसलिए कल सूर्योदय होने पर स्नेही–स्वजनों का सत्कार–सन्मान कर, ज्येष्ठ पुत्र को सारी जिम्मेदारी सौंपकर, मैं नगर–बाह्य पौषधशाला में जाकर, पौषधोपवास आदि धर्म–आराधना करता रहूँ।'

दूसरे दिन कामदेव ने स्नेही–स्वजनों को बुलाया। उनका सत्कार–सन्मान किया। उनसे अनुमति ली। घर की सारी जिम्मेदारी ज्येष्ठ पुत्रो को सौंप दी और वह पौषधशाला में जाकर विशेष रूप से धर्माराधना करने लगा। समय व्यतीत होने लगा।

एक रात्रि में, एक देवता पिशाच का रूप धारण कर, हाथ में तलवार लेकर कामदेव के पास आया। अति क्रोध से उसकी दोनों भ्रमर टेढ़ी हो गयी थी, फटे हुए मुँह में से उसकी जीभ बाहर लटक रही थी, वह हाथ पर हाथ पछाड़ रहा था, गर्जना कर रहा था, भयानक हास्य कर रहा था, रोष–क्रोध और गुस्से से उग्रता धारण करते हुए उसने कामदेव को कहा :

'तूँ अपने मौत को बुला रहा है। रे अधमाधम, कुलक्षण, हीनपुण्य, क्या तूँ धर्म की कामना करता है ? तूँ पुण्य की कामना करता है ? तूँ स्वर्ग और मोक्ष की कामना करता है ? हे दुष्ट, क्या तूँ अपने शील से, व्रत से और पौषधोपवास से डिगना नहीं चाहता है ? परंतु आज मैं तुझे अवश्य डिगाऊँगा। आज तूँ यदि व्रत वगैरह का त्याग नहीं करेगा तो मैं इस तलवार से तेरे टुकड़े–टुकड़े कर डालूँगा !'

पिशाच के ऐसे भयजनक वचन सुनने पर भी कामदेव न भयभीत हुए, न जरा भी चंचल हुए। पिशाच ने पुनः पुनः उनको धमकियाँ दी, फिर भी कामदेव अडिग रहे, निश्चल रहे। क्रूद्ध पिशाच कामदेव के शरीर के टुकड़े करने लगा.... तो भी असह्य वेदना सहते हुए कामदेव धर्मध्यान में स्थिर बने रहे !

पिशाच की हार हुई । वह पौषधशाला से बाहर निकला । उसने हाथी का रूप धारण किया । पौषधशाला में प्रविष्ट होकर कामदेव को कहा : 'यदि तूँ मेरे कहे अनुसार व्रतों का त्याग नहीं करेगा, तो तुझे आकाश में उछालूँगा, पृथ्वी पर पटक दूँगा, पैरों के तले मसल डालूँगा !' इस धमकी से भी कामदेव विचलित नहीं हुए । तीन बार धमकी दी, फिर भी कामदेव स्थिर रहे, अडिग रहे तब हाथी ने उसको आकाश में उछाला, पृथ्वी पर पटक दिया, पैरों के तले कुचलने लगा...... ! कामदेव ने इस भयानक वेदना को भी समताभाव से सहन कर ली ।

देवता निराश हो गया । पौषधशाला के बाहर आकर उसने भयानक सर्प का रूप धारण किया । वह भीतर आया । कामदेव को सताना शुरू किया, शरीर को काटने लगा.... बहुत कष्ट देने लगा, परंतु वह कामदेव को विचलित नहीं कर पाया ।

उसने अपनी हार स्वीकार कर ली । देवता का मूल रूप धारण किया और कामदेव के पास आकर बोला : 'हे कामदेव, तुम धन्य हो, तुम्हारा सत्त्व और धैर्य अद्‌भुत है । निर्ग्रन्थ प्रवचन में तुम्हारी श्रद्धा मेरूवत् निश्चल है । हे देवानुप्रिय, इन्द्र ने देवसभा में कहा था कि 'चंपानगरी की पौषधशाला में कामदेव श्रावक, भगवान महावीर स्वामी का निर्ग्रन्थ प्रवचन स्वीकार कर रहा है । किसी देवता में भी ऐसी शक्ति नहीं है कि जो कामदेव को विचलित कर सके ।' हे धीर पुरुष, मुझे इन्द्र के इस कथन पर विश्वास नहीं हुआ । मैं यहाँ आया और तुझे हैरान–परेशान किया, बहुत कष्ट दिये । मुझे क्षमा करो.... क्षमा करो....।'

देवता क्षमा माँगकर चला गया ।

प्रभात हो गया था । उन्होंने सुना कि 'श्रमण भगवान महावीर पूर्णभद्र चैत्य में पधारे हैं ।' कामदेव ने सोचा : 'भगवान के पास जाकर, उनको वन्दन–नमस्कार कर, बाद में ही पौषधोपवास का पारणा करूँगा ।' कामदेव ने बाहर जाने योग्य शुद्ध वस्त्र पहने और विशाल जनसमूह के साथ वे पूर्णभद्र चैत्य में गये । धर्मोपदेश देने के बाद भगवान महावीर ने कामदेव को संबोधित कर, रात्रि की घटना सुना दी और पूछा :

'क्या मैंने कहा, वैसा ही देवता का उपसर्ग तूने समताभाव से सहन किया न ?'

'हाँ भगवन्त, आपने जो कहा, वैसा ही हुआ था रात्रि में !'

भगवान ने वहाँ उपस्थित साधु–साध्वीओं को संबोधित करते हुए कहा :

'एक गृहस्थ श्रावक भी देवता के उपसर्ग को समताभाव से सहन करता हुआ ध्यानमग्न रहता है, विचलित नहीं होता है, तो फिर द्वादशांगी के धारक ऐसे साधुओं को उपसर्ग सहन करने में सर्वथा दृढ़ रहना चाहिए ।'

भगवन्त को पुनः वंदना कर कामदेव पौषधशाला में चले गये । कामदेव ने बहुत से व्रतों से अपनी आत्मा को भावित किया । २० वर्ष तक श्रावक का व्रतमय जीवन व्यतीत किया । ११ प्रतिमाओं की भलीभाँति आराधना की । एक मास की संलेखना की, अनशन किया, समाधि – मृत्यु हुई !

वे सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुए । अभी वे वहाँ ही हैं – सौधर्मावतंसक विमान के ईशान कोण में 'अरुणाभ' नाम के विमान में, आप वहाँ जाएँ तो मिलना !

गौतम स्वामी ने भगवान को पूछा : 'भगवन्त, वहाँ से कामदेव कहाँ उत्पन्न होगा ?'

भगवान ने कहा : 'गौतम, वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा और उसी जन्म में वह निर्वाण पाएगा ।'

## उपसंहार :

धर्म का स्वीकार करनेवाले ऐसे समर्थ, शक्तिमान होने चाहिए, जो कष्ट आने पर भी, लालच आने पर भी, धर्म को छोड़ न दें । कामदेव ऐसे ही धीर और वीर पुरुष थे ! स्वयं तीर्थंकर परमात्मा ने उनकी स्वमुख से प्रशंसा की !

कितना प्रेरणादायी है कामदेव का यह चरित्र ? सुनकर मन में आपको भी धीर–वीर बनकर धर्म–आराधना करने के मनोरथ पैदा हुए न ? 'मैं भी दृढ़ता से व्रत–नियमों का पालन करूँगा !'

धर्म करनेवाला मनुष्य, अर्थी होना चाहिए, समर्थ होना चाहिए और शास्त्रसंमत

होना चाहिए – इस विषय में आज दो बातें बतायी हैं, तीसरी बात कल बतलाऊँगा और 'चैत्यवंदन' के विषय में भी और दूसरी बातें बतानी हैं, समझानी हैं, वे भी कल समझाऊँगा ।

आज बस, इतना ही ।

* * *

# प्रवचन : २८

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में विशिष्ट श्रावकधर्म का निरूपण किया है। श्रावक जीवन की दिनचर्या बताते हुए उन्होंने कहा : '**श्रावक-श्राविकाओं को जगते ही श्री नवकार मंत्र का स्मरण करना चाहिए। बाद में देहशुद्धि एवं वस्त्रशुद्धि कर, चैत्यवंदन करना चाहिए।**'

'चैत्यवंदन' एक धर्मक्रिया है। धर्मक्रिया सामान्य-साधारण क्रिया नहीं है, महत्त्वपूर्ण क्रिया है। इहलौकिक दृष्टि से और पारलौकिक दृष्टि से धर्मक्रिया का बड़ा महत्त्व है। ऐसी धर्मक्रिया को करनेवाला मनुष्य भी सामान्य-साधारण नहीं चल सकता है। वह योग्यतासंपन्न होना चाहिए। तीन प्रकार की योग्यता अपेक्षित होती है :

* धर्मक्रिया की गरज होनी चाहिए।
* धर्मक्रिया को पूर्ण करने का सामर्थ्य होना चाहिए।
* गुणमय व्यक्तित्व होना चाहिए।

## धार्मिक मनुष्य गुणवान होना चाहिए :

पहली दो प्रकार की योग्यता के विषय में विवेचन कर चुका हूँ, आज तीसरे प्रकार की योग्यता के विषय में समझाना है। धर्म करनेवाला मनुष्य गुणवान होना चाहिए और वही शास्त्रसंमत योग्य व्यक्ति है, धर्म करने के लिए। गुणरहित मनुष्य का धर्मक्षेत्र में प्रवेश निषिद्ध है! ज्ञानी पुरुषों ने गुणहीन मनुष्यों को धर्म देने का निषेध फरमा दिया है। दोषयुक्त मनुष्य, गंभीर दोषवाला मनुष्य धर्मक्षेत्र में आता है तो धर्मक्षेत्र लोकनिंदा का विषय बन जाता है। अज्ञानी लोग उसकी निंदा तो करते हैं, धर्म और धर्मगुरुओं की भी निंदा करते हैं। वे लोग धर्म के प्रति, धर्मगुरुओं के प्रति, धर्मस्थानों के प्रति दुर्भाववाले बन जाते हैं।
- धर्मक्रिया करनेवालों को मंदिर में, उपाश्रय में, आयंबिल भवन में तीव्र क्रोध

करते हुए, झगड़ा करते हुए देखकर युवकवर्ग धर्म से नफरत करने लगा है ।

– धर्मक्रिया करनेवालों को दाणचोरी करते, जुआ खेलते, शराब पीते और क्लबों में परस्त्रीओं के संग नाचते देखकर, कई बुद्धिमान लोग धर्मक्षेत्र से दूर चले जाते हैं !

– धर्म करनेवालों की अति कृपणता देखकर, उनकी निर्दयता देखकर, उनका अविनय और औद्धत्य देखकर, कई सुशिक्षित लोगों ने मंदिर आना छोड़ दिया है । साधुओं के उपदेश सुनना छोड़ दिया है ।

– धर्म करनेवाले जब कष्ट आते हैं, दुःख आते हैं; तब धर्म छोड़ देते हैं, कार्य का प्रारंभ कर, बीच में ही कार्य छोड़ देते हैं । दीर्घदृष्टि से कार्य नहीं करते हैं; तब समाज के लोगों को उनके प्रति अभाव हो जाता है, धर्मकार्य में विश्वास नहीं रहता है ।

– धर्म करनेवाले जब दूसरों के साथ निर्लज्ज व्यवहार करते हैं, बड़ों की मर्यादा तोड़ देते हैं, छोटे–बड़ों का अनादर–तिरस्कार कर देते हैं, गंदे शब्द बोलते हैं, तब दूसरे लोगों को धर्म और धर्म करनेवालों के प्रति दुर्भाव हो जाता है और वे धर्म से विमुख बन जाते हैं ।

मुझे एक बार इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिला ।

एक राज्य के मुख्य मंत्री मिलने आये थे । अनेक विषयों पर बातें हुई । जैन धर्म के प्रति उन्होंने अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहा : 'जैन धर्म और जैन समाज मुझे बहुत पसंद है । जैन धर्म जीवंत धर्म है, जैन समाज निर्व्यसनी और अहिंसक समाज है । यह धर्म राष्ट्रधर्म–विश्वधर्म बनने की क्षमता रखता है । परंतु आप नाराज न हों तो एक कटु बात कहुँ ?'

मैंने कहा : 'नाराज होने का प्रश्न ही नहीं है, आप दिल खोलकर कहिये ।'

उन्होंने कहा : 'आप लोग आपस में झगड़ते रहते हैं, यह बात खटकती है.... । न्यूज़पेपर्स में पढ़ता हूँ कभी–कभी । आपके आचार्यों में, साधुओं में परमत–सहिष्णुता नहीं है ! यदि आप सब परमत–सहिष्णु बन, एक हो जाय तो जैन

धर्म से राष्ट्र को बड़ा लाभ हो सकता है, राष्ट्र का चारित्र ऊँचा उठ सकता है !'

## जाहिर में झगड़ना अयोग्यता का प्रदर्शन :

आपस के मतभेद जब अखबारों के पन्नों पर आते हैं तब वह अनिष्ट बन जाता है। उग्र शब्दों में दूसरों के धर्मविषयक मंतव्यों का खंडन करना और अपने मंतव्यों का मंडन करना, दूसरे पाठकों की धर्मभावना का मुंडन कर देता है। धर्मभावना को नष्ट कर देता है। शास्त्रों की, धर्मग्रंथों की बातों को लेकर जाहिर में, अखबारों के माध्यम से झगड़नेवाले, धर्म करने के लिए योग्य हैं क्या ? पात्र हैं क्या ? क्या आपस के मतभेदों का, गुप्त मंत्रणाओं के माध्यम से, परस्पर चर्चा–विचार–विनिमय कर, निराकरण नहीं किया जा सकता है ?

अखबार [Newspaper] लोकशाही का संवाहक है। धर्मक्षेत्र में लोकशाही का विरोध करनेवाले महापुरुष लोकशाही के संवाहक–साधन का उपयोग करते हैं ! जिस जिनशासन में लोकमत का कोई मूल्य नहीं है, जिनमत का ही मूल्य है, उस जिनशासन को, लोकमत प्राप्त करने, अखबारों में ले जाते हैं ! उसका वस्त्राहरण करते हैं। इस बात को गंभीरता से सोचना। धर्मक्षेत्र में अयोग्य व्यक्ति घुस आये हैं, वे लोग धर्मक्षेत्र की शान और आन को बट्टा लगा रहे हैं। अपना अहित तो करते ही हैं वे, साथ–साथ दूसरों का अहित भी करते हैं।

## शास्त्रसंमत धर्माधिकारी मनुष्य के २१ गुण :

परंतु बड़े दुःख की बात यह है कि आज हमारे शासन में अनुशासनहीनता है। न कोई किसी को कह सकता है, न कोई किसी की बात सुनता है। शास्त्रों की, आगमों की बातें बहुत होती हैं। अपने पक्ष की मान्यताओं को सिद्ध करने और दूसरे पक्ष की मान्यताओं का खंडन करने के लिए गुणहीन मनुष्यों ने बड़ा शोर मचा रखा है।

धर्मक्षेत्र में गुणवान लोगों का अवमूल्यन कर, क्रियाजड़ अज्ञानियों का मूल्य बढ़ा दिया गया है। ज्ञानहीन धर्मक्रिया करनेवालों को महत्त्व दिया जा रहा है। परिस्थिति की गंभीरता को समझते हुए, आप लोगों को जाग्रत बन, स्व–पर

के हित में प्रवृत्त बनना चाहिए । अपना गुणमय व्यक्तित्व बनाना चाहिए । २१ गुणों को आत्मसात् करने का प्रयत्न करना चाहिए । आज तो मैं २१ गुणों के सिर्फ नाम ही बताता हूँ ।

| | | |
|---|---|---|
| १. गंभीरता | २. रूप | ३. सौम्य प्रकृति |
| ४. लोकप्रियता | ५. अक्रूरता | ६. पापभीरुता |
| ७. अशठता | ८. सुदाक्षिण्य | ९. लज्जा |
| १०. दया | ११. मध्यस्थ सौम्यद्रष्टि | १२. गुणानुराग |
| १३. सत्यकथा | १४. सुपरिवार | १५. दीर्घद्रष्टि |
| १६. विशेषज्ञता | १७. वृद्धानुसारिता | १८. विनय |
| १९. कृतज्ञता | २०. परहितनिरता | २१. लब्धलक्ष्यता |

अलबत्त, एक मनुष्य में ये सारे २१ गुण नहीं भी हो सकते हैं, कम–ज्यादा हो सकते हैं । परंतु धर्मक्षेत्र में प्रवेश करना है तो कम से कम सात गुण भी होने चाहिए । कुछ गुण कर्मों के क्षयोपशम पर आधारित हैं, कुछ गुण पुण्यकर्म के उदय पर आधारित हैं । विशेषज्ञता, दीर्घद्रष्टि और लब्धलक्ष्यता, ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के साथ जुड़े हुए गुण हैं । जबकि रूप, सुपरिवार वगैरह पुण्यकर्म के उदय के साथ संबंधित गुण हैं । बहुत से पापकर्मों के क्षयोपशम के बिना, गुणवान होना असंभव है ।

## 'चैत्यवंदन' की धर्मक्रिया कौन कर सकता है ? :

'चैत्यवंदन' का धर्म करने के लिए भी आचार्यदेवश्री हरिभद्रसूरिजी ने तीन गुणों की योग्यता बतायी है । चैत्यवंदन की धर्मक्रिया के प्रति हृदय में बहुमान होना, पहला गुण है । चैत्यवंदन की धर्मक्रिया की विधि का ज्ञान होना और विधि का पालन होना, दूसरा गुण है । उचित गुणमय जीवनव्यवहार होना, तीसरा गुण है ।

धर्म के अनेक अनुष्ठान हैं । 'चैत्यवंदन' उनमें से एक अनुष्ठान है । वह अनुष्ठान हर कोई मनुष्य नहीं कर सकता है, यह बात समझे न ? गुणवान व्यक्ति ही कर सकता है । ये तीन गुण होने चाहिए मनुष्य में ! मनुष्य को स्वयं

आत्मनिरीक्षण कर निर्णय करना होगा कि 'मेरे में ये तीन गुण है या नहीं ?'

'बहुमान' आंतरिक गुण है। 'यह गुण अपने में है या नहीं'– उस बात का निर्णय करने के लिए पाँच लक्षण बताये गये हैं।

## बहुमान के पाँच लक्षण :

यदि आपके हृदय में 'चैत्यवंदन'–धर्म के प्रति बहुमान होगा तो 'चैत्यवंदन' की बातें आपको प्रिय लगेगी। वैसे, जिस–जिस धर्मक्रिया के प्रति आपके हृदय में बहुमान होगा, उस–उस धर्मक्रिया की बातें आपको प्रिय लगेगी। उस–उस धर्मक्रिया को करनेवालों के प्रति प्रीति बनी रहेगी। वे बातें विविध प्रकार की होती हैं। धर्मस्वरूप की बात हो, धर्मविधि की बात हो, धर्म के लाभों की बात हो, धर्म के दृष्टांत कहे जाते हो, धर्म का रहस्य बताया जाता हो.... ये सारी बातें सुनने में प्रेम दिखायी देता हो, आदर दिखायी देता हो, हर्ष प्रगट होता हो.... दूसरे काम छोड़कर वही सुनने में दिल लगता हो, तो मानना चाहिए कि उस धर्म के प्रति हृदय में बहुमान का भाव है।

**सभा में से :** धर्म के प्रति प्रेम हो, परंतु धर्म की बातें सुनने में रस नहीं हो, ऐसा हो सकता है क्या ?

**महाराजश्री :** कैसी बात करते हैं आप ! आपका प्रिय लड़का विदेश में है, उसका संदेश लेकर उसका मित्र आपके पास आता है। मित्र आपके पुत्र की बातें सुनाता है, क्या सुनने में आनंद नहीं आयेगा ? उसका पत्र पढ़ने में हर्ष का अनुभव नहीं होगा ? आपका मन प्रफुल्लित नहीं होगा क्या ? वैसे, धर्म के प्रति आपके हृदय में बहुमान होगा, तो धर्म की बातें सुनने में हर्ष और आनंद की अनुभूति होगी ही। '**धर्मकथा–प्रीति**' यह पहला लक्षण है !

धर्म–बहुमान का दूसरा लक्षण है **धर्मनिंदा का अश्रवण**। आपके हृदय में 'चैत्यवंदन' के धर्म के प्रति आंतरिक प्रेम है, तो आप चैत्यवंदन की निंदा नहीं सुन सकेंगे। आप सुनना पसंद नहीं करेंगे। निंदा सुनना ही पसंद नहीं होगा, तो फिर निंदा करने की तो बात ही कहाँ रहती है ? जिस बात पर मनुष्य को प्रेम होता है, बहुमान होता है, उस बात में दोष या न्यूनता वह देख ही नहीं

सकता है । दोष या न्यूनता देखे बिना निंदा हो ही नहीं सकती !

कोई आपके पास आकर कहता है : 'क्यों सुबह-सुबह चैत्यवंदन करता है? कोई लाभ नहीं है यह क्रिया करने से । यह मूर्ति, यह मंदिर.... सब फालतू है । पत्थर की पूजा करने से मोक्ष नहीं मिलता ।' आप सुनना पसंद नहीं करेंगे । दोनों कानों में अंगुलि डालकर आप कहेंगे : 'भैया, ऐसी कटु और अप्रिय बात मैं सुनना नहीं चाहता, या तो आप निंदा करना बंद करें अथवा यहाँ से चले जायँ । जो धर्म मुझे प्रिय है, मैं करता हूँ और करूँगा । मुझे चैत्यवंदन करने में कितना आनंद आता है और इससे पूरा दिन कितना शुभ व्यतीत होता है, यह बात आप सुनेंगे तो आप भी मेरी तरह चैत्यवंदन करना शुरू कर देंगे । निंदा करना भूल जायेंगे !'

आपके हृदय में धर्म के प्रति बहुमान होगा तो आप धर्मनिंदा करनेवालों को निंदा करने से रोकेंगे । उनको बुद्धिचातुर्य से धर्मप्रशंसक बना देंगे । यदि यह बात संभव नहीं होगी तो आप निंदा सुनने खड़े नहीं रहेंगे, वहाँ से हट जायेंगे।

किसी मनुष्य की भी निन्दा करना या सुनना पाप है, तो फिर धर्म की निन्दा करना या सुनना तो घोर पाप है । अधम कृत्य है । आपसे धर्म नहीं होता है, मत करें धर्म, परंतु धर्म की निन्दा तो कभी नहीं करें । धर्म की निन्दा कभी नहीं सुनें ।

सदैव याद रखें कि 'धर्म ही हमारा तारणहार है, धर्म ही हमारा भटकाव मिटानेवाला है, धर्म ही हमें सुख-शान्ति देनेवाला है । धर्म से ही पापों का नाश होता है और धर्म से ही पुण्यकर्म बँधता है । धर्म ही हमारे सभी सुखों का मूल है ।' इसलिए धर्म की निन्दा करना नहीं है और सुनना नहीं है । आपके हृदय में धर्म-बहुमान होगा तो निंदा करेंगे ही नहीं । सुनना पसंद नहीं करेंगे । परंतु कभी परवशता से सुनना पड़े तो निंदक के प्रति द्वेष नहीं करना, उसके प्रति भाव करुणा से सोचना ।

तीसरा लक्षण यही बताया है **धर्मनिन्दक के प्रति भाव करुणा, भाव दया!**

**सभा में से :** धर्म की निंदा करनेवालों के प्रति द्वेष करना पाप है क्या ? द्वेष नहीं करना चाहिए क्या ? द्वेष हो जाता है !

**महाराजश्री :** नहीं करना है द्वेष धर्मनिंदकों के प्रति । यदि आप धर्म का स्वरूप समझेंगे तो धर्मनिंदकों के प्रति द्वेष नहीं होगा । तीर्थंकर भगवंतों ने मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ भावनाओं से युक्त अनुष्ठान को धर्म कहा है । आपका अनुष्ठान जिनाज्ञानुसार हो, विधिपूर्वक हो, परंतु मैत्री वगैरह भावनाओं से युक्त नहीं होगा, तो वह अनुष्ठान 'धर्म' नहीं बनेगा, वह क्रिया धर्मक्रिया नहीं बनेगी । यानी, आपने धर्म पाया है तो आपके हृदय में ये चार भावनायें होनी चाहिए । किसी के भी प्रति द्वेष, तिरस्कार, घृणा.... वगैरह दुष्ट भाव नहीं होने चाहिए ।

धर्म की निंदा करनेवालों के प्रति 'भाव करुणा' रहनी चाहिए । 'धर्मनिंदा के पाप से उसको कैसे बचाऊँ ? बेचारा पापकर्म बाँधकर भवांतर में दुःखी-दुःखी हो जायेगा ।' ऐसा चिंतन करना चाहिए । आपके हृदय में धर्म के प्रति बहुमान है तो यह बात है ! आप अपने मन को दूसरी बातों में उलझायेंगे ही नहीं । आपका मन तो चैत्यवंदन वगैरह धर्मक्रिया में ही निरत रहेगा ।

धर्म के प्रति बहुमान का चौथा लक्षण, इसीलिए **'चित्तन्यास'** बताया है । आपके हृदय में धर्म के प्रति प्रेम है तो आपका मन बार-बार धर्म में ही जायेगा, धर्मनिंदकों के विचारों में नहीं जायेगा । मन का यह स्वभाव है, जो उसको प्रिय होता है, उसी में वह बार-बार जाता है । पिता को पुत्र प्यारा होता है, पुत्र परदेश होता है, पिता का मन बार-बार पुत्र के पास जाता है न ? पुत्र के विचारों में डूब जाता है न ? वैसे आपको आपका व्यापार ज्यादा प्रिय होगा तो आप भले यहाँ बैठे हो, आपका मन व्यापार के विचारों में चला जाता होगा ! भोजन करते करते भी मन व्यापार में चला जाता होगा ! वैसे धर्म यदि प्यारा होगा तो व्यापार करते करते भी मन धर्म के विचारों में चला जायेगा । भोजन करते करते मन धर्म के चिंतन में डूब जायेगा । धर्मक्रिया करते समय तो मन उसी में लीन, तल्लीन हो जायेगा !

पाँचवा लक्षण बताया है **'परा जिज्ञासा'** । परा यानी श्रेष्ठ । परा यानी गहरी-गंभीर ! धर्म के विषय में श्रेष्ठ, गहरी और गंभीर जिज्ञासा पैदा होती है । जैसे कि :

– 'चैत्यवंदन–सूत्र' में चैत्य का अर्थ क्या ? वंदन की विधि क्या ? सूत्र कौन–कौन–से ?

– यह सूत्र किसने बनाया ?

– सूत्रोच्चार कैसे किया जाय ?

– दिन में कितने चैत्यवंदन करने चाहिए ?

– कब–कब करने चाहिए ?

– चैत्यवंदन–सूत्र का सामान्य अर्थ क्या ? विशेष अर्थ क्या ?

– तात्पर्यार्थ और रहस्यार्थ क्या ?

– चैत्यवंदन का मनुष्य के मन पर क्या असर होता है ?

– चैत्यवंदन का आध्यात्मिक प्रभाव क्या है ? वगैरह जिज्ञासाएँ पैदा होती हैं।

**सभा में से :** चैत्यवंदन की क्रिया के प्रति बहुमान हो, परंतु ऐसी जिज्ञासा पैदा नहीं होती हो, ऐसा नहीं हो सकता ?

**महाराजश्री :** नहीं हो सकता। जिसके प्रति प्रेम हो, बहुमान हो, उसके विषय में जिज्ञासा न हो – यह बात संभवित नहीं है। प्रेम का भाव और जिज्ञासा का भाव, परस्पर अपेक्षित होते हैं। दोनों प्रकार के भावों में संबंध है। जिस वस्तु का, जिस विषय का प्रेम होगा, उस वस्तु के विषय में जिज्ञासा पैदा होगी ही। जैसे एक विद्यार्थी को इतिहास के विषय में गहरी रुचि है, उसको उस विषय में जिज्ञासा बढ़ती जाती है और वह गहरी खोज करने लगता है। गंभीर अनुसंधान करता रहता है। वैसे चैत्यवंदन की क्रिया में आपकी गहरी रुचि होगी तो 'चैत्यवंदन' के विषय में आपकी जिज्ञासा बढ़ती ही जायेगी। आप उस विषय में गहन और गंभीर चिंतन–मनन करेंगे! जैसे आचार्यदेव हरिभद्रसूरिजी ने 'चैत्यवंदन' के विषय में पूरी एक 'थिसीस' ही लिख डाली है! "**ललितविस्तरा**" महानिबंध ही है 'चैत्यवंदन' सूत्र के विषय में!

यदि 'नवकार मंत्र' के प्रति आपके हृदय में श्रद्धा है, प्रेम है, तो नवकार मंत्र के विषय में भी आपके मन में विशिष्ट जिज्ञासाएँ पैदा होनी चाहिए। गहरा और व्यापक ज्ञान हो जाय, यदि जिज्ञासा पैदा हो जाय तो! ज्ञान के खजाने

की चाबी है जिज्ञासा । तत्त्वज्ञान का प्रारंभ जिज्ञासा से होता है । प्रश्न उठने चाहिए। चित्त में 'ऐसा क्यों ? ऐसा कैसे ? ऐसा कब से ? ऐसा कब तक ? परिणाम क्या ?' हर विषय में इस प्रकार के प्रश्न उठेंगे तो समाधान पाने के लिए उस-उस विषय के ज्ञानी पुरुषों के पास जायेंगे और समाधान पाने का प्रयत्न करेंगे।

## विधि-तत्परता के पाँच लक्षण :

तात्त्विक जिज्ञासाओं का समाधान पाने के लिए मनुष्य को सद्गुरु की शरण में जाना ही पड़ता है और वहाँ विनय से व्यवहार करने का होता है । इस द्रष्टि से, विधि-तत्परता का **पहला लक्षण 'गुरु-विनय'** बताया गया है ।

'श्री उत्तराध्ययन-सूत्र' में पहले ही अध्ययन में विनय के प्रकार और विनय का स्वरूप बताया गया है । जिज्ञासावाला मनुष्य ही वैसा विनय कर सकता है । गुरु के प्रति आंतरिक बहुमान के साथ, जीवन का प्रत्येक व्यवहार विनय से रंग देनेवाला मुमुक्षु अपने जीवन को धन्य बना देता है !

सभी गुणों की आधारशिला 'विनय' है । विनीत आत्मा सद्गुरु से परिणति-ज्ञान पाता है । यानी वह ज्ञान को मात्र दिमाग में ही नहीं भरता है, आत्मसात् करता है । उसका ज्ञान उसको मुक्ति दिलाता है । परम श्रेय की ओर ले जाता है ।

विनीत आत्मा में विधि-तत्परता सहज भाव से प्रगट होती है । उसका हर अनुष्ठान विधियुक्त होगा । वह विधिपालन का आग्रही होगा ।

जैसे वह विधि का आदर करनेवाला होता है, वैसे वह हर धर्मानुष्ठान, उसके निश्चित समय में करने का भी आग्रही होता है । **दूसरा लक्षण "सत्कालापेक्षा"** का जो बताया है, वह यथार्थ है । जिस समय चैत्यवंदन करना होगा, उसी समय वह चैत्यवंदन करेगा । जिस समय परमात्म-पूजा करना विहित होगा, उसी समय में वह पूजा करेगा । प्रतिक्रमण करने का जो समय ज्ञानी पुरुषों ने बताया होगा, उसी समय में वह प्रतिक्रमण करेगा । समय की पाबंदी, विधि-तत्परता का दूसरा लक्षण है । समय की लापरवाही वह नहीं बर्तेगा ।

यदि परिस्थितिवश, संयोगवश कभी धर्मक्रिया करने में समय का पालन नहीं कर पायेगा तो उसके मन में संताप होगा। 'मैं कैसा प्रमादी हूँ ? मैंने आज प्रातः समय पर चैत्यवंदन नहीं किया। बड़ी गलती की।'

काल का, समय का बड़ा महत्त्व है कार्यसिद्धि में। आप दुनिया में देखते हैं। निश्चित काल में की हुई मंत्रसाधना सफल होती है। योग्य काल में किया हुआ व्यापार, बोया हुआ बीज और बोले हुए वचन सफलता प्राप्त करते हैं। वैसे योग्य काल में किया हुआ धर्मानुष्ठान विशिष्ट फल प्रदान करता है। इसलिए 'काल' का महत्त्व समझना चाहिए। आप लोग 'काल' की कितनी उपेक्षा करते हो, मैं जानता हूँ। आपको जब समय मिलता है तब कर लेते हो धर्मक्रिया ! सुबह पाँच बजे जिनपूजा और रात को १०/१२ बजे प्रतिक्रमण ? विधि–तत्परता नहीं रही। न गुरु–विनय रहा है, न काल की अपेक्षा रही है।

**तीसरा लक्षण बताया है उचित आसन और मुद्राओं का।** किस धर्मक्रिया में कौन–से आसन से बैठना चाहिए और कौन–सा सूत्र बोलते समय दो हाथों से कैसी कैसी मुद्रायें करनी चाहिए, इस विषय का ज्ञान होना अति आवश्यक होता है। क्योंकि निश्चित आसन से बैठकर, निश्चित मुद्राओं के साथ धर्मक्रिया करने से तदनुरूप शुभ भाव हृदय में जागृत होते हैं !

– चैत्यवंदन में योगमुद्रा, मुक्तासुक्ति मुद्रा और जिनमुद्रा के साथ सूत्र बोलने के होते हैं ! दोनों आँखें परमात्मा की प्रतिमा पर स्थिर करने की होती है ! जिनमुद्रा में कार्योत्सर्ग–ध्यान किया जाता है। सभी कार्योत्सर्ग जिनमुद्रा में किये जाते हैं।

– प्रतिक्रमण में 'वंदितासूत्र' आप लोगों को 'वीरासन' से बोलने का होता है!

आसन और मुद्राओं का उचित पालन, शुभ भावों की वृद्धि में निमित्त बनता है। धर्मक्रिया में आनंद का अनुभव करना हो तो विधि–तत्परता होना अनिवार्य है।

विधि–तत्परता का **चौथा लक्षण है युक्त स्वर।** चैत्यवंदन करते समय आपको सूत्रोच्चारयुक्त स्वर से करना चाहिए। यानी आपकी आवाज ऐसी होनी

चाहिए कि मंदिर में बैठे हुए दूसरे लोगों की धर्मक्रिया में विक्षेप न हो। कुछ लोगों को जोर–जोर से सूत्रोच्चार करने की आदत होती है। वे लोग दूसरे लोगों का खयाल ही नहीं करते हैं। मंदिर में प्रवेश करते ही उनकी आवाज कोलाहल पैदा कर देती है। दूसरों की धर्मक्रिया में विक्षेप कर देती है। यह बड़ा पाप है। दूसरों की धर्मक्रिया को नष्ट करने का पाप मामुली नहीं होता है।

**सभा में से :** इसलिए हम तो सुबह मंदिर जाते ही नहीं हैं। इतना शोर होता है सुबह में कि शान्ति से प्रभु के न तो दर्शन होते हैं, न स्तुति–प्रार्थना होती है।

**महाराजश्री :** जो लोग मंदिर में जोरों से चिल्लाते हैं, वे लोग प्रवचन सुनने प्रायः नहीं आते हैं! उनको कौन समझाये? अनिवार्य अनिष्ट हो गया है यह। इसलिए सुखी गृहस्थों को अपने घर में छोटा – सा सुंदर मंदिर बना लेना चाहिए। गृहमंदिर में आप शान्ति से, मधुर स्वर से परमात्मा की स्तवना कर सकते हो। मध्यम सूरों में चैत्यवंदन कर सकते हो।

**सभा में से :** जिनके पास अपना गृहमंदिर नहीं हो, वे लोग क्या करेंगे?

**महाराजश्री :** वे संघ–मंदिर में जायेंगे। शोर करनेवालों के प्रति भाव करुणा रखते हुए हो सके उतनी एकाग्रता से चैत्यवंदन करेंगे। प्रातःकाल अपने घर में जो चैत्यवंदन करना है, वह चैत्यवंदन शांति से, उल्लास से और एकाग्रता से करें। शोर मचानेवालों के प्रति रोष नहीं करना। रोष करने से आत्मा का अहित होगा। मंदिर में जाना बेकार हो जायेगा।

**पाँचवा लक्षण है 'पाठोपयोग' का।** धर्मक्रिया में जो सूत्रपाठ किया जाय, वह सूत्रपाठ करते समय मन को उसमें जोड़ना चाहिए। चित्त उसी सूत्रपाठ में लगा रहना चाहिए। साथ–साथ अर्थ का भी बोध होना चाहिए। मन को 'चैत्यवंदन' में तन्मय करना है!

## उचित वृत्ति के पाँच लक्षण :

चैत्यवंदन की उत्तम धर्मक्रिया करनेवालों के हृदय में जैसे बहुमान होना आवश्यक है – विधि–तत्परता आवश्यक है, वैसे उचित जीवन–पद्धति, उचित

जीवन–व्यवहार भी अति आवश्यक होता है। सभी लोगों के साथ उचित जीवन–व्यवहार होने से वह मनुष्य 'लोकप्रिय' बनता है। उचित वृत्ति का **प्रथम लक्षण लोकप्रियता है। यानी धर्म करनेवाला धार्मिक व्यक्ति लोकप्रिय होना चाहिए!**

बड़ी महत्त्व की बात कही है ज्ञानी महापुरुषों ने। मेरे खयाल से आप लोग अपने घर में भी प्रिय नहीं होंगे ? आप बहुत धर्मक्रियाएँ करते हैं, इसलिए आपको लोकप्रियता मिलनेवाली नहीं है। आपका जीवन–व्यवहार अच्छा होगा, उचित होगा, तो आपको लोकप्रियता मिलनेवाली है।

यदि आप प्रिय और हितकारी संभाषण करते हो, विवेकपूर्ण व्यवहार करते हो, पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों का समुचित पालन करते हो, दूसरों की समयोचित सहायता करते हो, दूसरों के अपराधों को माफ करते हो, तो आप लोकप्रिय बनोगे। लोकप्रिय धर्मात्मा दूसरों को भी धर्मसन्मुख बनाता है। इसलिए सौम्यता, सहृदयता, सहानुभूति, नम्रता, उदारता, निःस्पृहता वगैरह गुणों को आत्मसात् कर लो। गुणों से ही मनुष्य की पूजा होती है। गुणों से ही प्रशंसा होती है।

एक सावधानी रखना। जीवन में कोई गर्हित–निंदित क्रिया न हो जाय। गर्हित–निंदित कार्य नहीं करना है। निंदित कार्य आपकी लोकप्रियता को आग लगा देगा। उचित वृत्ति का **दूसरा लक्षण यही बताया है अ–गर्हित क्रिया।**

गर्हित और निंदित कार्यों का लिस्ट है न आपके पास ? होना ही चाहिए। वैसे दुष्ट कार्यों से बचकर जीना है। अप्रिय, कर्कश, औद्धत्यपूर्ण वाणी, अप्रिय, अहितकारी और क्रूरतापूर्ण व्यवहार, दूसरों की निंदा करना, झगड़ा करवाना.... वगैरह निंदित कार्य हैं।

वैसे शराब पीना, माँसाहार करना, चोरी करना, जुआ खेलना.... वगैरह भी निंदनीय प्रवृत्तियाँ हैं। ऐसी प्रवृत्तियाँ करनेवालों की चित्तवृत्तियाँ अशुद्ध होती हैं, मलिन होती हैं। अशुद्ध और मलिन चित्त में धर्म का जन्म होता नहीं है। धर्म का स्पर्श होता नहीं है। ऐसी निंदनीय प्रवृत्तियाँ करनेवाला मनुष्य जो धर्म करता है, उस धर्म की भी निंदा करवाता है; जिस गुरु के पास जाता है, उस

गुरु की भी निंदा करवाता है । स्वयं तो निंदापात्र बनता ही है ।

इसलिए धर्मक्षेत्र में प्रविष्ट व्यक्ति को अपने जीवनव्यवहार को विशुद्ध बनाना अनिवार्य है । घोर पापकार्यों का त्याग करना अनिवार्य है । परंतु यह तभी संभव होगा जब संकट में धैर्य रखने की आपकी क्षमता होगी । दुःख में धैर्य रखने की क्षमता होगी । 'उचित वृत्ति' का तीसरा लक्षण यही बताया है ।

दुःखों से, संकटों से जब घिर जाओ तब धैर्य रखना, सरल बात तो नहीं है, परंतु मुश्किल भी नहीं है । यदि सोचने की, विचार करने की सही दृष्टि आपके पास होगी तो आप दुःख में भी हँसते रहेंगे । संकट में भी निर्भय रहेंगे। संकट के समय आप अपनी सहनशीलता का परिचय दें । संकट से बचने के लिए पापों की ओर चले न जाएँ, पापों का सहारा न लें ।

**उचित वृत्ति का चौथा लक्षण है शक्ति-अनुसार त्याग करना यानी दान देना** । जीवनव्यवहार में जैसे न्याय-नीति के साथ अर्थोपार्जन करता है गृहस्थ, वैसे उसको नम्रता से और उदारता से दान भी देना है । दानधर्म की आराधना करना है । पूज्यों को सुपात्र दान देना है, दीन-अनाथ-निर्धनों को अनुकंपा - दान देना है । यह उचित जीवनव्यवहार का एक अंग है ।

**पाँचवा लक्षण है लब्धलक्ष्यता** । 'चैत्यवंदन' करने का आपका लक्ष्य क्या है ? आपका लक्ष्य निर्धारित होना चाहिए और, उस अंतिम लक्ष्य तक पहुँचने का आपका पुरुषार्थ चाहिए । जो भी धर्मक्रिया आप करें, आपको पहले से ही लक्ष्य को निर्धारित कर लेना चाहिए । आपकी शक्ति का भी खयाल कर लेना चाहिए । उचित जीवनव्यवहार में यह बात विशेष महत्त्व रखती है ।

मात्र धर्म के विषय में ही नहीं, संसार के कार्यों में भी आपको, परिणाम का विचार तो करना ही चाहिए । तो ही आपकी जीवनयात्रा सुचारु रूप से चल सकेगी ।

मान लो कि लक्ष्य का निर्धारण करने जितनी बुद्धि नहीं है एक व्यक्ति में, तो उसको सद्गुरु का सहारा लेकर, वे जैसे कहें, वैसे लक्ष्य निश्चित करना चाहिए; प्रवृत्ति का निर्णय करना चाहिए ।

## उपसंहार :

इस प्रकार 'चैत्यवंदन' करने के अधिकार के विषय में तीन विशिष्ट गुणों की चर्चा की। तात्पर्य यह है कि गुणवान व्यक्ति ही धर्मानुष्ठान करने के लिए अधिकारी है। प्रस्तुत में 'चैत्यवंदन' की बात होने से, उस धर्मक्रिया में आवश्यक और सहायक तीन गुण बताये गये। वैसे दूसरी धर्मक्रियाओं में भी गुणों की आवश्यकता समझना है।

सुबह में उठते ही, निद्रात्याग करते ही श्री नवकार मंत्र का स्मरण करना है, तत्पश्चात् देहशुद्धि और वस्त्रशुद्धि कर, श्री चैत्यवंदन करना है। चैत्यवंदन करने के बाद माता के, पिता के और दूसरे बुजुर्गों के चरणों में वंदन करना है ! इस विषय में आगे विवेचन करूँगा।

आज बस, इतना ही।

* * *

# प्रवचन : २९

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में गृहस्थ के विशेष धर्म का प्रतिपादन किया है। उसमें उन्होंने व्रतमय धर्म बताया है और दैनिक धर्मकार्य भी बताये हैं। सुबह से शाम तक श्रावक की दिनचर्या बतायी है।

सुबह जगते ही पंच परमेष्ठी नमस्कार करें, देहशुद्धि कर, शुद्ध वस्त्र धारण कर चैत्यवंदन करें और बाद में माता-पिता वगैरह गुरुजनों के चरणों में वंदना करें। माता-पिता गुरु हैं, माता-पिता के जो पूज्य हैं वे भी गुरु हैं; कलाचार्य, ज्ञानदाता, धर्मदाता वगैरह गुरु हैं। 'योगबिन्दु' ग्रंथ में इसी आचार्यदेव ने लिखा है :

> माता पिता कलाचार्य एतेषां ज्ञातयस्तथा ।
> वृद्धा धर्मोपदेष्टारो गुरुवर्गः सतां मतः ।।

जननी, जनक, उपाध्याय और जननी वगैरह के भाई-भगिनी वगैरह 'गुरु' माने गये हैं। ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्धों का समावेश भी गुरुवर्ग में किया गया है। धर्म का उपदेश देनेवाले मुनिजन तो गुरु हैं ही। इन सबमें से जितने घर में मौजूद हों, उनको सुबह में वंदन करना है।

माता-पिता वगैरह वंदनीय हैं, इसलिए उनको वंदना करनी चाहिए। परंतु प्रश्न यह है कि माता-पिता वंदनीय क्यों ? क्या आपने बच्चों को जन्म दिया इसलिए आप वंदनीय बन गये ? तब तो पशु भी वंदनीय बन जायेंगे, क्योंकि वे भी बच्चों को जन्म देते हैं ! और देवता वंदनीय नहीं बनेंगे, क्योंकि वे बच्चों को जन्म नहीं देते ! जन्म देना, यह वंदनीयता का कारण नहीं है, वंदनीयता का कारण है उपकारकता ! जो उपकार करते हैं, वे वंदनीय, अभिवंदनीय होते हैं। विश्व का श्रेष्ठ तत्त्व है उपकार। वह उपकार भौतिक हो या आध्यात्मिक, इहलौकिक हो या पारलौकिक, छोटा हो या बड़ा, उपकार उपकार होता है। विश्व का श्रेष्ठ तत्त्व है उपकार, भाव-विश्व का यह अनमोल तत्त्व है।

## जो उपकारक वह वंदनीय :–

जब से जीव माता के उदर में आता है तब से माता उस जीव पर उपकार करती रहती है । उसका गर्भस्थ शिशु के प्रति प्रेम होना, वात्सल्य होना भी उपकार है । कोई हमारे प्रति प्रेम–स्नेह–वात्सल्य अभिव्यक्त करता है, वह हमारे पर उपकार करता है । क्योंकि वह प्रेम बताकर हमें उल्लास से भर देता है। माता गर्भस्थ शिशु के शारीरिक और मानसिक हित के लिए अपने कई प्रकार के खाने–पीने के शौक छोड़ देती है – व्यसन छोड़ देती है, विषयभोग का त्याग करती है.... यह सब माता के उपकार नहीं हैं तो क्या है ?

जो महिलायें अपने मौज–शौक के लिए, विषयसुख भोगने के लिए अनेक व्यसनों का सेवन करने के लिए माता बनना नहीं चाहती हैं और भूल से गर्भवती बन जाती है, वे क्या करती हैं, जानते हो न ?

**सभा में से :** 'एबोर्शन' करवा देती है ।

**महाराजश्री :** गर्भपात करवा देती है, गर्भस्थ जीव की हत्या कर देती है। ऐसी क्रूर स्त्री वंदनीय नहीं होती है । पूजनीय नहीं होती है । कुछ किस्सों में ऐसा भी होता है कि माता गर्भपात कराना नहीं चाहती है, परंतु पिता, स्त्री का पति दबाव डालकर गर्भपात कराने के लिए मजबूर करता है । ऐसे लोग कैसे पापकर्म बाँधते हैं – यह बात आज मुझे नहीं करनी है । आज तो मुझे माता–पिताओं को, उनकी वंदनीयता समझाना है । उनको याद रहना चाहिए कि 'वे उनकी संतानों के वंदनीय हैं, पूजनीय हैं ।' और, जो वंदनीय–पूजनीय होते हैं उनका जीवन कैसा होना चाहिए । उनका जीवन–व्यवहार कैसा होना चाहिए । अपनी संतानों के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए । ये सारी बातें करना है ।

## संतानों की दृष्टि में गिर न जायँ :

माता–पिता को यदि अपनी संतानों से अच्छी अपेक्षायें हैं, वे संतानों को सुसंस्कारी और माता–पिता के पूजक बनाना चाहते हैं, तो उनको सर्वप्रथम अपना आत्मनिरीक्षण करना होगा । अपनी कुछ आदतों को सुधारना होगा । जो बुरी आदतें छोड़ना अति आवश्यक हैं, वे बताता हूँ ।

- पहली आदत है बात-बात में गुस्सा करना। गुस्सैल स्वभाव होना।
- छोटी-सी गलती होने पर, मामुली भूल-चूक होने पर मारना, पीटना।
- माता-पिता का आपस में झगड़ा होना।
- संतानों की बिमारी में उनकी उपेक्षा करना।
- घर पर आये हुए मित्रों के सामने, स्नेही-स्वजनों के सामने बच्चों की बुराई करना।
- बच्चों को प्यार नहीं देना, उनकी बातें नहीं सुनना।
- बच्चों की शिक्षा के प्रति उपेक्षा करना।
- एक बच्चे के सामने दूसरे बच्चे की प्रशंसा करना, उसकी निंदा करना।
- बच्चों की आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं करना।

इससे आप माता-पिता, संतानों की दृष्टि में गिर जाते हो। आपके प्रति बच्चों के मन में पूज्यभाव नहीं रहता है। आपको वंदन करने का भाव ही उनके मन में जगता नहीं है। यह बहुत बड़ा नुकसान है। सांस्कृतिक नुकसान है। 'उपकार' के श्रेष्ठ तत्त्व का अवमूल्यन होने से, जीवनव्यवहार में तनाव पैदा हो जाते हैं। माता-पिता से घृणा हो जाने पर संतान माता-पिता से दूर होते जाते हैं। और यदि किसी गलत अयोग्य व्यक्ति के संपर्क में आ जाते हैं, तो उनका जीवन ही नष्ट हो जाता है। दुर्व्यसनों में फँस जाते हैं और कई प्रकार के अपराध करने लगते हैं।

इस विषय में **न्यूयोर्क** की एक घटना सुनाता हूँ : जनवरी १९८७ की यह घटना है। १९ वर्षीय **'टायरोना विलबर्न'** नाम के लड़के ने १,६०० डालर के चेकों पर अपनी माँ के जाली हस्ताक्षर कर दिये और बैंक में डालर लेने गया। परंतु वह पकड़ा गया। पुलिस ने केस कर दिया। **न्यायाधीश केनेथ के. रौल** के सामने उसको पेश किया गया। इस आरोप के सही साबित होने पर अधिकतम दंड सात वर्ष की जेल का हो सकता था, पर जिले के सरकारी वकील के कार्यालय ने यह सिफारिश की कि 'अभियुक्त अपना अपराध कबूल करता है, तो उसे अच्छे आचरण के लिए निगरानी में रखने की व्यवस्था के साथ छोड़ दिया

जाय ।'

न्यायाधीश रौल ने यह सुझाव मान लिया, पर एक शर्त रखी कि विलबर्न को एक कविता याद कर, मौखिक रूप से सुनानी होगी ! वह कविता थी किपलिंग की 'ओ, मेरी माँ !'

खचाखच भरे उस शांत न्यायालय कक्ष में विलबर्न, अपनी सिसकती हुई माँ के आगे खड़ा था और सुनाने लगा :

यदि फाँसी पर लटका हूँगा मैं, पहाड़ की
सबसे ऊँची चोटी पर
तब याद आयेगी तूँ ! ओ माँ.... ओ माँ....
मरने के बाद भी किसकी आत्मा
भटकेगी, मेरे साथ साथ
माँ की, बस, मेरी माँ की
मेरी आत्मा और शरीर के कल्मश को
किसकी प्रार्थना धो डालेगी,
माँ की, बस, मेरी माँ की....

यह मामला सीधे–सादे सामान्य ढंग से भी निपटाया जा सकता था, परंतु न्यायाधीश रौल ने बाद में बताया कि 'मैंने सोचा कि लड़के को यह बोध करा दिया जाय कि उसने अपनी माँ को कितना आघात पहुँचाया है और उसकी माँ भी यह जान जाए कि लड़के को इसका अहसास हो गया है, तो कुछ और भी उपलब्धि हो सकती है ।'

वास्तव में उपलब्धि हो गई ! बात बन गई ! लड़का सुधर गया और माँ ने भी लड़के का प्रेम से खयाल करना शुरू कर दिया !

बच्चों को, यदि उन्होंने अपराध किये हों तो सजा–शिक्षा कर सकते हो, परंतु बहुत ही समझदारी के साथ सजा का उपयोग करना होगा । अन्यथा बच्चों के मानसिक विकास के लिए सजा घातक सिद्ध हो सकती है । बच्चा सुधरने की बजाय बिगड़ता जायेगा । बार–बार मारने–पीटने से बच्चे के मन में माता–पिता के प्रति रोष उत्पन्न होता है, वैर–भाव पैदा होता है । फिर आपको वंदन

करना तो दूर रहा, आपको परेशान कर डालेगा। बड़ा होने पर माता–पिता के साथ दुर्व्यवहार करेगा और बुढ़ापे में 'वृद्धाश्रम' में भेज देगा !

इसलिए कहता हूँ कि आप माता–पिताओं को अपनी वंदनीयता अखंड रखना है, तो संतानों के साथ उचित प्रेममय व्यवहार रखो। भविष्य में आपके लिए वह सुखदायी सिद्ध होगा।

इस विषय में कलकत्ता का एक प्रसंग याद आता है। कुछ समय पहले पढ़ा था मैंने।

**कलकत्ता हाईकोर्ट के न्यायाधीश सर गुरुदास वंद्योपाध्याय,** अदालत में कोई मुकद्दमा सुन रहे थे। सहसा उनकी दृष्टि अदालत के दरवाजे पर टिक गई। उस समय वहाँ एक बुढ़िया गंगास्नान कर, लौटती हुई अपने भीगे वस्त्रों में अदालत में घुसने का प्रयास कर रही थी और अदालत का चपरासी उसे रोक रहा था।

सहसा गुरुदास ने उस बुढ़िया को पहचान लिया। वह गुरुदास की धावमाँ रह चुकी थी और उसका दूध गुरुदास ने शिशुकाल में पीया था। उन्होंने फौरन मुकद्दमा रोक दिया और उठकर स्वयं दरवाजे पर पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने अपनी धावमाँ के पाँव छुए और फिर सबको बतलाया – 'ये मेरी माता है ! इन्होंने मुझे अपना दूध पिलाया है।'

धावमाँ ने गुरुदास को बचपन में दूध के साथ प्यार भी पिलाया होगा, अन्यथा गुरुदास इस प्रकार भरी अदालत में माँ के पाँव नहीं छूते ! दूध तो यहाँ बैठी हुई माताओं ने भी अपने बच्चों को पिलाया होगा, परंतु क्या वे बच्चे उनके पाँव छूते हैं सुबह में ? दूध के साथ प्यार पिलाया होगा तो छूते होंगे !

## वंदनीयता बनाये रखने के उपाय :

ग्रंथकार कहते हैं कि प्रतिदिन सुबह में माता–पिता को वंदना करनी चाहिए। परंतु वंदना भावपूर्वक होनी चाहिए ! माता–पिता के प्रति पूज्यभाव होना चाहिए। बहुमान का भाव होना चाहिए। यह सद्भाव तभी उत्पन्न होता है और टिकता है, जब माता–पिता संतानों के साथ समझदारी से व्यवहार करें। बच्चों की भूलें

तो होंगी, परंतु ज्यादातर भूलें अज्ञानता से होती हैं ! कभी दूसरों का अनुकरण करने से होती हैं । कभी किसी के बहकावे में आकर बच्चा भूल कर देता है । कभी जिज्ञासा से प्रेरित हो, गलती कर देता है ।

सजा करने से पूर्व, आक्रोश करने से पूर्व यह सोचना आवश्यक होता है कि 'इसमें बच्चे की वास्तव में कितनी गलती है ? इस परिस्थिति में गलती होना कितना संभव है ?' यदि आप सोचेंगे तो आपका गुस्सा कम हो जायेगा। शिक्षा–सजा करने से पूर्व, बच्चे को उसकी गलती की गंभीरता समझानी चाहिए। दो–चार बार उसको समझाते रहो । गलत कार्य करने से रोको, परंतु प्रेम बनाये रक्खो ।

आपने बच्चों पर कितने भी उपकार किये होंगे, परंतु साथ–साथ उनके साथ अभद्र व्यवहार किया होगा तो वे लोग आपके अयोग्य–अभद्र व्यवहार को याद रखेंगे, उपकारों को भूल जायेंगे । इसलिए आपको दो काम करने होंगे –

१. बच्चों से शुभ, भद्र व्यवहार करें ।

२. आप कभी भी, अपने किये हुए उपकारों की बातें उनको नहीं सुनायें ।

## बच्चों के साथ भद्र व्यवहार करें :

आप अपने बच्चों के साथ अच्छा व्यवहार करेंगे, तो बच्चे आपके उपकारों को कभी नहीं भूलेंगे । वे अपने मित्रों को कहेंगे : 'मेरी माँ अच्छी है, वो मुझे कभी मारती नहीं है, कभी झगड़ा करती नहीं है । वह पास बैठकर मुझे खिलाती है, पढ़ाती है, Homework करवाती है । बहुत अच्छी है मेरी माँ । मेरे पिता भी अच्छे हैं । वे मेरे साथ हँसते हैं, मुझसे अपनी स्कूल के विषय में, मित्रों के विषय में, मेरे अभ्यास के विषय में बात करते हैं । मेरे लिए अच्छे वस्त्र लाते हैं, बाजार से मेरी पसंदगी की कई वस्तुएँ लाते हैं ।'

दूसरों के सामने आपके बच्चे आपकी प्रशंसा करें, तो समझना कि वे आपके व्यवहार से संतुष्ट हैं । परंतु एक सावधानी रखना – बच्चों को ज्यादा प्यार–दुलार नहीं देना । उनके अयोग्य आग्रहों के वश नहीं होना । कभी बच्चा आपसे रूठ जाय तो रूठने देना, परंतु वह ज्यादा समय आपसे मौन नहीं रह पायेगा,

आपकी बात मानेगा । उसको प्रेम से और तर्क से समझाना होगा ।

आजकल बच्चे ज्यादा प्रश्न करते हैं न ?

– ऐसा क्यों नहीं खाना चाहिए ?
– ऐसा क्यों नहीं पीना चाहिए ?
– ऐसे कपड़े क्यो नहीं पहनने चाहिए ?
– ऐसे सिनेमा–नाटक क्यों नहीं देखने चाहिए ?
– ऐसे लड़के के साथ, ऐसी लड़की के साथ शादी क्यों नहीं करनी चाहिए ?
– रात्रि में क्यो नहीं खाना चाहिए ?
– मंदिर में क्यों जाना चाहिए ? धर्म का उपदेश क्यों सुनना चाहिए ?

ऐसे अनेक प्रश्न जब आपके बच्चे करते हैं, तब आप गुस्सा करते हो न ? उसको डाँटकर चुप करते हो न ? ऐसा नहीं करना ? शान्ति से प्रश्न सुनना। यदि प्रत्युत्तर दे सकते हो तो देना। नहीं दे सकते हैं प्रत्युत्तर, तो उसको कहना : 'बेटे, तेरे प्रश्न सही हैं, मैं तुझे उस ज्ञानी पुरुष के पास ले जाऊँगा, तेरे प्रश्नों के जवाब तुझे वहाँ मिल जायेंगे।' और, जब कभी आपके गाँव–नगर में कोई ज्ञानी साधुपुरुष आयें तब बच्चों को उनके पास ले जाना और समाधान करवाना।

**सभा में से :** कभी कभी साधुपुरुषों को प्रश्न पूछने पर, वे नाराज हो जाते हैं, गुस्सा भी कर देते हैं, तब मन ज्यादा विद्रोही बन जाता है ।

## प्रेम से दूसरों के प्रश्नों का समाधान करें :

**महाराजश्री :** इसलिए पहले आप स्वयं जानकारी प्राप्त करें कि साधुपुरुष कैसे हैं ! उनका ज्ञान कैसा है, स्वभाव कैसा है, प्रकृति और आकृति कैसी है ! हाँ, आकृति भी देखनी चाहिए ! सौम्य आकृति होगी साधुपुरुष की, तो ही बच्चे उनके पास जायेंगे, बैठेंगे और उनकी बातें सुनेंगे । पहला असर सौम्य आकृति का पड़ता है । दूसरा असर मधुर वाणी का होता है और तीसरा असर तर्कबद्ध शैली से समझाने का होता है । आप पहले ऐसे साधुपुरुष को खोजें, बाद में बच्चों को उनके पास ले जायँ ।

सभी साधुपुरुष समान आकृति–प्रकृति के नहीं होते हैं। सभी ज्ञानी भी नहीं हो सकते हैं। कोई सामान्य ज्ञानी होते हैं, वे अपने जीवन को सँवार लेते हैं, दूसरों को नहीं समझा सकते हैं। विशिष्ट ज्ञानी साधुपुरुष, सभी सौम्य आकृति–प्रकृति के नहीं होते हैं, कोई सौम्य होते हैं, कोई उग्र भी हो सकते हैं। आपको सौम्य आकृति–प्रकृतिवाले साधुपुरुष को खोज कर, उनके पास प्रश्न करने चाहिए। वे शान्ति से, समता से आपके प्रश्नों का समाधान करने का प्रयत्न करेंगे।

कई बार ऐसा भी होता है कि समझानेवाले तर्कबद्ध शैली से समझाते हैं, परंतु प्रश्न पूछनेवाले की बुद्धि स्थूल–जड़ होने से वह समझ ही नहीं पाता है! प्रश्न पूछने के लिए सूक्ष्म और तेज बुद्धि नहीं चाहिए, समाधान पाने के लिए बुद्धि सूक्ष्म और तेज चाहिए।

आपको चाहिए कि आप प्रश्न विनय से पूछें। उत्तर शान्ति से सुनें और समझने का प्रयत्न करें। कभी ऐसा भी हो सकता है कि कोई प्रश्न का उत्तर साधुपुरुष उसी समय नहीं दे सकें। क्योंकि वे सर्वज्ञ तो हैं नहीं। सोच–विचारकर बाद में उत्तर दे सकते हैं।

– बचपन से आप अपने बच्चों को, अपने घर में ही सुशिक्षित करने का कार्य करें। सुशिक्षित करने का काम दूसरों पर नहीं छोड़े। यदि आप अपने बच्चे की भलाई चाहते हैं, तो इसे कभी भी पूरी तरह बाहरी व्यक्तियों पर मत छोड़िए। आपसे ज्यादा आपके बच्चों पर किसका प्रभाव होगा? आपसे ज्यादा आपके बच्चों की चिंता और किसको होगी?

लेकिन अपने बच्चों को शिक्षित करने से पूर्व आप इस संबंध में अपनी जानकारी को आधुनिकतम सामग्री से पूर्ण रखिए। इसलिए आपको अध्ययन करना होगा। है न समय? आजकल ज्यादातर माता–पिताओं को अपने बच्चों के लिए समय नहीं होता है। समय होता है तो शिक्षित करने की कला उनके पास नहीं होती है, ज्ञान नहीं होता है। बच्चों के प्रश्नों का शान्ति से समाधान करने की क्षमता नहीं होती है। ऐसे माता–पिता ज्यादा समय तक वंदनीय और पूजनीय नहीं रह सकते हैं।

## कॉन्वेन्ट कल्चर :

और, यदि आप अपने बच्चों को कॉन्वेंट स्कूलों में पढ़ने के लिए भेजते हो, तो आप बच्चों के लिए वंदनीय नहीं बन पायेंगे । वहाँ 'माता-पिता वंदनीय हैं,' ऐसा नहीं सिखाया जाता है । वहाँ तो 'माता-पिता तुम्हारे मित्र हैं,' ऐसा सिखाया जाता है । मित्र वंदनीय नहीं होता है, समकक्ष होता है । मूलभूत सांस्कृतिक मूल्यों में ही परिवर्तन आ रहा है । वहाँ की शिक्षापद्धति ही वैसी है । भारतीय सनातन मूल्यों का समूल उच्छेद करने का सुव्यवस्थित कार्यक्रम चल रहा है । परंतु उस शिक्षापद्धति का आकर्षण इतना प्रबल है कि माता-पिता उन्हीं स्कूलों में बच्चों को प्रवेश दिलवाते हैं ।

सुबह सात/आठ बजे बच्चे किताबों का बड़ा थेला और टिफीन बक्स उठाये स्कूल जाते हैं, शाम को चार या पाँच बजे वापस घर लौटते हैं, थोड़ा खेलते हैं कि ट्युशन का समय हो जाता है, शाम हो जाती है कि T.V. देखने बैठ जाते हैं, भोजन करते हैं और सो जाते हैं । न मंदिर जाते हैं, न आरती के समय मंदिर जाकर आरती करते हैं, न सुबह मंदिर में दर्शन-पूजन कर पाते हैं, न साधुपुरुषों के पास जाते हैं, न उनका उपदेश सुन पाते हैं । न पाठशाला जाते हैं । पाठशालाओं में बच्चों की संख्या घटती जा रही है । T.V. देखनेवालों की संख्या बढ़ती जा रही है । उपाश्रयों में प्रतिक्रमण करनेवाले पुरुषों की संख्या ० (शून्य) पर पहुँच गयी है ।

## मूलभूत धार्मिक सिद्धान्तों पर प्रहार :

भारत के सभी धर्मों के मूलभूत सिद्धान्त हैं : दान, शील और तप ! तीनों सिद्धान्तों को झुठलाने के प्रयास हो रहे हैं ।

– हम कहते हैं गरीबों को, भिक्षुकों को, अतिथि को दान देना चाहिए ।

– वे कहते हैं : दान नहीं देना चाहिए । दान देने से लोग आलसी बन जाते हैं ।

– हम कहते हैं : शीलसदाचार और ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ।

– वे कहते हैं : 'सेक्स' मनुष्य की सहज वृत्ति है, उस वृत्ति को दबानी नहीं

चाहिए। शील–सदाचार और ब्रह्मचर्य के पुराने खयालों को छोड़ देने चाहिए। सजातीय और विजातीय शारीरिक संभोग करने चाहिए ।

– हम कहते हैं : तपश्चर्या करनी चाहिए। तपश्चर्या से आत्मा शुद्ध होती है, शरीर शुद्ध होता है, मन भी निर्मल बनता है ।

– वे कहते हैं : नहीं, शरीर का दमन नहीं करना चाहिए। खाने–पीने को मिला है तो भोगना चाहिए। तप नहीं करना चाहिए। तप करने से शारीरिक और मानसिक विकृतियाँ बढ़ती हैं ।

ऐसी विपरीत विचारधाराओं में हमारी तरुण प्रजा और युवाजगत बहता जा रहा है। कौन समजाये उनको ? ठीक है, जो तरुण और युवक प्रबुद्ध साधुपुरुषों के उपदेश सुनते हैं अथवा उनके परिचय में होते हैं, वे तो गलत विचारधारा से प्रभावित नहीं होते हैं, परंतु वे हैं कितने ? एक लाख में पचास–सौ !

लाखों नहीं, करोड़ों की तादाद में तरुण और युवक विभिन्न प्रकार के व्यसनों में और नशीले पदार्थों के सेवन में फँस गये हैं और फँसते जा रहे हैं ।

## बच्चों को नशीले पदार्थों के सेवन से बचाएँ :

नशे की लत किशोरावस्था में तो उस मक्कार जंगली जानवर समान है । माँ–बाप तो इस खतरनाक जानवर की उपस्थिति की उपेक्षा ही करते हैं, भले ही वो जानवर उनके दरवाजे पर ही खड़ा क्यों न गुर्रा रहा हो !

अधिकतर किशोरों में व युवकों में नशाखोरी की सबसे पहली लत तंबाकू से शुरू होती है। आगे बढ़ते हुए वे नशीली गोलियाँ, कोकीन और हेरोइन जैसे मादक पदार्थों का सेवन करने लगते हैं। धीरे धीरे वे नशे की आदत के शिकार बन जाते हैं। परिणाम जानते हो ? नुक्कड़ों और गलियों में वे भीख माँगते हुए, नदियों के पुल के नीचे सडांधभरी गंदगी में जिंदगी के दिन काटते रहते हैं ।

मेरे मन में इस विषय में घोर चिंता है। नशे के उस जंगली जानवर को कैसे मार भगाया जा सके ? सोचता हूँ, कोई मार्ग दिखता नहीं है, निराशा में डूब जाता हूँ। क्योंकि आपके बच्चों की चिंता आप माँ–बापों को नहीं। आपका

बच्चा नशीले पदार्थ का मजा लेता है या नहीं – क्या आप जानकारी रखते हैं ?

दूसरी बात, यदि आप स्वयं किसी नशे के आदी हैं और यह सोचें कि आपका बच्चा नशाखोरी से दूर रहे, तो आप अपने को ही धोखा दे रहे हो, दूसरे को नहीं ।

मद्यनिषेध के लिए अमरिकी राष्ट्रीय परिषद का कहना है कि "किशोरावस्था में शराब पीने की लत पड़ने का सबसे मुख्य कारण माँ–बाप का चाल–चलन और बच्चे के प्रति उनका बरताव होता है ।"

दिनभर कड़ी मेहनत कर, घर आकर, यदि आप कहते हैं : 'मुझे शराब चाहिए, मुझे सिगरेट चाहिए !' तो आपको देखकर आपका बच्चा भी बुरी आदतें सीखेगा ही ! एक भाई ने मुझे कहा : 'मैं वर्षों से सिगरेट पीने का शौकीन था, लेकिन जिस दिन मेरा बेटा, जो उस समय सिर्फ दो साल का था, मेरे पेकेट में से सिगरेट निकालकर कश लगा रहा था, उसी दिन से मैंने सिगरेट छोड़ दी । मेरे सामने धूम्रपान की आदत छोड़ने का इससे बेहतर निमित्त और कोई नहीं था ।'

जो लोग अपने मानसिक तनावों को दूर करना नहीं सीखते हैं, वे सिगरेट अथवा शराब वगैरह नशीले पदार्थों की लत के शिकार आसानी से हो जाते हैं । इसलिए नशीली दवाओं से पड़नेवाले बुरे प्रभावों के बारे में, बच्चों को चार–पाँच साल की उम्र से ही शिक्षित करना शुरू कर दें । आप बच्चे को नशीली दवाओं के बारे में बताने के लिए उसके किशोरावस्था में पहुँचने का इंतजार करेंगे तो बहुत देर हो चुकी होगी ।

सर्वप्रथम तो, आपकी मनःस्थिति बिलकुल स्पष्ट हो जानी चाहिए कि आपके बच्चे किसी भी नशीली वस्तु को, सिगरेट या शराब को हाथ न लगाए । मैंने सुना है कि कुछ आधुनिक माँ–बाप, बच्चों द्वारा नशीले पदार्थों का सेवन करने के प्रति लापरवाही का द्रष्टिकोण रखते हैं । कुछ माँ–बाप अवैध नशीले पदार्थ घर में इस्तेमाल करने की बच्चों को इजाजत देते हैं ! यह बिलकुल गलत है । जो माँ–बाप ऐसा करते हैं वे अपने बच्चों के दोष पर परदा डालते हैं, अनुशासन

के सारे आधारों को समाप्त कर रहे हैं और बच्चों को नियंत्रण से बाहर जाने के लिए उकसा रहे हैं ।

आपके मन में यदि आपके बच्चों के हित की भावना है तो जल्दी कीजिए, इससे पहले कि आपके बच्चे पर नशाखोरी की आदत डालनेवालों का प्रभाव छा जाए, आप उन्हें बचाइए । पहले ही सुरक्षा की तैयारी कर लें तो आप संकट से बच सकते हैं ।

## बच्चों को कैसे समझायेंगे ? :

क्योंकि आजकल पानवाले की दुकान से भी नशीली सिगरेट और नशीला पान मिल जाता है । एक–दो बार किसी दुष्ट ने मुफ्त में सिगरेट पिला दी, पान खिला दिया.... बस, फिर उसके बिना रहा नहीं जाता ! आदत पड़ जाती है ।

आप इस विषय की चर्चा बच्चों के साथ उस समय शुरू करें, जब वे 'मूड' में हों ! हाँ, आपको उपदेश झाड़ना नहीं है, सहज ढंग से बात करना है । इस प्रकार आप बात कर सकते हैं : 'कुछ लोग मानसिक तनाव से मुक्ति पाने के लिए नशा करते हैं । जब वे लोग अत्यंत दुःखी अथवा निराश होते हैं तब नशा करते हैं, नशीले पदार्थों का सेवन करते हैं, तो कुछ देर के लिए तो उस दुःख से या परेशानी से छुटकारा पा जाते हैं, लेकिन थोड़ी देर बाद ही वह फिर शुरू हो जाता है । ऐसे समय में यह और भी दुःखदायी होता है ! क्योंकि आपने अपनी समस्या तो हल नहीं की ! यदि वह कोकीन बराबर लेता रहता है तो यह दवा उसके शरीर को धीरे धीरे ठीक उसी तरह खा जाती है, जैसे चूहा पनीर खा जाता है । अब दवा अपना असर नहीं दिखाती है, उलटा वह उस दवा का आदी हो चुका होता है, उसके बिना रह नहीं सकता है । उसका जीवन त्रासपूर्ण हो जाता है ।'

आगे, उनके मन की स्थिति को देखते हुए कहें : "तुम जब नशीले पदार्थ का त्याग करोगे तब तुम्हारी मित्रमंडली से तुम बहिष्कृत किये जाओगे न ? कोई बात नहीं, मित्रों को समझाना आसान तो नहीं होगा, फिर भी उचित है, क्योंकि तुम्हें हमेशा उन बच्चों के साथ तो रहना नहीं है, तुम्हें अपनी जिंदगी

स्वयं जीनी है । इसलिए, जब तुम्हारे मित्र नहीं मानें तो उनको कह देना कि : 'यदि मैं नशा करूँगा तो मेरे माँ–बाप मुझे सजा देंगे और जिंदगीभर के लिए घर में नजरबंद कर देंगे !' वे मान जायेंगे ।"

आप बच्चों से इस प्रकार बात करें कि उनको अपना स्वमान भंग और गौरवभंग नहीं लगे । लघुताग्रंथि से बँध न जायँ । वैसी सजा भी नहीं करें कि जिससे माँ–बाप के प्रति वैरभाव उत्पन्न हो जाय । क्योंकि हमें तो बच्चों के मन में माँ–बाप के प्रति पूज्यभाव उत्पन्न करना है, पूज्यभाव को अखंड बनाये रखना है । तो ही वे माँ–बाप का विनय करेंगे, विवेकपूर्ण व्यवहार करेंगे ।

माता–पिता को बहुत ही गंभीरता से सोचना चाहिए । यदि उनको बच्चों का प्यार चाहिए, बच्चों से आदर और विनय चाहिए, तो सोच–समझकर उनके अपराधों की सजा करनी होगी । सावधानी से सुधारने का प्रयत्न करना होगा।

**सभा में से :** बच्चा जब बिगड़ जाता है तब हम लोग तो उसको बोर्डिंग में अथवा होस्टेल में भेज देते हैं

**महाराजश्री :** इससे माता–पिता के साथ उसका संबंध टूट जाता है । बोर्डिंग में जाकर लड़का सुधर जाता है क्या ? संभव है कि किसी व्यसनी लड़के की दोस्ती हो जाय और उसका जीवन ज्यादा बिगड़ जाय । धीरे धीरे वह लड़का 'स्वकेन्द्रित' बनता जायेगा । हर बात में, हर प्रसंग में वह स्वयं का विचार पहले करेगा । पारिवारिक प्रेम नहीं पनपेगा । बोर्डिंग में गृहपति एक होता है, लड़के सौ–दो सौ होते हैं । एक व्यक्ति इतने सारे लड़कों का जीवन–निर्माण कैसे कर सकता है ? वास्तव में माँ–बाप को चाहिए कि वे स्वयं अपने बच्चों को सुधारने का प्रयत्न करें । निराश नहीं होना चाहिए । बुद्धि से और ज्ञान से सुधारने का प्रयत्न करते रहना चाहिए ।

## उपसंहार :

अपने भारतीय धर्मों की यह संस्कृति है : 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव ।' धर्म वैदिक हो, बौद्ध हो या जैन हो । सांस्कृतिक धरातल एक है । सुबह में उठकर सर्व प्रथम परमात्म–स्मरण करना, इष्ट देवता की स्तुति करना और माता–पिता के चरणों में वंदना करना । ये बातें सर्व धर्ममान्य हैं । सभी धर्मगुरु इस

संस्कृति का उपदेश देते हैं। फिर भी परिस्थिति दिन–प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है। ऐसा क्यों हो रहा है – कारण बताये हैं। परिस्थिति सुधारना है, सार्वत्रिक परिस्थिति सुधरना मुश्किल है, असंभव जैसी बात है, परंतु अपने परिवार की परिस्थिति कुछ अंशो में सुधार सकते हो। आप माता–पिता अंतःकरण से चाहें तो सुधार हो सकता है।

बदलते हुए नैतिक मूल्यों का, धार्मिक मूल्यों का और सामाजिक मूल्यों का गंभीरता से अध्ययन करते हुए, अपने अपने परिवारों की सुरक्षा के उपाय किये जा सकते हैं। पारिवारिक समस्याओं का भी अंत नहीं है।

– लड़के परदेश रहते हैं, माता–पिता भारत में रहते हैं।

– लड़के भारत में रहते हैं, माता–पिता परदेश रहते हैं!

– कहीं माँ–बाप दुःखी हैं, कहीं लड़के–लड़कियाँ दुःखी हैं!

– स्वदेशी और परदेशी संस्कृति का संघर्ष चल रहा है!

– अर्थप्रधानता और भोगप्रधानता बढ़ती जा रही है!

– वृद्ध माता–पिताओं को घर में रहना आता नहीं है, वे अप्रिय बने हैं।

– संतानों के हृदय में माता–पिता के प्रति पूज्यभाव कितना रहा है, आप सब जानते हो; फिर भी मुझे तो मूलभूत संस्कृति का उपदेश देना ही है। सुबह में प्रतिदिन माता–पिता के चरणों में वंदन करें।

आज बस, इतना ही।

* * *

# प्रवचन : ३०

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में श्रावक की दिनचर्या–दैनिक कार्यक्रम बता रहे हैं। कितना पवित्र और मंगल कार्यक्रम है यह !

– सुबह उठते ही श्री नवकार मंत्र का स्मरण करें।

– शरीरशुद्धि कर, शुद्ध वस्त्र पहनकर चैत्यवंदन करें।

– भावपूर्वक उपकारी माता–पिता के चरणों में वंदन करें।

– शक्ति एवं भावनानुसार प्रत्याख्यान करें। ग्रंथकार ने लिखा है :

**'सम्यक् प्रत्याख्यानक्रिया ।'**

**'प्रत्याख्यान'** संस्कृत भाषा का शब्द है ! प्राकृत भाषा में **'पच्चक्खाण'** कहते हैं और लोकभाषा में **'पचखाण'** बोलते हैं। जैन संघ में, जैन समाज में यह पच्चक्खाण की क्रिया प्रचलित है। बच्चे, किशोर, युवक और वृद्ध–सभी जानते हैं। क्योंकि साधुपुरुषों के उपदेश में 'पच्चक्खाण' की महिमा विशेष रूप से बतायी जाती है। जैन कुलों के अनेक प्रगाढ़ संस्कारों में एक यह पच्चक्खाण का संस्कार है।

## पच्चक्खाण का अर्थ और प्रयोजन :

पच्चक्खाण का प्रचलित अर्थ होता है प्रतिज्ञा। प्रस्तुत में यह प्रतिज्ञा खाने–पीने के विषय में करने की होती है। काल की दृष्टि से, सूर्योदय होने के बाद कब खाना, क्या क्या नहीं खाना और कितना खाना – ये सारी बातें नियंत्रित की जाती है। प्रतिज्ञा से स्वैच्छिक नियंत्रण किया जाता है।

प्रतिज्ञा करने का प्रयोजन है मन की दृढ़ता। प्रतिज्ञा करने से मन दृढ़ रहता है। भय अथवा प्रलोभन के सामने ढीला नहीं बनता है। 'मेरी यह प्रतिज्ञा है,' सोचने से मनोबल बढ़ता है। प्रतिज्ञा करने का दूसरा प्रयोजन है 'विरति–धर्म' का पालन। अविरति पाप है, विरति धर्म है। 'अविरति' ऐसा बड़ा द्वार है कि

जिस द्वार से प्रति क्षण अनंत–अनंत कर्मों का प्रवाह आत्मा में प्रवेश करता रहता है। उस प्रवाह को रोकने के लिए अविरति का द्वार बंद करना ही पड़ेगा। द्वार बंद करने का अर्थ है प्रतिज्ञापूर्वक पापों का त्याग करना। अल्प अंश में पापों का त्याग किया जा सकता है, सर्वांश में भी त्याग किया जा सकता है। गृहस्थ जीवन में पापों का आंशिक त्याग किया जा सकता है। पापों का सर्वरूपेण त्याग यानी साधुजीवन।

प्रस्तुत में जो प्रत्याख्यान क्रिया सुबह में करने को कहा गया है, वह क्रिया काल प्रत्याख्यान की है। यह प्रत्याख्यान विरति–धर्म का ही एक प्रकार है। काल प्रत्याख्यान १० प्रकार के बताये गये हैं।

## काल पच्चक्खाण के १० प्रकार :

१. पहला प्रकार है 'नवकारशी' पच्चक्खाण का। सूर्योदय से ४८ मिनट तक आहार–पानी का त्याग किया जाता है। 'नवकार मंत्र' बोलकर यह पच्चक्खाण पूर्ण किया जाता है, इसलिए यह 'नवकारशी' पच्चक्खाण कहा गया है!

२. दूसरा प्रकार है 'पौरसी' पच्चक्खाण का। सूर्योदय से एक प्रहर (प्रहर=दिन का चौथा भाग) तक आहार–पानी का त्याग किया जाता है। 'साढपोरसी' के पच्चक्खाण में सूर्योदय से देढ़ प्रहर तक आहार–पानी का त्याग किया जाता है। जैसे कि पोरसी सुबह नौ बजे आती है तो साढपोरसी १०–३० बजे आयेगी।

३. तीसरा प्रकार है 'पुरिमड्ढ' पच्चक्खाण का। आधा दिन व्यतीत होने पर यह पच्चक्खाण आता है! तब तक आहार–पानी का त्याग करने का होता है। जैसे कि संपूर्ण दिन बारह घंटे का है, तो सूर्योदय के समय में ६ घंटे जोड़ने से जो समय आये, वह पुरिमड्ढ का समय समझना चाहिए।

४. चौथा प्रकार है 'एकासन' पच्चक्खाण का। दिन में एक बार और एक जगह बैठकर भोजन करना चाहिए। एकासन में सचित्त वस्तु का त्याग करना चाहिए। उस दिन गरम पानी ही पीना चाहिए।

५. पाँचवाँ प्रकार है 'एकलठान' पच्चक्खाण का। भोजन करते समय मात्र मुँह और दायाँ हाथ ही हिलना चाहिए, शेष सभी अंग–उपांग नहीं हिलने चाहिए।

शेष सभी नियम एकासन जैसे होते हैं ।

६. छट्ठा प्रकार है **'आयंबिल'** पच्चक्खाण का । दिन में एक बार और एक जगह बैठकर भोजन करने का होता है । भोजन में घी–दूध, दहीं–गुड़–शक्कर, तेल, मिष्टान्न, मेवा, फल, हरी सब्जी, फरसाण, आचार वगैरह का त्याग करना पड़ता है । पानी में उबाला हुआ भोजन ही काम आता है । चाय नहीं पी सकते, पान नहीं खा सकते, सुपारी वगैरह मुखवास नहीं खा सकते, सिगरेट–बीड़ी नहीं पी सकते । मसालों में मात्र नमक, काली मिर्च, सूँठ इत्यादि ले सकते हैं ।

७. सातवाँ प्रकार है **'उपवास'** पच्चक्खाण का । यह उपवास दो प्रकार से होता है – पानी के साथ और पानी के बिना । पानी उबाला हुआ ही काम आता है । किसी भी प्रकार का भोजन नहीं किया जाता है । भोजन का सर्वथा त्याग किया जाता है । एक साथ दो उपवास करते हैं तो **'छट्ठ'** कहा जाता है । एक साथ तीन उपवास करते हैं तो **'अट्ठम'** कहा जाता है । वैसे एक साथ ६ महिने के उपवास इस काल में किये जा सकते हैं । एक महिने के उपवास को **'मासखमण'** कहते हैं ।

इनमें से जो जो पच्चक्खाण करना हो, सुबह में कर लेना चाहिए । हाथ जोड़कर उस–उस पच्चक्खाण का सूत्र बोलना चाहिए । सूत्र नहीं आता हो तो 'आज मुझे यह (नवकारशी, पोरसी वगैरह) पच्चक्खाण है,' ऐसी धारणा कर लेनी चाहिए ।

८. आठवाँ प्रकार है **'अभिग्रह'** पच्चक्खाण का । 'अभिग्रह' का अर्थ है प्रतिज्ञा । यह प्रतिज्ञा द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से होती है । विशेष रूप से ये अभिग्रह साधु–साध्वी करते हैं । आप भी चाहें तो कर सकते हैं ।

**सभा में से :** हम लोग किस प्रकार कर सकते हैं ?

**महाराजश्री :** पहली बात तो यह है कि आपको अपना 'अभिग्रह' किसी को कहना नहीं चाहिए । परंतु मन डिग नहीं जाए इसलिए अभिग्रह लिखकर, कवर में बंद कर, घर में किसी को दे देना चाहिए ।

– 'आज मुझे बिना शक्कर का दूध, मेरा भाई ही देगा, तो मैं पीऊँगा।' दूध नहीं पीते हैं, चाय पीते हैं, तो चाय के विषय में अभिग्रह कर सकते हैं: 'आज मुझे मेरी बहन अपने हाथों से सर्वप्रथम चाय देगी, तो ही मैं सुबह नवकारशी करूँगा, अन्यथा पोरसी का पच्चक्खाण करूँगा।' यह 'द्रव्य' का अभिग्रह है।

– 'क्षेत्र' के अभिग्रह में 'आज मुझे रविवार पेठ में मेरे मित्र का भोजन के लिए निमंत्रण आयेगा, तो ही मैं भोजन करूँगा। यदि आमंत्रण नहीं आया तो उपवास करूँगा।' इस प्रकार प्रतिज्ञा की जा सकती है। एक समय का भोजन छोड़ने की भी प्रतिज्ञा कर सकते हैं।

– 'काल' से अभिग्रह करना है तो 'रोजाना मैं दोपहर बारह बजे भोजन करने घर आता हूँ, आज मैं एक बजे भोजन करने आऊँगा। उस समय भोजन मिलेगा तो करूँगा।' वैसे दो बजे का, तीन बजे का अभिग्रह कर सकते हैं। हालाँकि आपके लिए यह अभिग्रह सरल है, क्योंकि आपके घरवाले भोजन की थाली ढँककर रख देते हैं अथवा टिफीन दुकान पर भेज देते हैं! यह अभिग्रह हमारी कसौटी कर लेता है! हम साधु या साध्वी यह अभिग्रह करें कि 'आज भिक्षा का समय बीत जाने के बाद भिक्षा लेने जाऊँगा। यदि भिक्षा मिलेगी तो आहार करूँगा, अन्यथा उपवास!' भिक्षा का समय, आप लोगों के घरों में भोजन का समय बीत जाने के बाद, कभी हमें भिक्षा नहीं भी मिलती है! २५ वर्ष पूर्व हम लोग मारवाड़ गये थे, तब की बात है। एक गाँव में हम विहार कर देरी से पहुँचे थे। भोजन करने का समय बीत गया था। मैं गोचरी लेने गया था। पहले ही घर पर उत्तर मिला : 'बावसी, मैं जिम लियो है' मैंने कहा : 'थें जिम लियो, परंतु मैं कटे जिमिया?' मुझे याद है, उस दिन हमने शाम को पाँच बजे गोचरी की थी।

– 'भाव' से अभिग्रह आप इस प्रकार कर सकते हैं 'आज मेरी पत्नी हँसती हँसती भोजन परोसेगी, तो ही मै भोजन करूँगा!'

**सभा में से :** उस दिन उपवास करना हो तो ही ऐसा अभिग्रह करना चाहिए!

**महाराजश्री :** श्रीमतीजी कभी हँसते हँसते भोजन नहीं परोसती है क्या?

**सभा में से :** वैसा भाग्य नहीं होता हम लोगों का !

**महाराजश्री :** अभिग्रह करोगे तो संभवतः भाग्य के द्वार खुल जायेंगे । परंतु अभिग्रह करते समय 'मेरी कसौटी होनेवाली है,' ऐसा समझकर ही अभिग्रह करने का है । उपवास की तैयारी रखना ही ! अथवा एक समय का भोजन छोड़ने की तैयारी रखना ! काया को कष्ट देने के लिए, स्वेच्छा से कष्ट देने के लिए ही तपश्चर्या करने की है । स्वेच्छा से शरीर को कष्ट देने से बहुत कर्मनिर्जरा होती है । पापकर्मों का नाश होता है । पुण्यकर्म बँधता है ।

९. नौवाँ प्रकार है **'दिवस-चरिम'** पच्चक्खाण का । यह पच्चक्खाण सूर्यास्त के समय किया जाता है । रात्रिभोजन के त्याग का यह पच्चक्खाण है । 'चोविहार' का पच्चक्खाण करने पर, सूर्यास्त के बाद भोजन नहीं कर सकते, पानी भी नहीं पी सकते । 'तिविहार' का पच्चक्खाण करने पर सूर्यास्त के बाद पानी पी सकते हैं । सूर्यास्त के बाद दवाई लेनी हो तो 'दुविहार' का पच्चक्खाण कर सकते हो ।

१०. दसवाँ प्रकार है **'विगय-त्याग'** पच्चक्खाण का । 'विगय' प्राकृत शब्द है, संस्कृत में 'विकृति' कहते हैं । जो मन में विकार पैदा करें, उसको विकृति-विगय कहते हैं । वैसी ६ भक्ष्य विगइयाँ बतायी गई हैं : घी, दूध, दहीं, तेल, गुड़-शक्कर और तली हुई वस्तु । प्रतिदिन इन विगइयों में से एक-दो-तीन... विगई का त्याग करना चाहिए । जितना भी त्याग कर सको, करना चाहिए । सुबह-सुबह अभिग्रह कर लेना चाहिए 'आज मैं घी का और दहीं का त्याग करूँगा ।' कभी 'आज मैं सभी विगइयों का त्याग करूँगा !' ऐसे भी त्याग कर सकते हैं । यदि निर्विकार मनःस्थिति चाहते हो, तो विगय-त्याग करना ही चाहिए ।

## हर पच्चक्खाण सापवाद होता है :

बहुत अच्छे हैं ये सारे पच्चक्खाण । मनोनिग्रह और इन्द्रियसंयम करने की दृष्टि से ही तीर्थंकरों ने यह तपश्चर्या बतायी है । ये सारे पच्चक्खाण बताये हैं । यदि इस वर्तमान जीवन में भी शान्ति, समता और प्रसन्नता चाहते हैं तो मनोनिग्रह और इन्द्रियसंयम करना ही होगा । पच्चक्खाण-धर्म बहुत ही बढ़िया धर्म है । जिस प्रकार और जितना चाहो, उतना कर सकते हो !

**सभा में से :** 'अच्छा तो लगता है, परंतु 'शायद प्रतिज्ञा टूट गयी तो ?' ऐसा भय लगता है । 'एकासन करेंगे, परंतु भूल से मुँह में कुछ डाल दिया तो ? पच्चक्खाण का भंग हो जायेगा, पाप लगेगा । इसलिए पच्चक्खाण करना ही नहीं !'

**महाराजश्री :** ऐसा भय नहीं रखना चाहिए । भूल से यदि उपवास में भी मुँह में सुपारी या कुछ भी डाल दिया, तो पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है । मुँह में कुछ डालते ही आपको याद आ जाय कि "अरे ! आज तो मेरे उपवास है ।" आप तुर्त थूँक दें ! यदि पेट में पहुँच गया हो, तो भी कोई चिंता नहीं, वमन मत करना ! अपने जैन धर्म के सभी पच्चक्खाण सापवाद होते हैं । 'अपवाद' के लिए अपने यहाँ 'आगार' शब्द का प्रयोग होता है । हर पच्चक्खाण सागार– सापवाद होता है । उन आगारों को संक्षेप में समझाता हूँ । यह समझने से आपके मन में जो भय है, वह भय दूर हो जायेगा और आप मजे से पच्चक्खाण कर सकेंगे । हाँ, जानबूझकर यदि इन आगारों का, अपवादों का सेवन करोगे, तो पच्चक्खाण का भंग हो जायेगा ।

## पच्चक्खाणों के अपवाद :

– आपने सुबह में 'नवकारशी' का पच्चक्खाण धार लिया, बाद में भूल ही गये कि "मैंने 'नवकारशी' का पच्चक्खाण किया है और सूर्योदय होते ही नास्ता करने बैठ गये, मुँह में चाय का घूँट लिया और याद आया कि 'अरे, मैंने 'नवकारशी' की है', तो मुँह में से चाय का घूँट बाहर निकाल दें । यदि याद नहीं भी आया, चाय पेट में पहुँच जाय, तो भी आपका पच्चक्खाण टूटता नहीं है ।"

– अचानक या आदतवश पच्चक्खाण के समय में मुँह में पानी डाल दिया अथवा कोई खाद्य पदार्थ डाल दिया और याद आ जाय तो थूँक दें । आपके पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

– समय देखने के लिए मान लें कि आपके पास घड़ी नहीं है, वॉच भी नहीं है, क्लॉक भी नहीं है, आकाश में सूर्य बादलों में छिपा है और आप समय से पूर्व पच्चक्खाण पार लेते हैं, तो आपकी प्रतिज्ञा टूटती नहीं है, प्रतिज्ञा–भंग

नहीं होता है । हालाँकि आजकल तो जिसको घड़ी में समय देखना नहीं आता है, वे भी शोभा के लिए घड़ी हाथ पर बाँधते हैं ।

– कभी दिशा का भ्रम हो जाता है ! पूर्व दिशा को पश्चिम मानकर, समय से पूर्व पच्चक्खाण पार लेते हैं, तो पाप नहीं लगता है । परंतु आजकल सूर्य की गति के आधार पर नहीं चलते हम, घड़ी को देखकर चलते हैं, इसलिए भूल होना संभव नहीं है । हाँ, घड़ी बंद पड़ गई हो या आगे–पीछे चलती हो, तब आप धोखे में आ जाओ यह संभव है ! घड़ी में ९ बजे हैं, लेकिन उस समय वास्तव में ८–३० का समय है, आधा घँटा घड़ी आगे चल रही है । आपको मालूम नहीं है और 'नौ बजे पोरसी का पच्चक्खाण आता है, हो गया समय ।' आप पोरसी पार कर मुँह में पानी डालते हो, तो आपका पच्चक्खाण टूटता नहीं है ।

– किसी ने कह दिया 'नवकारशी का समय हो गया है, पोरसी का समय हो गया ।' सुनकर आपने नवकारशी का पच्चक्खाण पार लिया, पोरसी कर ली। हालाँकि समय नहीं हुआ था, कहनेवाले की भूल थी, समय होने के पूर्व आपने नवकारशी या पोरसी पार ली, फिर भी आपको पच्चक्खाण–भंग का पाप नहीं लगेगा ।

– मान लो कि आपने पोरसी का पच्चक्खाण किया है । आप सुबह ७ बजे गुरुदेव के पास गये । गुरुदेव ने कहा : 'आपको अभी, इसी समय मद्रास के लिए रवाना होना है ।' आपने कहा : 'गुरुदेव, मैंने पोरसी का पच्चक्खाण किया है, इसलिए मैं कुछ लिये बिना, खाये बिना जा नहीं सकता हूँ । मेरी शारीरिक स्थिति अनुकूल नहीं है ।' गुरुदेव ने कहा : 'कोई बात नहीं, अभी तुम कुछ ले लो, खा लो, शासनरक्षा का महत्त्वपूर्ण कार्य है, इसलिए तुम्हारा ही जाना अनिवार्य है ।' गुरुदेव की आज्ञा से आप पोरसी के समय होने से पहले कुछ खा लेते हैं, तो आपका पच्चक्खाण टूटता नहीं है । परंतु ध्यान रखना कि आज्ञा करनेवाले गुरुदेव ज्ञानी होने चाहिए और शासन की, संघ की जिम्मेदारी उनके सर पर होनी चाहिए ।

– एकासन, आयंबिल करने बैठे हैं, शरीर अस्वस्थ है, हाथ–पैर लंबे करने

पड़ते हैं, संकुचित करने पड़ते हैं, शरीर हिलता है, तो भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

– आप एकासन, आयंबिल करने बैठे हैं और आपके घर पर आचार्य–उपाध्यायादि आये, आप खड़े होकर उनको प्रणाम करें, तो आपका व्रत–भंग नहीं होता है । क्योंकि आपका भाव गुरु–विनय का है ।

अचानक पेट में तीव्र दर्द उठा हो, किसी साँप ने काट लिया हो, बहुत ही आर्तध्यान होता हो, समता रहती नहीं; उस समय कोई औषध, अनुपान, आहार या पानी लेना अनिवार्य हो; लेकिन उस समय पच्चक्खाण का समय हुआ न हो, तो भी आप औषध वगैरह ले सकते हैं । आपका पच्चक्खाण टूटेगा नहीं । यदि तीव्र वेदना में भी धर्मध्यान में रह सकते हो, समताभाव टिकता है, तो फिर पच्चक्खाण का समय होने पर ही औषधादि लेने चाहिए । मन की समाधि रहना, महत्त्वपूर्ण बात है ।

ये सारे अपवाद आपके लिए और हमारे साधु–साध्वी के लिए साधारण है । अब कुछ अपवाद सिर्फ साधु–साध्वी के लिए हैं, वे भी बता देता हूँ ।

– साधु–साध्वी को मान लो कि घी या तेल का त्याग है । आपके घर पर भिक्षा के लिए आये । चम्मच घी या तेल से लिप्त है, उसी चम्मच से आप चावल या दूसरी वस्तु साधु को देते हो, उस वस्तु को घी या तेल का स्पर्श होता है, साधु उनका उपयोग करता है, तो उसका विगय–त्याग का पच्चक्खाण टूटता नहीं है ।

– आपके घर में रोटी के उपर गुड़ या शक्कर पड़े हैं, साधु को वह रोटी देनी है, आप गुड़–शक्कर अलग रखकर, वह रोटी साधु को देते हो, उस रोटी पर गुड़–शक्कर के कुछ कण लगे हुए हैं, साधु को हालाँकि गुड़–शक्कर–विगई का त्याग हो, फिर भी वह रोटी साधु के काम आ सकती है, उसका पच्चक्खाण भंग नहीं होता है ।

– रोटी बनाते समय आटे में थोड़ा–सा घी या तेल डालते हो न ? वह रोटी साधु–साध्वी को नीवी या आयंबिल में काम आ सकती है । फिर भी

पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है। आपको नीवी या आयंबिल में वैसी रोटी काम नहीं आती है।

इतना जानने पर, अब तो आप पच्चक्खाण करने से घबराओगे नहीं न ? उल्लास से करोगे न पच्चक्खाण ?

– प्रतिदिन सुबह कम से कम 'नवकारशी' का और शाम को चोविहार अथवा तिविहार का पच्चक्खाण किया करें। शाम का पच्चक्खाण नहीं हो सके, तो भी सुबह 'नवकारशी' तो अवश्य करें।

– पँचमी, अष्टमी, चतुर्दशी जैसी पर्वतिथियों में उपवास, आयंबिल अथवा एकासन का पच्चक्खाण करना चाहिए। उपवास वगैरह नहीं कर सकते हो, तो पोरसी, साढ़ पोरसी भी करनी चाहिए।

– महिने में कम–से–कम एक उपवास तो करना ही चाहिए, यदि शक्ति हो तो। आत्मशुद्धि तो होगी ही, साथ में शरीरशुद्धि भी होगी !

– कभी कभी निवृत्ति के दिनों में 'अभिग्रह' पच्चक्खाण भी करना चाहिए।

'भूल होगी तो क्या होगा ? पाप लगेगा' यह भय मन में से निकाल दो। अनजानपन में जो भूल होती है, वह क्षम्य होती है। उससे पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है। जीव कर्मपरवश है, पापकर्म के उदय से कभी भूल हो सकती है। उस निमित्त से पच्चक्खाण–धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए। श्रद्धा से और ज्ञान से पच्चक्खाण करते रहो !

## छः प्रकार की शुद्धि :

– 'तीर्थंकर भगवतों ने पच्चक्खाण–धर्म जो बताया है वह यथार्थ है, सही है ! इस धर्म के पालन से जीव अनंत पापों से बच जाता है और 'मैंने पच्चक्खाण लिया, अच्छा किया !' ऐसा सोचना, ऐसा चिंतन करना, श्रद्धा को शुद्ध करता है।

– पच्चक्खाण के सूत्रों का अर्थ जानना, उसको ग्रहण करने की विधि जानना, उसके अपवादों को जानना, उसके प्रकारों को जानना, ज्ञानशुद्धि है।

– गुरुदेव को विधिपूर्वक वंदन कर उनसे पच्चक्खाण लिया जाता है।

वंदन करना विनय है। यदि गाँव में साधुपुरुष नहीं हो, अथवा बहुत दूर हो, तो जिनमंदिर में जाकर, परमात्मा को वंदन कर स्वयं पच्चक्खाण लेना चाहिए। वंदन कर पच्चक्खाण लेना, विनयशुद्धि है।

– गुरुदेव जब पच्चक्खाण–सूत्र बोलते हों, तब पच्चक्खाण लेनेवाले को भी मन में वह सूत्र बोलना चाहिए। मानसिक अनुभाषण करना चाहिए। इस प्रकार अनुभाषण करने से पच्चक्खाण लेनेवाले की स्मृति दृढ़ बनती है कि 'मैंने अमुक पच्चक्खाण लिया है!'

– जो पच्चक्खाण लिया हो, उसका दृढ़ता से अनुपालन करना चाहिए। सोचने का कि "मैं दृढ़ता से ग्रहण किये हुए पच्चक्खाण का पालन करूँगा। कैसे भी कष्ट आ जायँ, मैं पच्चक्खाण का भंग नहीं करूँगा। प्राण जाएँ तो जाएँ, मेरी प्रतिज्ञा अखंड रहेगी।" यह अनुपालन–शुद्धि कही जाती है।

सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है भावशुद्धि!

– 'इस तपश्चर्या से, इस पच्चक्खाण से मुझे लोगों के मान–सन्मान नहीं चाहिए।
– प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा नहीं चाहिए।
– प्रशंसा के पुष्प नहीं चाहिए।
– न ही मुझे नरेन्द्र बनना है, न ही मुझे देव–देवेन्द्र बनना है।
– मुझे मेरी आत्मा को विशुद्ध करना है।
– मुझे मेरी आत्मा पर लगे कर्मों का नाश करना है।
– मुझे मेरी वासनाओं को जला देनी है।
– मुझे शुभ भावनाओं में रमणता करना है।
– तपश्चर्या से मुझे आत्मा की पूर्णता पाना है
  और कुछ नहीं।'
  यह है भावशुद्धि।

पच्चक्खाण की पवित्र क्रिया के साथ यह छः प्रकार की शुद्धि होनी चाहिए। भावात्मक हैं ये शुद्धियाँ। इन शुद्धियों के साथ की हुई पच्चक्खाण की क्रिया

विशिष्ट फल देनेवाली बनती है। प्रभावोत्पादक बनती है।

## पच्चक्खाण के विविध फल :

पच्चक्खाण के दो प्रकार के फल तीर्थंकर भगवंतों ने बताये हैं। इहलौकिक फल और पारलौकिक फल। पारलौकिक फल दो प्रकार के बताये गये हैं : स्वर्ग का सुख और अपवर्ग का सुख ! इहलौकिक फल अनेक प्रकार के बताये गये हैं :

- रोगी निरोगी बनता है।
- निर्धन धनवान बनता है।
- अभागी सौभाग्यशाली बनता है।
- निःसंतान स्त्री माता बनती है।
- कलंकित मनुष्य निष्कलंक बनता है।
- अपमानित मनुष्य लोकप्रिय बनता है।
- निर्बुद्धि मनुष्य बुद्धिमान बनता है।
- अज्ञानी ज्ञानी बनता है !

जैसी तपश्चर्या, वैसा फल प्राप्त होता है। फल की इच्छा नहीं करें, तो भी फल मिलता ही है। तपश्चर्या से पापकर्मों का क्षयोपशम होता है और क्षयोपशम से ये सारे फल प्राप्त होते हैं। निराशंस भाव से किये हुए पच्चक्खाण से बुद्धि की निर्मलता प्राप्त होती है। जिसकी बुद्धि निर्मल होती है, वह सुख में हो या दुःख में, धर्म को नहीं भूलता है। वह उन्मार्गगामी नहीं बनता है।

## चार प्रकार का आहार :

जब पच्चक्खाण का ही विषय चल रहा है, तो उसके साथ संबंधित चार प्रकार का आहार भी समझा देता हूँ। चार प्रकार का आहार : **अशन, पान, खादिम** और **स्वादिम** नाम से शास्त्रों में बताया गया है।

सर्वप्रथम 'अशन' में किस किस वस्तु का समावेश होता है, वह बताता हूँ।

- सभी प्रकार के द्विदल, सभी प्रकार के धान्य, दूध और दूध की सभी

बनावटें, वैसे दहीं और दहीं की बनी हुई वस्तुएँ, घी और घी की बनी हुई वस्तुएँ, गुड़–शक्कर और उसकी बनी हुई वस्तुएँ, सभी प्रकार के मिष्टान्न । जिससे क्षुधा शान्त होती हो, वे सारी खाद्य–सामग्री 'अशन' कहलाती है ।

दूसरा आहार है **पान यानी पानी** ।

छाछ के उपर का पानी, जव का पानी, नारियल का पानी, फलों के अंदर का पानी और शुद्ध पानी । गेहूँ, चावल वगैरह जिस पानी से धोये जाते हैं, वह पानी भी 'पान' में आता है ।

तीसरा आहार है **खादिम** ।

खादिम में सभी प्रकार के फलों का समावेश होता है । खजूर और खारिक का समावेश होता है । बादाम, काजू वगैरह मेवा भी खादिम कहलाता है । नारियल और चना–मुरमुरा भी खादिम कहा गया है । जो खाने से पूर्णरूपेण क्षुधा शान्त न हो, वह खादिम कहा गया है ।

चौथा आहार है **स्वादिम** ।

इलायची, लौंग, केसर, सुपारी, सौंफ, सोंठ, दालचीनी (तज), काली मिर्च, जीरा वगैरह वस्तुएँ 'स्वादिम' कही गई हैं ।

– शाम को जब आप 'चोविहार' का पच्चक्खाण करते हैं, तो रात्रि में ये चारों प्रकार के आहार का त्याग करना होता है ।

– यदि आप तिविहार का पच्चक्खाण करते हैं, तब सिर्फ पानी (शुद्ध) का ही उपयोग कर सकते हैं । शेष तीनों प्रकार के आहार का त्याग किया जाता है ।

– पच्चक्खाण करनेवालों को और करानेवालों को यह जानकारी होना आवश्यक है । पच्चक्खाण लेनेवाले मनुष्य को पच्चक्खाण के विषय में विशद ज्ञान न हो, चल सकता है; परंतु पच्चक्खाण देनेवाले गुरु को तो विशद ज्ञान होना ही चाहिए । इस विषय में चतुर्भंगी होती है :

– पच्चक्खाण लेनेवाला ज्ञानी, देनेवाला ज्ञानी ।

– पच्चक्खाण लेनेवाला अज्ञानी, देनेवाला ज्ञानी ।

– पच्चक्खाण लेनेवाला ज्ञानी, देनेवाला अज्ञानी ।

– पच्चक्खाण लेनेवाला अज्ञानी, देनेवाला भी अज्ञानी !

प्रथम भंग श्रेष्ठ, दूसरा भंग मध्यम, तीसरा जघन्य, चौथा निरर्थक ।

अब पाँच प्रकार के 'संकेत' पच्चक्खाण समझाकर प्रवचन पूर्ण करूँगा ।

## संकेत पच्चक्खाण :

'संकेत' पच्चक्खाण को 'सांकेतिक' पच्चक्खाण भी कह सकते हैं । कुछ संकेत निश्चित कर पच्चक्खाण किया जाता है । 'पच्चक्खाण भाष्य' नाम के ग्रंथ में पाँच प्रकार के ये पच्चक्खाण बताये हैं :

१. पहला है **मुठसी पच्चक्खाण :** 'जब तक मैं मुट्ठी बाँधकर, नवकार मंत्र बोलकर, पच्चक्खाण पारूँ नहीं, तब तक चारों आहार का मुझे त्याग है ।' इस पच्चक्खाण में मुट्ठी बाँधने का संकेत निश्चित किया गया ।

२. दूसरा है **गंठसी पच्चक्खाण :** कपड़े को गाँठ लगाकर संकेत निश्चित किया जाता है कि 'जब तक इस गाँठ को खोलूँगा नहीं, तब तक मुझे चारों आहार का त्याग रहेगा ।'

३. तीसरा है **जलबिंदु पच्चक्खाण :** शरीर पर पानी का बिंदु गिरा हो अथवा किसी वस्तु पर पानी का बिंदु पड़ा हो, उस जलबिंदु का संकेत निश्चित कर पच्चक्खाण किया जाय कि 'जब तक यह जलबिंदु सूखेगा नहीं, तब तक मुझे चारों आहार का त्याग रहेगा अथवा तब तक मैं कार्योत्सर्ग–ध्यान में रहूँगा ।'

४. चौथा है **अंगूठी पच्चक्खाण :** आपकी अंगुली पर अँगूठी है, आप संकेत निश्चित करते हैं कि 'जब तक मैं अंगुली पर से अँगूठी उतारूँगा नहीं, तब तक मुझे चारों आहार का त्याग रहेगा ।'

५. पाँचवाँ है **दीपकज्योत पच्चक्खाण :** आपके पास घी का या तेल का दीया जल रहा है, आप संकेत निश्चित करते हैं कि 'जब तक यह दीपक जलता रहेगा, तब तक मुझे चारों आहार का त्याग रहेगा अथवा मैं ध्यान में रहूँगा !' यदि आप ध्यान में हैं और घर के किसी व्यक्ति ने दीपक में और घी भर दिया, तो दीपक रातभर जलता रहेगा या दिनभर जलता रहेगा ! तब तक आपका संकेत

कायम रहेगा। तब तक आपका चारों आहार का त्याग रहेगा अथवा ध्यान चालू रहेगा !

## उपसंहार :

इस प्रकार पच्चक्खाण के विषय में विवेचन किया। आपने शान्ति से सुना। समझे भी होंगे। अब आप प्रतिदिन पच्चक्खाण करते रहेंगे, तो मुझे आनन्द होगा। आपके परिवार के बच्चों को भी पच्चक्खाण की महिमा समझाना। ज्यादा आग्रह मत करना पच्चक्खाण करने का। उनको नवकारशी, पोरसी, साढ़ पोरसी, एकासन, उपवास वगैरह नाम याद रहेंगे, तो भी बहुत है। अन्यथा उनको ये नाम भी मालूम नहीं होंगे।

अनेक पापों से बचानेवाला यह पच्चक्खाण–धर्म है, इसकी आराधना कर आप सभी परम कल्याण की प्राप्ति करें, यहीं मंगल कामना !

आज बस, इतना ही।

* * *

# प्रवचन : ३१

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में श्रावक जीवन की विशिष्ट दिनचर्या बताते हैं। दिनचर्या बताते हुए उन्होंने प्रातःकाल में प्रत्याख्यान करने को कहा। अभिमान, क्रोध, विस्मृति वगैरह दोषों का त्याग करते हुए प्रत्याख्यान करने का विधान किया। प्रत्याख्यान से परिमित पापों का सेवन और अपरिमित पापों का त्याग होता है। जो मनुष्य प्रत्याख्यान के द्वारा पापों का अल्प सेवन करता है और अपरिमित पापों का त्याग करता है, वह परलोक में अपरिमित एवं अनंत सुख प्राप्त करता है।

घर में चैत्यवंदन और पच्चक्खाण कर, श्रावक अर्हत्प्रतिमा का दर्शन–वंदन करने जिनभवन में जाता है। यदि श्रावक वैभवशाली धनवान है, तो अपने स्नेही, मित्र, स्वजन वगैरह के साथ जिनभवन जायेगा। यदि श्रावक धनवान नहीं है, सामान्य स्थिति का है, तो वह अपने कुटुम्ब के साथ जिनभवन जायेगा! अकेला नहीं जायेगा।

## समुदाय में जिनभवन जाने का प्रयोजन :

शुद्ध और सुंदर वस्त्रों में सज्ज, श्रीमंत परिवार के लोग समूह में मिलकर जिनभवन जाते हैं, उनको देखकर बहुत लोग प्रभावित होते हैं। जो श्रीमंत नहीं होते हैं, वे विशेष रूप से प्रभावित होते हैं! जो श्रीमंत होते हैं, वे उनका अनुकरण करने में तत्पर होते हैं। सामान्य स्थिति के लोग सोचते हैं : 'ऐसे बड़े बड़े धनवान लोग भी अपने–अपने परिवारों के साथ, स्नेही और मित्रों के साथ परमात्मा जिनेश्वरदेव के मंदिर में जाते हैं, तो हमें भी जाना चाहिए। हमें तो अवश्य जाना चाहिए। इन महानुभावों की श्री–संपत्ति का मूल कारण यही 'जिनभक्ति' लगता है। धन्य है इन महानुभावों को, क्योंकि इनके पास अपार संपत्ति होने पर भी वे जिनेश्वर के दर्शन–वंदन में श्रद्धा रखते हैं! देखो, प्रभात में पहला काम ये लोग जिनभवन जाने का करते हैं! हम भी जायेंगे जिनभवन में!'

दूसरे श्रीमंत, जो कि जिनभवन नहीं जाते हैं परमात्मा के दर्शन–वंदन करने, वे जब देखते हैं उनकी तुलना के श्रीमंतों को जिनभवन जाते हुए, तब उनके मन में भी इच्छा पैदा होती है कि 'हम भी हमारे स्नेही–स्वजन–मित्रों के साथ इस प्रकार शुद्ध और सुंदर वस्त्रालंकार धारण कर, जिनभवन जायेंगे ।' समान व्यक्ति का अनुकरण करने की मनुष्य की मनोवृत्ति होती है । अपने से बड़ो का अनुसरण करने की मनुष्य की मनोवृत्ति होती है ।

बड़े नगरों में – बंबई, मद्रास, बेंगलोर जैसे शहरों में यह अनुकरण और अनुसरण विशेष रूप में देखने को मिलता है । कुछ उदाहरण बताता हूँ ।

## सामुदायिक आनन्द मनाने की प्रवृत्तियाँ :

– वैभवशाली फ्लेट में खड़ी महिला, अपने पति से कहती है : क्या आप हर रविवार शाम को, अपने पड़ौसी महेशभाई को परिवार सहित सिनेमा देखने जाते हुए देखते हो ? अपनी दोनों लड़कियों को जमाइयों के साथ बुला लेते हैं और सब साथ जाते हैं सिनेमा देखने । आपको इच्छा होती है कभी ? शादी के बाद हम लोग परिवार सहित कभी घर से बाहर ही नहीं निकले । मेरा मन होता है कि अपने भी हर रविवार शाम को सपरिवार चलेंगे सिनेमा देखने, 'पिकनिक भी हो जायेगी किसी गार्डन में ।'

यह हुई अनुकरण की बात । दोनों पड़ौसी धनवान हैं ! 'वे ऐसा आनंद–प्रमोद करते हैं, तो हम क्यों न करें ?' ऐसी इच्छा स्वाभाविक रूप से पैदा होती है ।

– दूसरी एक श्रीमंत घर की महिला अपने पति से कहती है : 'अपने सामनेवाले फ्लेट में जो रंजनाबहन रहती है, वह रविवार शाम को कभी घर में रसोई नहीं बनाती है । पति–पत्नी और तीन बच्चे, रविवार शाम का भोजन कोई अच्छी होटल में करते हैं । आप कभी हम लोगों को होटल में नहीं ले जाते । मुझे एक दिन भी आराम नहीं, मौज–शौक नहीं, रविवार को भी बाहर जाने का नहीं !'

यह किस्सा भी अनुकरण का है । कैसा अनुकरण चल पड़ा है यह, जानते

हो ? रविवार शाम को आप लोगों के घर में रसोई बनानी बंद हो गई ! हम लोगों को गोचरी मिलना मुश्किल हो गया !

श्रीमंतों का अनुसरण, मध्यम वर्ग के लोगों ने करना शुरू कर दिया। वे भी रविवार घर के बाहर बिताने लगे ! फालतू खर्च बढ़ गया।

– एक युवकमंडल की मीटिंग में चर्चा चल रही थी : 'अपने पासवाले बिल्डिंग के मंडल ने दिसम्बर में महाबलेश्वर की टूर निकाली थी। ५० युवक–युवतियाँ गई थी, बहुत मजा आया उन लोगों को, हम भी वैसी टूर निकालें ! अपने उटी जायेंगे ! अथवा माथेरान चलें !' मंडल यानी समूह। समूह में कोई अच्छी आकर्षक क्रिया होती है, तो दूसरों को अनुकरण या अनुसरण करने की इच्छा होती ही है।

– बंबई के एक मेरे परिचित भाई ने मुझे कहा : 'हमारे पास एक गुजराती परिवार रहता है, पाँच व्यक्ति हैं परिवार में। प्रतिदिन वे पूजा के सुंदर वस्त्र पहनकर, पूजन–सामग्री लेकर देरासर जाते हैं। मैं हमेशा उनको देखता था। देरासर में भी उनको साथ में चैत्यवंदन करते देखता था। मुझे भी वैसी इच्छा हुई। मैंने घर में मेरी पत्नी को, मेरी दोनों लड़कियों को और एक लड़के को मेरी इच्छा सुनायी। सब तैयार हो गये। दूसरे ही दिन हम भी सपरिवार देरासर गये। उस परिवार के साथ मिल गये। समूह में पूजा–भक्ति करने में बहुत मजा आया। आज भी हम सब साथ ही जाते हैं देरासर !'

अच्छे, बुरे अनुकरण के अनेक उदाहरण मिलेंगे इस संसार में। इस द्रष्टि से ग्रंथकार ने लिखा है : **'यथोचितं चैत्यगृहगमनम्।'**

'यथोचितम्' शब्द का टीकाकार आचार्यदेव ने यह तात्पर्यार्थ बताया है कि 'जिनभवन में समूह में जाया करें।' आप समूह में जायेंगे तो आपका अनुसरण दूसरे लोग भी करेंगे। इस अपेक्षा से उचित है समूहगमन।

समूह में, समुदाय में जिनभवन जाते समय एक सावधानी रखना। रास्ते में जोर–जोर से बातें नहीं करना है। आपस में लड़ना–झगड़ना नहीं है। हँसना नहीं है और दौड़ना नहीं है। नारे भी नहीं लगाने हैं। हाँ, अपने लोगों की आदत

है, पाँच/दस लोग इकट्ठे होते ही नारे लगाने शुरू कर देते हैं । अजैन प्रजा की दृष्टि में अच्छा नहीं लगता है । धर्म की प्रभावना नहीं होती है, धर्म का उपहास होता है ।

समुदाय में जाना है, शान्ति से जाना है, मौन से जाना है, विवेक से चलना है और मन में विचार परमात्मा के ही करना है । ऐसे विचार करने चाहिए कि जिनभवन के द्वार पर पहुँचते ही आपका हृदय भक्तिभाव से छलकने लग जाय । परमात्मा के दर्शन होते ही मनमयूर नाचने लग जाय !

जिनभवन में जाकर शोर-गुल नहीं करना चाहिए । विवेक से, मधुर स्वर में स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिए ।

## समुदाय में किये कर्म समुदाय में भोगे जाते हैं :

विशाल स्नेहीवर्ग के साथ अथवा अपने कुटुम्ब के साथ जिनभवन जाने के लिए ग्रंथकार क्यों फरमाते हैं ? इसका प्रमुख कारण यह है कि समुदाय में जो पुण्यकर्म बँधता है, वह कर्म समुदाय में भोगा जाता है ! वैसे समुदाय में जो पापकर्म बँधते हैं, उन पापकर्मों का फल उसी समुदाय में भोगा जाता है ! इसलिए ज्ञानी पुरुषों ने सामुदायिक पाप नहीं करने का उपदेश दिया और सामुदायिक रूप से धर्म करने का आदेश दिया ।

कुछ कार्य के कारण प्रत्यक्ष नहीं दिखते, सिद्धान्त के आधार पर कारण का अनुमान करना पड़ता है । अनुमान से यह सत्य प्रतीत होता है ।

– पुल पर से ट्रेन गुजर रही थी कि नदी में ट्रेन गिर पड़ी, एक साथ ४०० मुसाफिर नदी में डूब गये । एक साथ ४०० व्यक्ति मरे, समुदाय में मरे, क्यों ? क्योंकि उन ४०० व्यक्तियों ने गत जन्मों में सामुदायिक रूप से हिंसा की होगी ।

– आकाश में जम्बो जेट उड़ रहा था, प्लेन में बम-विस्फोट हुआ, प्लेन जलता हुआ जमीन पर गिर पड़ा, एक साथ ३०० यात्री मर गये । क्यों एक साथ मृत्यु का दुःख आया ? क्योंकि उन ३०० यात्रियों ने गत जन्म में सामुदायिक रूप से किसी जीव को मारा होगा, मरवाया होगा या हिंसा की अनुमोदना की होगी !

– गंगा के पानी पर नौका तैर रही थी कि अचानक डूब गई । १०० यात्री एक साथ डूब गये । क्यों ? क्योंकि पूर्वजन्म में उन १०० व्यक्तियों ने एकसाथ पाप किया था । उस पाप का फल भोगने वे सभी इस नौका में इकट्ठे हो गये और डूब मरे ।

– रात्रि का समय था, नगर शान्त सोया हुआ था कि अचानक भूकंप हुआ, घर गिर गये, धरती फटी और नगर के ५० हजार लोग मर गये । क्यों एक साथ मरे ? क्योंकि पूर्वजन्म में ५० हजार ने मिलकर कोई घोर पाप किया होगा ! उस पापक्रिया की यह प्रतिक्रिया आयी कि भूकंप से ५० हजार लोग मर गये।

– गाँव में डाकू आये और एक घर पर धावा बोल दिया । स्टेनगन से गोलियाँ बरसने लगी । एक साथ घर के १० व्यक्ति भून दिये गये । क्यों एक साथ १० की मौत हुई ? पूर्वजन्म में इन १० व्यक्तियों ने मिलकर किसी की हत्या की होगी । हर क्रिया की प्रतिक्रिया आती ही है । वर्तमान जन्म में नहीं तो दूसरे जन्म में !

– कोयले की खदान में मजदूर काम करते थे कि अचानक आग लगी और ५० मजदूर वहाँ ही जलकर मर गये । ऐसा क्यों हुआ ? क्योंकि पूर्वजन्म में इन्हीं ५० लोगों ने किसी जीव को जलाकर मार दिया होगा ।

इसलिए त्रिकाल ज्ञानी महापुरुषों ने कहा कि सामुदायिक पाप मत किया करें । सामुदायिक पाप की अनुमोदना भी मत किया करें । सामुदायिक पाप, आप लोग किस-किस प्रकार से बाँधते हो, ये प्रकार बताता हूँ :

## सामुदायिक पापकर्म बँधने के प्रसंग :

– दिल्ली की तिहार जेल में किसी अपराधी को फाँसी दी गई । न्यूज़पेपर में दूसरे दिन आपने पढ़ा अथवा T.V. के पर्दे पर वह दृश्य देखा । आपने खुशी व्यक्त की : 'अच्छा हुआ, फाँसी की सजा होनी ही थी उस दुष्ट को ।' एक साथ अखबार पढ़कर हिंसा की अनुमोदना करनेवाले सामुदायिक पापकर्म बाँध लेते हैं ।

– सिनेमा देखते हैं । एक साथ सिनेमागृह में ७००/८०० जितने लोग सिनेमा

देखते हैं। वे एक दृश्य देखते हैं पर्दे पर। एक सैनिक एक अपराधी को मारता है, देखनेवाले खुश होते हैं – 'अच्छा हुआ पकड़ा गया और मार दिया गया।' इस प्रकार सामुदायिक पापकर्म बँध जाता है।

– २०० डाकू मिलकर पूरे एक गाँव को जला देते हैं, हजारों लोगों की हत्या करते हैं, वे २०० डाकू सामुदायिक पापकर्म बाँधते हैं।

– १० मित्रों ने मिलकर किसी स्त्री पर बलात्कार किया और मार दिया। वे १० व्यक्ति सामुदायिक पाप बाँधते हैं।

– कोई मदारी साँप और नेवले को लड़ाता है, नेवला साँप को मार डालता है। देखनेवाले जितने भी १००–२०० लोग खुश होते हैं, वे सामुदायिक पापकर्म बाँधते हैं।

– पाँच–सात व्यक्ति मिलकर चोरी करते हैं, वे सामुदायिक पापकर्म बाँधते हैं।

– टी.वी. के पर्दे पर कई प्रकार के पापमय दृश्य आते हैं। एक साथ लाखों–करोड़ों मनुष्य उन दृश्यों को देखते हैं और सामुदायिक पापकर्म बाँधते हैं।

– टोलियाँ बनाकर जो लड़ते हैं, वे सामुदायिक पापकर्म बाँधते हैं।

वर्तमान काल में सामुदायिक पापकर्म बाँधने के अनेक निमित्त मिल जाते हैं।

टी.वी. – एक साथ लाखों लोग देखते हैं।
सिनेमा – एक साथ हजारों लोग देखते हैं।
नाटक – एक साथ सैंकड़ों लोग देखते हैं।
रेडियो – एक साथ करोड़ों लोग सुनते हैं।
अखबार – एक साथ लाखों लोग पढ़ते हैं।

यह सब देखते हुए, सुनते हुए और पढ़ते हुए सभी को एक साथ अच्छे या बुरे विचार आते हैं न ? अच्छे विचार आते हैं तो सामुदायिक पुण्यकर्म बँधते हैं। बुरे विचार आते हैं तो सामुदायिक पापकर्म बँधते हैं। परंतु ज्यादातर बुरे ही विचार आते होंगे ! क्योंकि सिनेमा ज्यादातर बन रहे हैं 'सेक्सी' और मारधाड़

के। नाटक भी वैसे ही ज्यादातर बन रहे हैं। अखबारों में हिंसा के, चोरी के, व्यभिचार के और राजनैतिक कपट जाल के ही समाचार मुख्य रूप से दिये जाते हैं। रेडियो पर कैसे गीत प्रसारित होते हैं ? कैसे समाचार प्रसारित होते हैं ? सुनते हुए आपके मन में कैसे विचार आते हैं ? विचारों पर कर्मबंध का आधार है।

हम लोग आपको टी.वी. देखने का, सिनेमा–नाटक देखने का निषेध क्यों करते हैं ? आप समझ गये न ? हमें टी.वी. से कोई द्वेष नहीं है, सिनेमा–नाटक से रोष नहीं है, परंतु आप लोगों की चिंता रहती है मन में। आप लोग सामुदायिक पाप नहीं बाँध लें – यही चिंता है।

**सभा में से :** T.V. पर देखने योग्य बहुत कम आता है, परंतु घर में टी.वी. होने से देखने की इच्छा हो जाती है।

**महाराजश्री :** आप लोगों ने ही घर में बसाया है न टी.वी. ? आपकी इच्छा नहीं होगी तो आपकी श्रीमतीजी की इच्छा होगी अथवा बच्चों की तीव्र इच्छा होगी ? इससे लाभ कितना होता है और नुकसान कितना होता है, आपने कभी सोचा है क्या ? अनुकरण चल पड़ा है। अँध अनुकरण चल पड़ा है। संस्कारों की द्रष्टि से, कर्मबंध की द्रष्टि से, मन की स्वस्थता की द्रष्टि से कभी सोचते हो क्या ?

आज तो मैं आपको सामुदायिक पापकर्म के बंधन के विषय में एवं सामुदायिक पुण्यकर्म के बंधन के विषय में सोचने के लिए कह रहा हूँ। समूह में जो क्रिया होती है, प्रायः तीव्र भाव से होती है। इसलिए कर्मबंधन भी तीव्र होता है।

## समूह में धर्म–आराधना करते रहो :

यदि आपको पुण्यकर्म, शुभ कर्म बाँधना है तीव्रता से, तो आप कुछ धर्म–क्रियाएँ समूह में किया करो। भावोल्लास बढ़ेगा और तीव्र कोटि का सामुदायिक शुभ कर्म बँधता जायेगा। इसी द्रष्टि से ज्ञानी पुरुषों ने कहा है कि समूह में जिनभवन जाया करो।

**सभा में से :** साथ में जिनमंदिर जाना समय की द्रष्टि से जमता ही नहीं

है । कोई सुबह पाँच बजे जगता है, कोई छः बजे, तो कोई सात–आठ बजे जगता है ! कोई मंदिर जाना पसंद करता है, तो कोई पसंद ही नहीं करता ! क्या करें ?

**महाराजश्री :** आपको अनुकूल परिवार क्यों नहीं मिला है, इस विषय में कभी सोचा है ? क्योंकि पूर्वजन्म में परिवार के साथ मिलकर धर्म नहीं किया है । मिलकर शुभ कार्य नहीं किये हैं । इसलिए यहाँ परिवार समान धार्मिक अभिरुचिवाला नहीं मिला है । पापकर्म का उदय है आपका ।

**सभा में से :** अब क्या करें ?

**महाराजश्री :** पापकर्मों का नाश करने का पुरुषार्थ करें । तप करें, जप करें, ध्यान करें । दान दें, शील का पालन करें । क्रोध वगैरह कषायों को कम करें । जब कभी सामुदायिक धर्म–आराधना होती हो, आप उसमें शामिल हो जायँ ।

– समूह में तीर्थयात्रा हो रही हो, आप उस संघ में सम्मिलित हो सकते हैं ।

– समूह में परमात्मभक्ति होती हो, पूजा–महापूजा होती हो, आप उसमें शामिल हो सकते हैं और परमात्मभक्ति कर सकते हैं ।

– समूह में कोई तप–जप का अनुष्ठान होता हो, आप भी सबके साथ उस अनुष्ठान की आराधना कर सकते हैं ।

– कुछ वर्षों से अपने जैन संघों में गाँव–गाँव सामुदायिक नवकार मंत्र के जाप की आराधनायें होती हैं; पार्श्वनाथ भगवान के, सिमंधर स्वामी भगवान के अट्ठम तप की सामुदायिक आराधना होती रहती है; सामुदायिक सिद्धितप, श्रेणितप, वरसीतप वगैरह तपश्चर्याएँ होती हैं; नवपदजी की ओली की आराधना समूह में होती है; आप जितनी संभव हो उतनी आराधना कर सकते हो ।

– परमात्मभक्ति के महोत्सव गाँव–गाँव होने लगे हैं । बड़े नगरों में किसी न किसी जगह महोत्सव चलते ही रहते हैं । पहुँच जाओ उधर और समूहभक्ति में शामिल हो जाओ । आप स्वयं इतने महोत्सव नहीं कर सकते हैं ! होते हैं सहज रूप से, तो लाभ उठा लेना चाहिए ।

– समुदाय के साथ बैठकर, सद्‌गुरु का धर्मोपदेश सुन सकते हो ।

– समुदाय में बैठकर 'स्वामिवात्सल्य' भोजन कर सकते हो ।

## सामुदायिक धर्मक्रियाओं का विरोध नहीं करें :

हाँ, एक सावधानी रखना है । कई वर्षों से कुछ लोग, जो 'सामुदायिक कर्मबंध' का सिद्धान्त नहीं समझते हैं, वे विरोध करते हैं ऐसी सामुदायिक धर्मक्रियाओं का । स्वयं तो करते नहीं, करवाते नहीं, दूसरे जो करते हैं, उसकी निन्दा करते हैं ।

"इतने सारे परमात्मभक्ति के महोत्सव नहीं करने चाहिए । यह पैसे का दुर्व्यय है । इतने सारे 'स्वामिवात्सल्य' नहीं करने चाहिए, यह पैसे का दुर्व्यय है । इतने सारे संघ नहीं निकालने चाहिए, यह पैसे का दुर्व्यय है ।" निन्दा करनेवाले नहीं समझते कि वे अपनी बुद्धि का दुर्व्यय कर रहे हैं । उनको पापक्रियाओं का विरोध करना सुझता नहीं है ! उनको धर्मक्रियाओं की समालोचना करना ही पसंद आता है ! वे ऐसे पापकर्म बाँधते हैं कि जब वे पापकर्म उदय में आयेंगे, तब

– उसको प्रतिकूल परिवार मिलेगा ।

– घर के ही लोग उसकी निन्दा करेंगे ।

– समाज में अप्रिय बनेगा ।

– धर्म के प्रति द्वेष हो जायेगा ।

– क्रोधादि कषाय तीव्र होंगे ।

– निर्धनता, दुर्बलता और दीनता का शिकार बनेगा ।

इसलिए कहता हूँ कि सामुदायिक धर्म–आराधना में आपको सम्मिलित नहीं होना हो तो मत होना, परंतु निन्दा कभी नहीं करना । बुद्धिमत्ता हो तो अनुमोदना करना । सामुदायिक धर्म–आराधना का महत्त्व गंभीरता से सोचना । गहराई में जाकर सोचना । करना–नहीं करना आपकी शक्ति और भावना पर निर्भर है, परंतु उस धर्मक्रिया की उपादेयता का स्वीकार तो करना ही होगा । मनोविज्ञान की द्रष्टि से 'समूहंक्रिया' का महत्त्व समझना । 'कर्मबंध' की द्रष्टि से सामुदायिक क्रिया का महत्त्व समझना । बिना सोचे–समझे विरोध का झंडा लेकर चिल्लाना पागलपन है ।

## सामुदायिक पापक्रियाओं का विरोध करें :

विरोध ही करना है, विरोध करने में ही आपको आनन्द मिलता हो, तो आप वैसी पापक्रियाओं का विरोध करें कि जो सामुदायिक रूप से होती हो ! परंतु वह विरोध नहीं करेंगे वे लोग, क्योंकि उसमें वे स्वयं सम्मिलित होते हैं !

– समूह में बैठकर सिनेमा देखेंगे ।

– समूह में बैठकर टी.वी. देखेंगे ।

– समूह में बैठकर हॉटल में पार्टी–भोजन करेंगे ।

– समूह में बैठकर जुआ खेलेंगे ।

– समूह में बैठकर शराब पियेंगे !

– विवाहोत्सवों में शामिल होंगे ।

– पिकनिक–पार्टियों में शामिल होंगे ।

– सामुदायिक दंगों में शामिल होंगे ?

**सभा में से :** नहीं जी, दंगे का नाम सुनते ही घर में घुस जाते हैं !

**महाराजश्री :** क्योंकि आप लोग बोलने में ही शूरवीर हो ! कष्ट सहने में कायर हो न ? मारामारी के दंगों में शामिल नहीं होंगे, परंतु शब्दों के दंगों में ? तकरार करने में ?

मेरा कहना यह है कि आप सामुदायिक धर्मक्रियाओं का विरोध नहीं करें। करना है विरोध, तो पापक्रियाओं का करें ।

**सभा में से :** मान लिया, सामुदायिक धर्मक्रिया की निन्दा नहीं करनी चाहिए; परंतु जब सामुदायिक धर्मक्रिया करनेवालों में विवेक, शिस्त, अनुशासन वगैरह का अभाव देखते हैं, तब वहाँ जाने की इच्छा नहीं होती है ।

**महाराजश्री :** यह बात मैं भी मानता हूँ । अपने यहाँ उत्सव–महोत्सवों में यह विकृति तो प्रविष्ट हो ही गई है । विवेकपूर्ण व्यवहार नहीं रहा है, अनुशासन नहीं रहा है । शान्ति के बोर्ड लगाते हैं । परंतु लोगों को शोर मचाने में ही मजा आता है । धक्का–मुक्की करने में शरम नहीं आती है । लड़ने–झगड़ने में लज्जित

नहीं होते हैं। यह सब करते समय उनको भान नहीं रहता है कि वे सामुदायिक धर्मक्रिया का अवमूल्यन कर रहे हैं।

## सामुदायिक धर्मक्रियाओं को शुद्ध करें :

– मंदिर में पूजा–महापूजा पढ़ाते समय, सभी स्त्री–पुरुषों के पास पूजा की किताब होनी चाहिए। सबको मध्यम सूर में गानी चाहिए पूजा। आपस में बातें नहीं करनी चाहिए। बहुत छोटे बच्चों को लाने नहीं चाहिए। मंदिर में पूजा के समय बच्चों को खेलने देने नहीं चाहिए।

– प्रभावना लेने के लिए लाइन से मंदिर के बाहर निकलना चाहिए। प्रभावना लेने–देनेवालों को आपस में विवेक रखना चाहिए। धक्का–मुक्की नहीं करनी चाहिए।

– स्वामिवात्सल्य भोजन में बहुत विवेक आवश्यक है।

- स्वामिवात्सल्य दोपहर में करना चाहिए, ताकि रात्रिभोजन का दोष न लगे।
- स्वामिवात्सल्य में मौन रहते हुए भोजन करना चाहिए।
- जूठा नहीं छोड़ना चाहिए।
- जगह छोटी हो, एक साथ सब बैठ नहीं सकते हो, तो क्रमशः पंगत में बैठना चाहिए। पहले बच्चों की और महिलाओं की पंक्ति भोजन कर लें, बाद में पुरुष बैठें।
- जिस दिन स्वामिवात्सल्य हो, उस दिन के लिए भी सच्चे जैन बनना चाहिए। यानी उस दिन जिनमंदिर में पूजा करें, उस दिन रात्रिभोजन नहीं करें, उस दिन जमीनकंद नहीं खायें, उस दिन ब्रह्मचर्य का पालन करें, उस दिन किसी भी साधर्मिक के साथ लड़ाई–झगड़ा नहीं करें।
- इस प्रकार स्वामिवात्सल्य कर के अनुभव करें, कितना आनन्द आता है और परस्पर साधर्मिक प्रेम कितना बढ़ता है!

– संघयात्रा में अनुशासन का, शिस्त का पालन होना अनिवार्य है।

- हो सके वहाँ तक पैदल संघयात्रा में शामिल हों।

● पैदल तीर्थयात्रा में साधु–साध्वीजी साथ होने से यात्रिकों की धर्म–आराधना अच्छी होती है और शिस्त का पालन होता है ।

● वाहनों में (बस में, ट्रेन में.... ) तीर्थयात्रा करने जो जाते हैं, उसमें धर्म–आराधना गौण हो जाती है, पिकनिक जैसा माहौल हो जाता है।

● तीर्थस्थानों में जाकर रात्रिभोजन, अभक्ष्य भोजन नहीं करना चाहिए।

● धर्मशाला में जुआ नहीं खेलना चाहिए ।

● धर्मशाला में झगड़े नहीं करने चाहिए ।

● खाने–पीने में और आराम में समय व्यतीत नहीं करना चाहिए ।

● परमात्मा के दर्शन–पूजन और भक्ति करनी चाहिए । साधुपुरुषों का प्रवचन सुनना चाहिए । सुबह–शाम प्रतिक्रमण करना चाहिए ।

● धर्मध्यान में मन को जोड़ना चाहिए ।

– पर्वों के दिनों में उपाश्रय में शिस्त और शान्ति बनाये रखना आवश्यक है ।

● खास कर पर्युषणा पर्व के दिनों में बहुत शान्ति से प्रवचन सुनें ।

● धर्मक्रियाएँ शान्ति से और समता से करें ।

● जिनको धर्मक्रिया नहीं आती हो, प्रेम से उनको सिखाएँ ।

● प्रवचन के समय, संघ में ऐसी बातें नहीं करें कि जिससे झगड़ा हो।

● प्रतिक्रमण के समय भी ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए कि जिससे परस्पर वैर–विरोध हो ।

– सामुदायिक धर्म–आराधनाएँ इस प्रकार होनी चाहिए कि सभी लोगों को उसमें सम्मिलित होने की प्रेरणा मिले । देखिये, यहाँ पूरा उपाश्रय भरा हुआ है, कितनी शान्ति है ? तो शान्ति से आप प्रवचन सुन सकते हो । शान्ति से प्रवचन सुनाई देता है, इसलिए ज्यादा लोग आते हैं सुनने के लिए ।

एक भाई को मैंने पर्युषणा पर्व के बाद पूछा : 'आपको मैंने पर्युषण के दिनों में व्याख्यान में नहीं देखा, क्या गाँव में नहीं थे ?'

उन्होंने कहा : 'मैं गाँव में ही था, परंतु पर्युषणा पर्व में मैं उपाश्रय में नहीं आता हूँ, क्योंकि बहुत भीड़ होती है, शोर होता है, प्रवचन सुनाई देता नहीं है।'

ऐसे अनेक लोग हैं जो पर्युषण में प्रवचन सुनने उपाश्रय में नहीं आते। जहाँ किसी विद्वान का कोई हॉल में भाषण होता है, वहाँ सुनने चले जाते हैं। वहाँ उनको 'कल्पसूत्र' जैसा पवित्र सूत्र सुनने को नहीं मिलता है। इसलिए धर्मस्थानों में शान्ति रखना बहुत आवश्यक है।

– एक महत्त्वपूर्ण सामुदायिक धर्मक्रिया की बात कर, प्रवचन पूर्ण करूँगा। अपने जैन संघों में "उपधान–तप" की सामुदायिक धर्म–आराधना होती है। अंतिम २०/२५ वर्षों में जगह–जगह, नगर–नगर में उपधान–तप की आराधना होती है। कहीं सौ, कहीं दो सौ, कहीं पाँच सौ व्यक्ति समूह में आराधना करते हैं। धीरे धीरे इस आराधना में अनेक विकृतियाँ प्रविष्ट हो गई है।

हालाँकि यह तप सरल नहीं है, कठिन है। ४७ दिन की तपश्चर्या में नहीं स्नान करना होता है, नहीं कपड़े धोने के होते हैं, परंतु ब्रह्मचर्य का पालन अवश्य करने का होता है। कोई बिजनेस करने का नहीं होता है। पौषध व्रत में रहने का होता है।

परंतु जिस–जिस दिन नीवी (एकासन) करने की होती है, उस दिन खाने–पीने के बातें ही प्रमुख रहती हैं। कितनी मिठाइयाँ बनी हैं और नमकीन में क्या–क्या बना है ! नीवी में २५/३० वस्तुएँ बनती हैं। स्वादवृत्ति प्रबल हो जाती है। इसलिए पहली बात तो नीवी में 'द्रव्य संक्षेप' करना आवश्यक है। यानी ज्यादा से ज्यादा १०/१५ वस्तुएँ ही बननी चाहिए।

दूसरी बात है भाषा समिति की। बोलने की, बातें करने की मर्यादा बाँधनी चाहिए। उपवास के दिन, स्नेही–स्वजन–मित्र मिलने आते हैं उपधान के तपस्वियों को। दो–तीन घंटे तक बातों का, सांसारिक बातों का सिलसिला चलता रहता है। क्या बोलना चाहिए, क्या नहीं बोलना चाहिए, यह विवेक प्रायः देखने में नहीं आता है। सावद्य–पापमय बातें भी कर लेते हैं। उपधान–तप करानेवाले साधुपुरुष मना करते हैं, फिर भी गुर्वाज्ञा की उपेक्षा कर बातें करते रहते हैं।

तीसरी बात है प्रलोभन की ।

लोग देखते हैं : 'उपधान कौन करा रहा है ? प्रभावना (भेंट) कहाँ ज्यादा मिल सकती है !' यानी प्रलोभन से उपधान करनेवालों की संख्या बढ़ती जा रही है और उपधान में प्रवेश देने में योग्यता देखी जाती नहीं है ।

चौथी बात है प्रमाद की ।

उपवास होता है, दोपहर में एक–दो घंटा सो जाते हैं ! नीवी करने के बाद भी एक–दो घंटा आराम कर लेते हैं । रात्रि में भी ७/८ घंटा नींद ले लेते हैं ।

ये चार मुख्य विकृतियाँ हैं । यदि दूर की जाय इन विकृतियों को, तो यह तपश्चर्या वास्तव में मनुष्य का ऊर्ध्वीकरण कर सकती है । तपश्चर्या का सही फल उसको मिल सकता है ।

## उपसंहार :

सामुदायिक धर्मक्रियाओं के प्रति आधुनिक शिक्षित स्त्री–पुरुषों का आकर्षण हो सकता है, यदि विकृतियों को दूर की जाए तो ।

समुदाय में जिनभवन जाने का जो विधान किया गया है, महत्त्वपूर्ण है । सिर्फ 'शो' नहीं करने का है । अपने भावोल्लास को बढ़ाने के लिए है यह विधान । अपने पुण्यकर्म को तीव्रता से बाँधने के लिए है यह विधान ।

अपने परिवार के लोगों को प्रेम से समझाएँ कि "प्रतिदिन अपने सभी, देहशुद्धि कर, स्वच्छ–शुद्ध वस्त्र पहनकर, जिनभवन जाया करें । बहुत आनन्द प्राप्त होगा । अपना भी परस्पर का स्नेह प्रगाढ़ होगा । आप लोग सुबह में यदि ५/६ बजे निद्रात्याग करें, तो अपने साथ में जिनमंदिर जा सकते हैं । साथ में दर्शन–पूजन कर सकते हैं ।"

आपके पुण्य का उदय होगा, तो आपकी बात घर के लोग मानेंगे । प्रयत्न करना समझाने का ।

आज बस, इतना ही ।

* * *

# प्रवचन : ३२

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में श्रावक जीवन की दिनचर्या बताई है। सुबह से शाम तक श्रावक-श्राविका को क्या क्या करना चाहिए - इस विषय में स्पष्ट मार्गदर्शन दिया है !

- जगते ही श्री नवकार मंत्र का स्मरण करना चाहिए।
- शारीरिक हाजतों से मुक्त होना चाहिए।
- स्नान से देहशुद्धि करना चाहिए।
- शुद्ध वस्त्र पहनकर, गृहचैत्य में जाकर,
- पुष्प, धूप, दीप, अक्षतादि से जिनप्रतिमा की पूजा कर
- चैत्यवंदन करना चाहिए।
- माता-पिता वगैरह गुरुजनों को वंदना करना चाहिए और पच्चक्खाण करना चाहिए।

अपनी-अपनी आर्थिक संपत्ति के अनुसार समुदाय के साथ जिनभवन जाना चाहिए। इतना कहने के बाद, जिनभवन में विधिपूर्वक प्रवेश करने का ग्रंथकार कहते हैं : **विधिनाऽनुप्रवेशः**। दो शब्दों में बहुत-सी बातें कह दी है ग्रंथकार ने ! उन बातों का विवेचन करने के पूर्व एक स्पष्टीकरण करना चाहता हूँ।

## सुबह में प्रतिक्रमण का विधान क्यों नहीं ? :

कल एक भाई ने दोपहर में मेरे पास आकर पूछा था कि 'सुबह में प्रतिक्रमण करने का विधान 'धर्मबिंदु' ग्रंथ में क्यों नहीं ?' मैंने कहा : 'धर्मबिंदु' में नहीं है वैसे इसी ग्रंथकार का दूसरा ग्रंथ 'पंचाशक' है, उसमें भी 'प्रतिक्रमण' का विधान नहीं है। वहाँ भी इसी प्रकार प्राभातिक कार्य बताये हैं। परंतु दूसरे ग्रंथों में सुबह में प्रतिक्रमण करने का विधान किया गया है। "**श्राद्धविधि**" नाम के ग्रंथ में आचार्यश्री रत्नशेखरसूरिजी ने लिखा है :

**नवकारेण विबुद्धो सरेइ सो सकुलधम्मनियमाई ।**
**पडिकमिअ सुई पूइअ गिहे जिणं कुणइ संवरणं ।।५।।**

इसका अर्थ होता है – 'नवकार मंत्र के स्मरण के साथ जागृत हुआ श्रावक अपने कुलधर्मों को, नियमादि को याद करता है, बाद में प्रतिक्रमण करता है। तत्पश्चात् पवित्र हो जिनमंदिर में (गृहमंदिर में) जिनपूजा कर, पच्चक्खाण करता है ।'

'धर्मबिंदु' एवं 'पंचाशक' में आचार्यदेव हरिभद्रसूरिजी ने सुबह में प्रतिक्रमण करने का विधान क्यों नहीं किया है, यह प्रश्न है । परंतु ग्रंथकार ने 'प्रयत्नकृतावश्यकस्य' जो लिखा है, उसमें जो 'आवश्यक' शब्द है, उस शब्द से 'षड्आवश्यक' रूप प्रतिक्रमण का अर्थ निकल सकता है। हालाँकि टीकाकार आचार्यदेव ने टीका में यह अर्थ नहीं निकाला है । ठीक है, प्रतिक्रमण करने का निषेध तो नहीं किया है । इसलिए करना चाहिए ।

## जिनभवन में प्रवेश करने की विधि :

आज मुझे आपको, जिनभवन में प्रवेश करने से लगाकर संपूर्ण पूजनविधि बतानी है । परमात्मपूजन करनेवाले आप लोग बहुधा, पूजनविधि जाने बिना ही, गतानुगतिक ढंग से पूजा करते हो। क्या आपने किसी ज्ञानी पुरुष के पास बैठकर पूजनविधि का ज्ञान पाकर पूजनक्रिया शुरू की थी ? नहीं न ? इसलिए कुछ अविधियों ने विधि का रूप ले लिया है । आज आप संपूर्ण पूजनविधि सुनेंगे, तब आपको विधि–अविधि का ज्ञान हो ही जायेगा ।

जिनमंदिर में प्रवेश करते समय पाँच प्रकार के विनय–विवेक का पालन करना चाहिए ।

– यदि आपके पास परमात्मा को समर्पण करने के लिए फल हैं, तो आप मंदिर में ले जा सकते हो; परंतु उस फल के अलावा दूसरे फल, तांबूल (मुखवास) वगैरह लेकर मंदिर में नहीं जाना चाहिए। जूते मंदिर के बाहर रखने चाहिए। कोई शस्त्र हो पास में, तो उसे भी बाहर छोड़ना चाहिए ।

– उचित अलंकार पहनकर मंदिर में जा सकते हो ।

– शरीर पर दो वस्त्र चाहिए, एक अधोवस्त्र और दूसरा दुपट्टा। परमात्मपूजन का यही युनिफार्म है – धोती और दुपट्टा । पाजामा–शर्ट पहनकर पूजा नहीं करनी चाहिए । यह नियम पुरुषों के लिए है । महिलाओं को अपने सभी शुद्ध वस्त्र पहनने चाहिए कि जिससे उनकी शरीरमर्यादा बनी रहे ।

– परमात्मा के दर्शन होते ही 'नमो जिणाणं' बोलकर, दो हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर वंदना करना ।

दूसरे विचारों को मन में से निकालकर, परमात्मा में मन को जोड़ना, एकाग्र करना । हालाँकि मन को परमात्मा के चिंतन में तभी से जोड़ना है, जब आप घर में से निकलो । दूसरे विचारों से मन को मुक्त रखने का है ! पाप–विचार तो करने ही नहीं हैं, शुभ विचार भी नहीं करने हैं, सिर्फ परमात्मा के ही विचार करने हैं । भक्तिपूर्ण हृदय से करने हैं । ऐसे विचार करते करते जिनभवन पहुँचेंगे, तो परमात्मा को देखते ही रोमांच होगा ! आँखों में हर्ष के आँसु भर आयेंगे, स्वर गद्गद् हो जायेगा !

## 'निसीहि' बोलकर प्रवेश करें :

मंदिर के प्रथम द्वार में प्रवेश करते समय 'निसीहि' बोलना चाहिए । यह बोलकर आप स्वेच्छा से प्रतिज्ञा करते हो कि 'अब मैं मन–वचन–काया से गृहविषयक प्रवृत्ति नहीं करूँगा ।' यानी मंदिर के मुख्य प्रवेशद्वार में प्रवेश करने के बाद आपको घर–दुकान के या परिवार के विचार नहीं करना है, तत्संबंधी बातें नहीं करना है और तद्विषयक कोई कार्य भी नहीं करना है ।

## तीन प्रदक्षिणा दें :

मंदिर में प्रवेश करने के बाद, यदि मूल गंभारे को प्रदक्षिणा देने की सुविधा हो, तो तीन बार प्रदक्षिणा देनी चाहिए ।

**सभा में से :** तीन ही क्यों ?

**महाराजश्री :** क्योंकि परमात्मा से तीन तत्त्व पाने हैं : ज्ञान, दर्शन और चारित्र ! यह रत्नत्रयी पाना हमारा ध्येय होना चाहिए । तीन प्रदक्षिणा, तीन तत्त्वों की प्राप्ति करने के ध्येय से देने की है । प्रदक्षिणा, हमारी बायीं तरफ से और परमात्मा

की दाहिनी तरफ से शुरू करनी चाहिए । पूजनसामग्री का थाल हाथ में लिये, परिवार के साथ गंभीर और मधुर स्वर से स्तवना करते हुए, जीवनरक्षा का उपयोग रखते हुए, मन में परमात्मा के गुणों का चिंतन करते हुए तीन प्रदक्षिणा देनी चाहिए ।

प्रदक्षिणा का प्रारंभ करते समय, आप समवसरण की कल्पना करें । जैसे कि आप समवसरण में जाकर, चतुर्मुख परमात्मा को प्रदक्षिणा दे रहे हो, वैसी कल्पना करें ।

## तीन बार प्रणाम करें :

प्रदक्षिणा देने के बाद परमात्मा के सामने खड़े होकर दो हाथ जोड़ें, मस्तक नमायें, कमर से आधे झुकें । तीन बार झुकें और भावपूर्ण हृदय से स्तुति बोलें। बाद में दुपट्टे के छोर से मुखकोश बाँध, दूसरी 'निसीहि' बोल, गंभारे में, गर्भगृह में प्रवेश करें । मुख और नाक से निकलनेवाले निश्वास को रोकने के लिए मुखकोश बाँधना है ।

मौरपंख से जिनप्रतिमा पर जो बासी पुष्प वगैरह हो, उसको उतार दें । गर्भगृह की उपयोग से सफाई करें । तत्पश्चात् जलपूजा करनी चाहिए ।

## अंगपूजा करें :

जलपूजा करते समय मन में चिंतन करें कि 'हे प्रभो, आपका जन्म होते ही इन्द्र आपको मेरूपर्वत पर ले गये और उन्होंने आपको रत्नजड़ित स्वर्णकलशों से नहलाये ! उस समय जिन्होंने आपके दर्शन किये, वे धन्य हो गये !'

सोने के, चाँदी के अथवा किसी भी अच्छी धातु के बने हुए कलश में स्वच्छ पानी भर, जिनप्रतिमा पर अभिषेक करें । अभिषेक करते समय तीन काम नहीं करना : १. शरीर को खुजलाना नहीं, २. थूँकना नहीं और ३. स्तुति–स्तोत्र वगैरह बोलना नहीं । मौन रहकर अभिषेक–पूजा करने की है ।

**सभा में से :** आजकल तो लोग अभिषेक करते हुए गाते हैं ! बातें भी करते हैं ।

**महाराजश्री :** अविधि है । न गाना है, न बातें करना है । हृदय में भक्ति

के भाव होने चाहिए। मन को जोड़ना है परमात्मा के साथ।

## प्रतिमा को कैसे साफ करते हो ? :

बाद में कोमल और सुगंधी वस्त्र से जिनप्रतिमा को साफ करें। अंग-उपांग में कहीं पर भी पानी न रहे, वैसे साफ करें। जैसे माता अपने छोटे बच्चे को स्नान कराकर उसका शरीर पोंछती है, वैसे कोमल हाथों से प्रतिमा साफ करें।

कुछ अज्ञानी और अविवेकी लोग पहलवान की तरह मूर्ति की दोनों बगल में वस्त्र डालकर इस कदर मूर्ति को घीसते हैं कि मूर्ति गद्दी पर से उखड़ जाती है ! कभी मूर्ति के गले में कपड़ा डालकर ऐसे घीसते हैं कि मूर्ति का सर ही अलग हो जाय ! कुछ मंदिरों में मैंने स्वयं इस प्रकार मूर्ति को साफ करते हुए लोगों को देखा हैं। उनको समझाया भी हैं।

प्रतिमा को पोंछने के वस्त्र स्वच्छ, मुलायम और सुगंधित होने चाहिए। आपके मंदिर में कैसे अंगलूछने रखते हो ? आपके शरीर को पोंछने के लिए कैसा टुवाल रखते हो ? कुछ सोचें और सुधार करें।

अभिषेकपूजा-प्रक्षालपूजा आपको स्वयं करनी चाहिए। प्रतिमा को साफ-स्वच्छ भी आपको ही करनी चाहिए। पूजारी से ये काम नहीं करवाने चाहिए।

प्रतिमा को साफ-स्वच्छ करने के बाद चंदन-केसर से पूजा करें। परमात्मा के नौ अंगों पर पूजा करनी चाहिए। केसर-चंदन सुगंधयुक्त होना चाहिए।

**सभा में से :** कुछ लोग प्रतिमाजी की छाती पर और गले पर बहुत सारे तिलक करते हैं लाल केसर से !

**महाराजश्री :** ऐसा नहीं करना चाहिए। नौ अंगों पर ही पूजा करनी चाहिए। केसर-चंदन से पूजा करने के बाद सुगंधयुक्त गुलाब, जूई, मोगरा वगैरह पुष्प चढ़ाने चाहिए। यानी भाव से पुष्पपूजा करनी चाहिए। सुगंधयुक्त वासचूर्ण से भी पूजा करनी चाहिए।

चंदन-पुष्प वगैरह से इस प्रकार पूजा करनी चाहिए कि जिससे प्रतिमाजी का मुख ढँक न जाए, आँखें दब न जाए। आपको उस प्रकार पूजा करनी चाहिए कि परमात्मा का दर्शन करनेवालों को हर्ष हो, आनंद हो !

इस प्रकार अंगपूजा कर, गर्भगृह में से बाहर आना चाहिए और अग्रपूजा करनी चाहिए ।

## अंगपूजा के बाद अग्रपूजा करें :

भगवंत के आगे खड़े रहकर जो पूजा की जाती है, वह अग्रपूजा कहलाती है ।

- पहले धूपपूजा करें । सुगंधी धूप होना चाहिए ।
- उसके बाद दीपक–पूजा करें । घी का दीया होना चाहिए ।
- बाद में अक्षतपूजा करनी चाहिए । स्वस्तिक वगैरह का आलेखन करना चाहिए ।
- स्वस्तिक के उपर नैवेद्य–मिठाई रखकर नैवेद्यपूजा करें ।
- सिद्धशिला पर फल चढ़ाकर, फलपूजा करें ।

मिठाई और फल अच्छे होने चाहिए । सड़ा हुआ फल और दुर्गंधयुक्त मिठाई कभी भी चढ़ानी नहीं चाहिए ।

## नैवेद्यपूजा का विशेष महत्त्व है :

'श्राद्धविधि' ग्रंथ में कहा गया है कि अग्रपूजा करते हुए भगवान के सामने चार प्रकार का नैवेद्य समर्पित करना चाहिए ।

- विविध व्यंजन, विविध सूप, ओदन, रोटी, दूध, दहीं वगैरह अशन का थाल,
- पानी के भरे हुए कलश,
- अनेक प्रकार के फल, नारियल, बादाम वगैरह मेवा जैसे खाद्य पदार्थ,
- इलायची, लौंग, केसर, सुपारी, सौंठ वगैरह खाद्य पदार्थ,

परमात्मा के समक्ष पाट पर स्थापित करने चाहिए । यह नैवेद्यपूजा गृहस्थ आसानी से प्रतिदिन कर सकता है । इसका फल भी बहुत बड़ा है । धान्य, पकाया हुआ धान्य तो जगत का जीवन है, इसलिए 'सर्वोत्कृष्ट रत्न' कहा गया है !

– प्रायः व्यंतर देवी–देवता, नैवेद्य से ही प्रसन्न होते हैं । मांत्रिकों से सुना है कि भूत, प्रेत, पिशाच वगैरह देव, खीर माँगते हैं, खिचड़ी माँगते हैं, बड़े माँगते हैं और पकाया हुआ धान्य भी माँगते हैं ।

– तीर्थंकर परमात्मा की देशना पूर्ण होने के बाद जो 'बलि' किया जाता है, वह पकाये हुए धान्य से ही किया जाता है । वह नैवेद्यपूजा का ही एक प्रकार है !

अन्य ग्रंथों में कहा गया है : '**धूपपूजा से पाप जल जाते हैं, दीपकपूजा से मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है, नैवेद्यपूजा से विपुल राज्यसंपत्ति मिलती है और परमात्मा को प्रदक्षिणा देने से कार्यसिद्धि होती है ।**'

## विशेष रूप से भक्ति – भावपूजा :

अंगपूजा पूर्ण होने के बाद भावपूजा–रूप चैत्यवंदन किया जाता है । तीसरी 'निसीहि' बोलकर भावपूजा का प्रारंभ किया जाता है । अब अंगपूजा या अग्रपूजा के विषय में भी, मन–वचन–काया से प्रवृत्ति नहीं करने की होती है ! चैत्यवंदन शुरू करने से पूर्व लघु प्रतिक्रमणरूप 'इरियावही' करनी चाहिए । खमासमण देते समय :

– जमीन की तीन बार प्रमार्जना करें ।

– सूत्र और अर्थ में मन का उपयोग रखें ।

– जिस दिशा में परमात्मा हो, उसी दिशा में देखें ।

– प्रतिमाजी का आलंबन ले, मन को स्थिर करें और भावपूर्वक एकाग्रता से चैत्यवंदन करें ।

– गीत और नृत्य का समावेश अग्रपूजा में होता है, वैसे भावपूजा में भी होता है ! गीतपूजा, नृत्यपूजा श्रेष्ठपूजा कही गई है । क्योंकि गीत और नृत्य से मन की तन्मयता प्राप्त होती है ।

सूत्र का उच्चारण और स्तवना का उच्चारण समुचित ध्वनि से करना चाहिए। यदि जिनभवन में दूसरे लोग भी पूजा करते हैं, तो आपको मंद और मधुर ध्वनि से चैत्यवंदन और स्तवना करनी चाहिए । यदि मंदिर में आप अकेले ही हैं,

तो फिर मंद या तीव्र–जो ध्वनि आपको निकालना हो निकालें ! हाँ, मधुरता अवश्य होनी चाहिए ।

## स्तवना कैसी होनी चाहिए :

जैसा–तैसा स्तवन नहीं बोलना चाहिए । स्तवना ऐसी होनी चाहिए कि गाते–गाते परमात्मा के अद्भुत गुणों के प्रति हृदय आकर्षित हो, स्वयं के दोषों के प्रति घृणा हो, संसार के प्रति वैराग्य पैदा हो, मोक्ष की अभिरुचि प्रगट हो । परमात्मा के अनेक उपकारों की स्मृति हो आये !

– स्तवना की रचना श्रेष्ठ कवि की होनी चाहिए । आपकी पसंदगी श्रेष्ठ होनी चाहिए । शुभ–भावोत्पादक स्तवना पसंद करें ।

– गीत के साथ यदि नृत्य करना आता है तो नृत्य भी करें, परंतु आपके नृत्य से दूसरे पूजकों की पूजा में अवरोध पैदा नहीं होना चाहिए । गृहमंदिर में इस बात का सुख होता है ! आपके मंदिर में आप एकान्त में परमात्मा के समक्ष नृत्य कर सकते हैं । 'जैन रामायण' में आता है कि अष्टापद तीर्थ पर, भगवंत के सामने मंदोदरी नृत्य करती थी और रावण वीणा बजाता था !

'निशीथचूर्णि' ग्रंथ में आता है कि राणी प्रभावती, अष्टमी और चतुर्दशी के दिन परमात्मा के सामने नृत्य करती थी और राजा उदायन मृदंग बजाता था।

## मुद्रा और प्रणिधान :

आपको यदि नृत्य करना आता है, तो अवश्य करना चाहिए ।

– चैत्यवंदन 'योगमुद्रा' से किया जाता है ।

– **'जावंती चेइआइं'** सूत्र, **'जावंत के वि साहू'** सूत्र और **'जय वियराय'** सूत्र, ये तीन सूत्र **'मुक्तासुक्ति–मुद्रा'** से बोले जाते हैं ।

– एक नवकार मंत्र का जो कार्योत्सर्ग किया जाता है, उस समय खड़े रहने की मुद्रा **'जिनमुद्रा'** होती है । हाथ–पैर के आकारों को मुद्रा कहते हैं !

**'जावंती चेइआइं'** सूत्र बोलते समय तीनों लोक में रही हुई शाश्वत् और अशाश्वत् सभी जिनप्रतिमाओं को भाव–वंदनारूप प्रणिधान किया जाता है।

'जावंत के वि साहू' सूत्र बोलते समय दुनिया में रहे हुए सभी साधुपुरुषों को भाववंदना करने की होती है। साधु-वंदनारूप प्रणिधान किया जाता है!

'जय वियराय' सूत्र में परमात्मा से प्रार्थना की जाती है। हम कुछ माँगते हैं परमात्मा के पास। जो माँगते हैं, उसमें हमारा मन एकाग्र रहे, यह प्रणिधान है। क्या माँगते हो परमात्मा से, आप लोग जानते हो? 'जय वियराय' सूत्र का अर्थ जानते हो? कम-से-कम 'चैत्यवंदन' में जितने सूत्र आते हैं, उतने सूत्रों का अर्थ तो सीख लो। अर्थ जाने बिना चैत्यवंदन करने में मजा नहीं आयेगा। भाववृद्धि नहीं होगी!

## परमात्मा की तीन अवस्थाओं का चिंतन करें :

परमात्मा की भावपूजा में दूसरी बात है परमात्म-चिंतन की। आँखें मूंद कर अथवा परमात्मा के उपर स्थिर कर, परमात्मा की तीन अवस्थाओं का चिंतन करना है।

- सर्वप्रथम परमात्मा की छद्मस्थ अवस्था का चिंतन करें।
- दूसरा अष्ट प्रातिहार्य के साथ समवसरण में बिराजे हुए तीर्थंकर का चिंतन करें।
- तीसरा सिद्धावस्था का चिंतन करें।

छद्मस्थ अवस्था के चिंतन में जन्म-अवस्था का, राज्य-अवस्था का और श्रमण-अवस्था का चिंतन करें। पहले मैंने विस्तार से बताया हुआ है यह चिंतन। अवश्य करना चाहिए यह चिंतन। इस चिंतन से परमात्मा के साथ पूजक का तादात्म्य सधता है और यही पूजा का श्रेष्ठ फल है। पूजा के फल बताते हुए ज्ञानीपुरुषों ने भावपूजा का फल यही बताया है - परमात्मस्वरूप की प्राप्ति।

## विविध पूजा के विविध फल :

ज्ञानीपुरुषों ने पूजा के फल बताते हुए कहा है कि परमात्मा की अंगपूजा करने से विघ्न दूर होते हैं। अग्रपूजा करने से मनुष्य का अभ्युदय होता है, उन्नति होती है और भावपूजा करने से मुक्ति की प्राप्ति होती है।

यह निश्चित है कि परमात्म-पूजा करने से मन को शान्ति मिलती है। मन

शान्त होने से शुभ ध्यान होता है । शुभ ध्यान से, शुद्ध ध्यान से आत्मा मुक्त होती है, मुक्ति से श्रेष्ठ सुखों की प्राप्ति होती है । इसलिए प्रतिदिन विधिपूर्वक परमात्मा की पूजा करनी चाहिए । परिपूर्ण पूजा न हो सके तो कम–से–कम अक्षतपूजा और दीपकपूजा तो करनी ही चाहिए ।

## पूजा की कुछ विशेष बातें :

'पूजाविधि–प्रकरण' में पूजा के विषय में कुछ विशेष बातें कही गई हैं, वे भी आज बता देता हूँ ।

– हो सके तो पूर्व दिशा सन्मुख बैठकर स्नान करें ।

– उत्तर दिशा सन्मुख खड़े रहकर श्वेत–उज्ज्वल वस्त्र पहनें ।

– पूर्व सन्मुख अथवा उत्तर सन्मुख खड़े रहकर परमात्मा की पूजा करें ।

– परमात्मा के नौ अंग की पूजा करें ।

– चन्दन से नौ अंग पर तिलक करें ।

– प्रातःकाल में वासक्षेप पूजा, मध्याह्न काल में पुष्पपूजा और संध्या समय धूपपूजा और दीपकपूजा करें । अभी इस समय, एक बार ही आप पूजा करते हो इसलिए अष्टप्रकारी पूजा करें ।

– जमीन पर गिरा हुआ पुष्प, पाँव का छुआ हुआ पुष्प, गंदे वस्त्र में लाया हुआ पुष्प, पहने हुए अधोवस्त्र में लाया हुआ पुष्प, रुष्ट मनुष्य का स्पर्श किया हुआ पुष्प, बिगड़ा हुआ पुष्प, परमात्मा को नहीं चढ़ाना चाहिए । ऐसा फल भी समर्पित नहीं करना चाहिए ।

– पुष्प के दो भाग नहीं करें । कमल–पुष्प और चंपा–पुष्प – ये दो पुष्पों के कभी भी दो भाग नहीं करें, दो भाग करने से बहुत बड़ा दोष लगता है ।

– पुष्प की कली को तोड़ें नहीं ।

– मन की शान्ति के लिए श्वेत पुष्प से पूजा करें ।

– अर्थलाभ के लिए पीला पुष्प उपयुक्त होता है ।

– शत्रुविजय के लिए श्याम रंग के पुष्प से पूजा की जाती है ।

- मांगलिक के लिए लाल रंग का पुष्प चढ़ाया जाता है ।
- मुक्ति पाने के लिए पंच प्रकार के पुष्पों से पूजा करें ।
- पंचामृत से प्रतिमा का अभिषेक करें ।
- शान्ति–पुष्टि के लिए अग्नि में लवण–नमक डालकर लूण उतारा जाता है ।
- खंडित, फटा हुआ, सांधा हुआ और लाल रंगवाला वस्त्र पहनकर पूजा नहीं करनी चाहिए । ऐसा वस्त्र पहनकर पूजा करने से पूजा निष्फल होती है ।
- बायें हाथ से पूजा नहीं करें ।
- एक पैर ऊँचा और एक पैर नीचा रखकर पूजा नहीं करें ।

## २१ प्रकार की पूजा :

जैसे अष्टप्रकारी पूजा बताई है वैसे २१ प्रकार की पूजा भी शास्त्रों में बताई गई है । १. अभिषेक पूजा, २. विलेपन पूजा, ३. आभूषण पूजा, ४. फूल पूजा, ५. वास पूजा, ६. धूप, ७. दीपक, ८. फल, ९. अक्षत, १०. पत्र, ११. सुपारी, १२. नैवेद्य, १३. जल, १४. वस्त्र, १५. चँवर, १६. छत्र, १७. वाजिंत्र, १८. गीत, १९. नाटक, २०. स्तुति, २१. भंडारवृद्धि ।

और भी जो वस्तु आपको अति प्रिय हो, वह परमात्मा को समर्पित करनी चाहिए । आपको अपनी शक्ति–अनुसार और भावना–अनुसार पूजा करनी चाहिए !

यदि कोई श्रावक अति दरिद्र अवस्था में आ गया हो, एक प्रकार की भी पूजा स्वद्रव्य से करने की शक्ति नहीं हो, तो अपने घर में 'सामायिक' करें । यदि उस पर किसी का कर्जा न हो और किसी के साथ विवाद–झगड़ा न हो, तो ही वह सामायिक में ही साधु की तरह मंदिर जाएँ । मंदिर में यदि काया से करने योग्य कोई कार्य हो तो सामायिक पूर्ण कर वह कार्य करें । यदि वहाँ पूजन–सामग्री हो और स्नान–वस्त्र आदि की सुविधा हो तो जिनपूजा भी कर सकता है ।

## पूजा विधि से करें :

अपनी शक्ति के अनुसार पूजा करने की है। एक द्रव्य से करें या १२ द्रव्यों से करें। पूजा में भाव चाहिए और विधि का पालन चाहिए। विधिपूर्वक पूजा करने से पूजा का श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है।

**सभा में से :** अविधि से ही हम लोग पूजा करते हैं! तो फिर नहीं करना ही अच्छा है न ? अविधि से करने से दोष ज्यादा लगता है न ?

**महाराजश्री :** 'पूजा अविधि से नहीं करनी है,' इतनी बात तो सही है; परंतु पूजा करना छोड़ देना उचित नहीं है। 'मैं विधि से पूजा करूँगा,' ऐसा सोचना चाहिए। विधिपूर्वक पूजा करने से श्रेष्ठ फल मिलता है, अविधि से पूजा करने से कम फल मिलता है! फल दोनों को मिलता है, कम-ज्यादा मिलता है।

इस विषय में एक कहानी सुन लो!

दो भाई थे। दरिद्र थे।

माँ के आग्रह से पैसे कमाने चले।

गाँव-गाँव, नगर-नगर फिरते रहे, परंतु पैसे नहीं कमाये। वे एक जंगल में से जा रहे थे। वहाँ एक छोटे पर्वत की तलहटी में, एक वृक्ष की छाया में विश्राम करने बैठे। पास में एक गुफा थी। गुफा में एक सिद्ध पुरुष रहते थे। दोनों भाइयों ने उस सिद्ध पुरुष की सेवा करने का निर्णय किया।

सेवा करते रहे। एक वर्ष तक सेवा की। सिद्ध पुरुष दोनों पर प्रसन्न हुए और कहा : 'तुम्हारी सेवा से मैं प्रसन्न हुआ हूँ। घर में तुम्हारी माँ अकेली है, इसलिए अब तुम घर चले जाओ। मैं तुम्हें सोना बनाने का रहस्य देता हूँ। तुम जितना चाहो उतना सोना बना सकते हो।'

सिद्ध पुरुष ने दोनों को सोना बनाने की प्रक्रिया समझायी। दोनों भाई खुश हुए। अपने घर पर आये। माँ को सारी बात बताई। माँ प्रसन्न हुई।

बड़े लड़के ने विधिपूर्वक क्रिया की, उसने सोना बना लिया।

छोटे लड़के ने विधि का समुचित पालन नहीं किया, अविधि से क्रिया की। वह सोना नहीं बना सका, परंतु चाँदी बन गई! तांबा रजत बन गया!

कहने का तात्पर्य यह है कि विधिपालन से १०० प्रतिशत फल मिलता है, तो अविधि से ५० प्रतिशत या ४० प्रतिशत भी फल मिलता है । परंतु अविधि के भय से क्रिया ही छोड़ दोगे, तो एक प्रतिशत भी फल मिलेगा नहीं ।

श्रद्धावान और शक्तिमान पुरुष विधिपूर्वक ही सभी धर्मक्रिया करता है, कदाचित् अविधि हो जाती है तो 'मिच्छामि दुक्कडं' देता है और हृदय में विधि का ही पक्षपात रखता है ।

**सभा में से :** विधिपूर्वक धर्मक्रिया करने का भाव हृदय में क्यों नहीं जागता है ?

**महाराजश्री :** शास्त्रों में पढ़ते हैं कि 'जो जीव निकट के भविष्य में तीन–चार भवों में मोक्ष पानेवाले होते हैं, उनको ही विधिपूर्वक धर्मक्रिया करने के भाव हृदय में जगते हैं !' यह साधारण नियम है ।

कुछ लोग जान–बूझकर अविधि नहीं करते हैं, परंतु अज्ञानता से करते हैं । विधि का अज्ञान होने से विधि का पालन नहीं कर सकते हैं । इसलिए आप लोगों को विधि का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए । हर धर्मक्रिया विधिपूर्वक करने का संकल्प कर लेना चाहिए ।

## पूजा का फल उपवास के माध्यम से :

जिनपूजा का फल भिन्न–भिन्न द्रष्टि से ज्ञानी पुरुषों ने बताया है । 'पद्मचरित्र' में जिनपूजा का फल उपवास के माध्यम से बताया है !

– आपके मन में विचार आया कि 'मैं पूजा करने जिनभवन जाऊँ' बस, इस विचार से आपको एक उपवास का फल मिल गया ! यानी एक उपवास करने से जो फल मिलना चाहिए, वो फल इस विचार से मिल गया !

– आप जिनभवन जाने के लिए खड़े होते हैं, आपको दो उपवास का फल मिल गया !

– चलने का प्रारंभ किया कि तीन उपवास का,

– आगे बढ़ते हुए चार उपवास का,

– मार्ग का चौथा हिस्सा कटने पर पाँच उपवास का,

– आधा रास्ता कटने पर १५ उपवास का,

– जिनभवन पहुँचने पर, जिनप्रतिमा का दर्शन होने पर एक महिने के उपवास का,

– जिनभवन में प्रवेश करने पर छः महिने के उपवास का,

– जिनभवन के गर्भगृह के पास पहुँचने पर १२ महिने के उपवास का,

– प्रदक्षिणा देते हुए १०० वर्ष के उपवास का,

– जिनेश्वर की पूजा करते हुए एक हजार वर्ष के उपवास का,

– भावपूजा करते हुए अनंत उपवास का फल मिलता है ।

हालाँकि फलप्राप्ति का आधार मनुष्य के अध्यवसाय होते हैं । उत्कृष्ट भाव में तत्काल केवलज्ञान भी प्रगट हो सकता है !

अब जिनमंदिर के प्रति अपने कुछ विशेष कर्तव्य बताता हूँ !

## जिनमंदिर के प्रति विशेष कर्तव्य :

कर्तव्य की बात जब करना है, तब मुझे पहली बात यह कहनी है कि आपके हृदय में जिनप्रतिमा, जिनमत और जैन संघ के प्रति वैसी प्रीति होनी चाहिए, जैसी प्रीति देह, द्रव्य और कुटुंब के प्रति होती है । ऐसी प्रीति होगी तो ही आप कर्तव्यों का पालन सुचारु रूप से कर पायेंगे ।

– पहला कर्तव्य है जिनभवन को स्वच्छ रखने का । हो सके वहाँ तक स्वयं ही स्वच्छ रखने का कार्य करें ।

– यदि जिनभवन जीर्ण हो, कोई भाग गिर गया हो, तो उसका जीर्णोद्धार करना चाहिए, मरम्मत करनी चाहिए । यदि आप धनवान हैं, तो स्वद्रव्य से ही जीर्णोद्धार करें । धनवान नहीं हो, तो पैसे इकट्ठे कर काम करना चाहिए ।

पूजा के उपकरण, साधन जुटाने चाहिए । आपूर्ति कर देनी चाहिए ।

– जिनभवन की सभी प्रतिमाएँ स्वच्छ, निर्मल रखनी चाहिए ।

– जिनभवन को धूप से सुगंधित रखें, दीपकों से प्रकाशित रखें, पुष्पमालाओं से सुशोभित रखें ।

- परमात्मा को चढ़ाये गये चावल, फल, नैवेद्य वगैरह का योग्य विनियोग करें ।
- चंदन, केसर, धूप, घी वगैरह का संग्रह करें ।
- देवद्रव्य की सुरक्षा करें, वृद्धि करें ।
- देवद्रव्य का हिसाब-किताब साफ रखें ।
- जिनभवन के नौकरों को अच्छी तनख्वाह दें ।
- नौकर लोग ठीक ढंग से काम करते हैं या नहीं, उसका खयाल करें ।
- जिनभवन की किसी भी वस्तु का उपयोग, अपने घर के काम में नहीं करें ।

बहुत सी बातें हैं । जो प्रमुख बातें थी, वे बता दी हैं ।

**सभा में से :** आज के प्रवचन में बहुत से प्रश्नों का समाधान हुआ, परंतु एक प्रश्न का समाधान करने की कृपा करें । जलपूजा, पुष्पपूजा वगैरह में हिंसा होती ही है, फिर भी वह करने का विधान कैसे किया गया है ?

**महाराजश्री :** हिंसा दो प्रकार की होती है । हेतु हिंसा और स्वरूप हिंसा । यदि किसी जीव को मारने की भावना से मारते हो, हिंसा की भावना से हिंसा करते हो, उसको हेतु हिंसा कही है तीर्थंकरों ने । वैसी हिंसा करने का निषेध किया गया है । परंतु शुभ भावना से कोई पवित्र क्रिया की जाती है, उस क्रिया में जीव हिंसा होती भी हो, वह हिंसा स्वरूप हिंसा है । उस हिंसा से जो पापकर्म बँधता है, वह पापकर्म शुभ भावना के पानी से धुल जाता है ।

आपके हृदय में परमात्म-भक्ति का भाव है, शुभ भाव है, उस भाव से आप जलपूजा और पुष्पपूजा करते हैं । आपका भाव पानी के जीवों को और पुष्प के जीवों को मारने का नहीं है । परंतु उस क्रिया में वे मर जाते हैं अवश्य । इससे जो पापकर्म बँधता है, वह परमात्म-भक्ति के भावजल से धुल जाता है । इसलिए उस हिंसा के भय से पूजा का त्याग नहीं करना चाहिए ।

दूसरी बात सोचें । आप आपके उपकारी साधुपुरुषों को वंदना करने जाते हो न ? ट्रेन में, बस में या मारुति में बैठकर जाते हो न ? क्या वहाँ हिंसा

नहीं होती है ? अरे, पंचेन्द्रिय पशुओं की, मनुष्यों की हिंसा भी हो जाती है। होती है न हिंसा ? तो फिर वंदना करने नहीं जाना चाहिए न ? जलपूजा और पुष्पपूजा में तो एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा होती है; वाहनों में सफर करने में पंचेन्द्रिय जीवों की भी हिंसा होती है। परंतु आपका भाव हिंसा करने का नहीं होता है, भाव गुरुवंदन करने का होता है, शुभ भाव होता है, इसलिए मना नहीं करते हैं।

अलबत्त, जलपूजा और पुष्पपूजा में विवेक होना अनिवार्य है। अविवेक सर्वत्र वर्ज्य है। जिनपूजा में विवेक आ जायेगा, तो आपकी जिनपूजा, अनेक दूसरे मनुष्यों को जिनपूजा करने के लिए प्रेरणा बन जायेगी।

ग्रन्थकार आचार्य ने '**उचितोपचारकरणम्**' और '**भावतः स्तवपाठः**' ये दो सूत्र दिये हैं, इन दो सूत्रों पर आज का प्रवचन हुआ है।

आज बस, इतना ही।

* * *

# प्रवचन : ३३

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में, श्रावक का विशेष धर्म बताने के बाद श्रावक की जीवनचर्या भी बताई है। कितनी अच्छी है जीवनचर्या ! क्षतिरहित, अविकल और परिपूर्ण है यह जीवनचर्या।

जिनभवन में जाकर, परमात्मा की द्रव्यपूजा और भावपूजा कैसे करनी चाहिए, यह मैंने कल बताया है। आज 'साधुवंदन' के विषय में कुछ बातें बतानी है। क्योंकि चैत्यवंदन के बाद साधुवंदन का क्रम ग्रंथकार ने स्वयं लिखा है –

'ततः चैत्य–साधुवन्दनम्।'

'चैत्य' का अर्थ टीकाकार आचार्यदेव ने 'जिनप्रतिमा' किया है। सही अर्थ किया है। वास्तविक अर्थ किया है। कुछ स्थानकवासी साधुओं ने 'चैत्य' शब्द का अर्थ 'साधु' किया है। गलत है यह अर्थ।

## 'चैत्य' शब्द का अर्थ :

आगमों में जहाँ जहाँ 'चैत्य' शब्द आया है वहाँ टीकाकार महर्षियों ने 'अर्हत् प्रतिमा,' 'इष्टदेव प्रतिमा', 'जिनप्रतिमा' ऐसा ही अर्थ लिया है।

– '**भगवती सूत्र**' में 'चेइयं' का अर्थ 'इष्टदेव प्रतिमा' किया है।

– '**प्रश्नव्याकरण**' में 'चैत्यानि' का अर्थ 'जिनप्रतिमाः' किया है।

– '**उववाई सूत्र**' में 'चैत्यानि' का अर्थ 'देवतायतनानि' किया है।

– '**रायपसेणी सूत्र**' में 'आयारवंत चेइय' शब्द आया है। उसका अर्थ किया गया है : 'आकारवन्ति–सुन्दराकाराणि चैत्यानी–देवतायतनानि' सुन्दर आकारवाले चैत्य यानी जिनभवन।

– '**शब्दार्थ चिन्तामणि**' कोश के दूसरे भाग में 'चैत्य' शब्द का अर्थ 'देवतरौ, देवावासे, जिनबिम्बे, जिनसभायाँ, देवस्थाने....' इस प्रकार किया है।

– '**अनेकार्थ संग्रह**' में कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्रसूरिजी ने 'चैत्य' शब्द

का अर्थ इस प्रकार किया है –

'चैत्यं जिनौकस्तद्बिम्बं चैत्यो जिनसभातरूः ।'

– 'वैजयन्ती–कोश' में भी 'चैत्य' शब्द का अर्थ जिनमंदिर किया गया है – 'देवायतनं चैत्यम् ।'

इसलिए 'चैत्य' शब्द के अर्थनिर्णय में यह स्पष्टता की है, क्योंकि आँखें मूंदकर जिनप्रतिमा और जिनमंदिर का विरोध करनेवाले लोग 'चैत्य' शब्द का मनमाना अर्थ कर, सरल, भद्रिक और संस्कृत–प्राकृत भाषा से अनभिज्ञ प्रजा को गुमराह करते हैं । प्रजा को जिनमंदिरों से और जिनप्रतिमाओं से दूर ले जाते हैं और मिथ्यादृष्टि देवों के मंदिरों में और मिथ्यादृष्टि देवमूर्तियों के पूजक बना रहे हैं ! ऐसे लोगों से सावधान रहना ।

## जिनप्रतिमाओं को वंदन करें :

जिनभवन में जितनी भी जिनप्रतिमाएँ हों, उन सभी प्रतिमाओं को 'नमो जिणाणं' बोलते हुए वंदना करें । पंचांग प्रणिपात करें, यानी खमासमण दें । जिनप्रतिमा को साक्षात् 'अरिहंत' मानें । प्रतिमा में आपको साक्षात् अरिहंत परमात्मा के दर्शन होने चाहिए । यदि आपके हृदय में परमात्मा के प्रति प्रीति होगी, भक्ति होगी, तो आपको मूर्ति में..... प्रतिमा में पत्थर नहीं दिखेगा, परमात्मा दिखेंगे । सवाल है परमात्म–प्रेम का !

– पैसे का प्रेम होता है तो करंसी–नोट में कागज नहीं दिखता है, परंतु रुपये दिखते हैं !

– सोने का प्रेम होता है तो सोने की लगड़ी में 'धातु' नहीं दिखती है, परंतु सोना दिखता है !

– पत्नी के प्रति प्रेम होता है तो पत्नी, हड्डियों की और माँस की पुतली नहीं दिखती हैं.... परंतु सौन्दर्यसभर स्त्री दिखती है ।

वैसे यदि परमात्मा के प्रति प्रेम है हृदय में, तो परमात्मा की मूर्ति में पत्थर नहीं दिखेगा.... परमात्मा दिखेंगे । वैसे अनेक परमात्म–प्रेमी स्त्री–पुरुषों ने परमात्मा के मंदिरों के निर्माण में और मूर्तियों के निर्माण में अपना सर्वस्व समर्पित

कर दिया है। सर्वस्व न्योछावर कर दिया है। इतिहास उसका साक्षी है।

इसलिए कहता हूँ कि जिनप्रतिमा का दर्शन, प्रेम की आँखों से करना। जिनमंदिरों का दर्शन प्रेम की दृष्टि से करना। उस दर्शन में, उस वंदन में आप अपूर्व आनन्द का अनुभव करेंगे।

## प्रतिदिन साधु–वंदन करें :

मंदिर से बाहर निकलकर, जहाँ पर साधुपुरुष बिराजते हों, वहाँ जाकर उनको विधिपूर्वक वंदना करें। हालाँकि कई भाई–बहनों को वंदन, विधि से करना नहीं आता है। एक भाई, जो यहाँ प्रवचन सुन रहे हैं, कल वे मेरे पास आये थे और हाथ जोड़कर, प्रणाम कर, वे मेरे सामने बैठे थे ! उन्होंने कहा था : 'मुझे विधिपूर्वक गुरु–वंदन करना नहीं आता है !' क्योंकि बाल्यकाल में वे पाठशाला में गये नहीं थे ! न कोई साधुपुरुष का संपर्क रहा था ! आज ४० वर्ष की उम्र होने पर भी उनको गुरु–वंदन की विधि नहीं आती है ! ऐसे अनेक स्त्री–पुरुष अपने जैन संघ में हैं। और, इसीलिए वे व्यक्तिगत रूप से हमारे पास आने में शरमाते हैं ! साधु–परिचय से वंचित रहते हैं। ज्ञानी साधुपुरुषों से ज्ञान नहीं पा सकते हैं। सिर्फ व्याख्यान सुनकर ही संतोष कर लेते हैं। हालाँकि व्याख्यान भी विधिपूर्वक वंदन करके ही सुनना चाहिए, परंतु कुछ देरी से आकर, हाथ जोड़कर, प्रणाम कर पीछे बैठ जाते हैं।

सीख लेना चाहिए विधिसहित वंदन करने की पद्धति। उसके केवल तीन सूत्र हैं छोटे–छोटे। एक–दो दिन में याद कर सकते हो। आसन और मुद्रा तो आधे घंटे में सीख सकते हो।

वैसे यदि विस्तार से और गहराई से गुरु–वंदन सीखना है तो आपको २२ विषयों का ज्ञान प्राप्त करना होगा। 'गुरुवंदन–भाष्य' नाम के ग्रंथ का अध्ययन–परिशीलन करना होगा।

**सभा में से :** यह ग्रंथ गुजराती भाषा में छपा है क्या ?

**महाराजश्री :** गुजराती और हिन्दी–दोनों भाषा में छपा है। पाठशाला में मिलेगा। पढ़ना जरूर, परंतु सीखना गुरुजनों के पास। क्योंकि प्रेक्टिकल करना

है न ! जो एक्सपर्ट होंगे वे ही सीखा पायेंगे ।

## सद्गुरु को भाव से वंदन करें :

सीखना और भाव से वंदन करना । क्रिया सिखाई जा सकती है, भाव स्वयंभू होना चाहिए । भाव सिखाने की बात नहीं है । सद्गुरु के प्रति स्वयंभू शुभ भाव होना चाहिए । गुणदर्शन से शुभ भाव प्रगट होता है, दोषदर्शन से अशुभ भाव पैदा होता है । इसलिए पहली बात तो मुझे आज गुणदर्शन की करना है ।

सद्गुरु में, साधुपुरुषों में गुणदर्शन करेंगे, तो उनके प्रति प्रीति का भाव जगेगा । भक्ति की भावना जगेगी । दर्शन–वंदन करने की चाह पैदा होगी । इसलिए कहता हूँ कि साधुपुरुषों में गुणदर्शन करें । साधुदर्शन का अर्थ ही गुणदर्शन होता है ।

– ३६ गुणों के माध्यम से दर्शन करते हो तो आचार्य को वंदन होता है ।

– २५ गुणों के माध्यम से दर्शन करते हो तो उपाध्याय को वंदन होता है ।

– २७ गुणों के माध्यम से दर्शन करते हो तो साधु को वंदन होता है !

तो क्या इन गुरुजनों में दोष नहीं होते हैं ? होते हैं दोष, परंतु दोष देखने के नहीं होते हैं । गुरुजनों के दोष नहीं देखे जाते हैं, गुण ही देखे जाते हैं । जब तक जीव छद्मस्थ रहेगा तब तक उसमें दोष रहनेवाले ही हैं । दर्शन–वंदन दोषों को नहीं करना है, गुणों को करना है । हमारी कल्पना में साधुपुरुष 'गुणमूर्ति' ही होना चाहिए । 'गुणमूर्ति' समझकर ही वंदना करनी चाहिए ।

यदि आप दोष देखने जायेंगे तो जीव में दो–चार दोष नहीं हैं, असंख्य और अनंत दोष हैं ! कितने दोष देखेंगे ? आपकी दृष्टि ही दोषमय बन जायेगी । फिर कभी भी आप शुभ मन से, पवित्र मन से गुरु–वंदन नहीं कर पाओगे ! आपका वंदन भाव–वंदन नहीं होगा । सिर्फ शुष्क क्रिया बन जायेगी वंदन की । वंदन करना है तो शुभ मन से, मधुर वाणी से और पवित्र काया से किया करो ।

## गुरु–वंदन क्यों करना चाहिए ? :

गुणवानों को वंदन करने से अपने में वे गुण आते हैं । गुणवान बनने के लिए ही गुरु–वंदन किया जाना चाहिए । गुणवान पुरुष सदैव पूजनीय होते हैं ।

ऐसे पूज्य पुरुषों के पास जाना है, उनसे कुछ सीखना है, पाना है, बात करनी है, जो कुछ भी करना है, वंदन करके करना है ।

गुरुदेवों को वंदन करने के ऐसे प्रमुख आठ **प्रयोजन होते हैं** ।

– पहला प्रयोजन है पच्चक्खाण लेने का । ग्रंथकार ने लिखा है : **'गुरु समीपे प्रत्याख्यानाभिव्यक्तिः ।'** सुबह प्रतिक्रमण करते समय आपने अपने मन में नवकारसी, पोरसी, आयंबिल.... उपवास का जो भी पच्चक्खाण किया हो, गुरु के पास जाकर वही पच्चक्खाण लेना चाहिए । भावना बढ़ जाय तो आयंबिल की बजाय उपवास का पच्चक्खाण कर सकते हैं ! नवकारशी की बजाय पोरसी का पच्चक्खाण कर सकते हो । पच्चक्खाण लेने से पूर्व विधिपूर्वक गुरु–वंदन करना चाहिए ।

– दूसरा प्रयोजन है क्षमायाचना का । गुरु के प्रति कोई अविनय हो गया हो, अपराध हो गया हो, उसकी क्षमा माँगनी हो तो वंदन करके क्षमा माँगनी चाहिए ।

– तीसरा प्रयोजन है प्रायश्चित लेने का । अपने पापों का गुरु के आगे प्रकाशन–आलोचन कर प्रायश्चित लेना हो, तो सर्वप्रथम वंदन करना चाहिए।

– चौथा प्रयोजन है ज्ञान–प्राप्ति का । गुरु से वाचना लेना हो, गुरु से प्रश्न पूछना हो, विशेष ज्ञान पाना हो, तो पहले वंदन करना चाहिए ।

– पाँचवा प्रयोजन है प्रतिक्रमण । प्रतिक्रमण में गुरु–वंदन करना ही होता है । छः आवश्यक में 'वंदन' एक आवश्यक है ।

– छट्ठा प्रयोजन है अनशन का । अनशन स्वीकार करने से पूर्व गुरु–वंदन करना पड़ता है । गुरुकृपा प्राप्त कर अनशन किया जाता है ।

– सातवाँ और आठवाँ प्रयोजन हम साधु–साध्वी के लिए है । हमारे यहाँ मेहमान–अतिथि साधु आये तो हमें 'मत्थएण वंदामि' बोल वंदन करने का होता है और योगोद्वहन की क्रिया में वंदन किया जाता है ।

## वंदन कब करना चाहिए :

ये सारे वंदन करने के प्रयोजन हैं । परंतु वंदन करते समय देश और काल

देखना चाहिए । किस समय वंदन करना चाहिए, किस समय वंदन नहीं करना चाहिए – इस बात का विवेक होना चाहिए । किस जगह वंदन करना चाहिए, किस जगह वंदन नहीं करना चाहिए – यह विवेक भी होना चाहिए ।

– जिस समय गुरु शान्त बैठे हो,

– अपने आसन पर बैठे हो,

– अप्रमत्त हो और

– वंदन का प्रत्युत्तर देने के लिए तत्पर हो, तब वंदन करना चाहिए ।

– जिस समय गुरुदेव धर्मचिंतन में मग्न हो, धर्मचर्चा में व्यस्त हो, धर्म का उपदेश देने में प्रवृत्त हो, उस समय वंदन नहीं करना चाहिए । यानी विधि–सहित सूत्रोच्चारपूर्वक वंदन नहीं करना चाहिए ।

– गुरुदेव खड़े हो, आपके प्रति लक्ष्य न हो, उस समय वंदन नहीं करना चाहिए । वे आसन पर बैठें और आपको देखें, तब वंदन करें ।

– गुरुदेव सोये हों अथवा रोष में हों, उस समय वंदन नहीं करें ।

**सभा में से :** साधुपुरुष रोष करते हैं क्या ?

**महाराजश्री :** कभी करना पड़ता है रोष ! प्रेम से, वात्सल्य से समझाने पर भी आप लोग नहीं समझते हो, नहीं सुधरते हो, तब रोष करना पड़ता है ! विशेष परिस्थिति में आचार्य को क्रोध–रोष करने की इजाजत दी है तीर्थंकरों ने ! आचार्य विशेष परिस्थिति में क्रोध करते हैं, परंतु वह केवल अभिव्यक्ति होती है ! उनके हृदय में तो करुणा ही होती है ।

– कुछ लोग उसी समय वंदन करने आते हैं, जब हमारा आहार लेने का समय होता है ! अथवा निपटने जंगल जाने का समय होता है ! कहते हैं : 'महाराज साब, दो मिनिट रुकिये, मुझे वंदन करना है !' नहीं करना चाहिए उस समय वंदन ।

अ–समय वंदन करने से, अ–स्थान वंदन करने से गुरुजनों को :

– धर्मकार्य में अन्तराय होता है,

– वंदन के प्रति दुर्लक्ष्य होता है,

– वंदन करनेवाले के प्रति कभी क्रोध आ जाता है,

– शारीरिक हाजत रोकने से शरीर में रोग हो सकता है ।

इसलिए योग्य समय में और योग्य स्थान पर ही वंदन करना चाहिए ।

## श्रमण संघ में वंदन की मर्यादाएँ :

जिस प्रकार आप श्रावक–श्राविकाएँ हमें वंदन करते हो, वैसे हमें भी वंदन करने होते हैं ।

– दीक्षापर्याय में हमसे जो बड़े होते हैं, उनको प्रतिदिन वंदन किया जाता है ।

– जो ज्ञानस्थविर होते हैं, यानी विशिष्ट ज्ञानी होते हैं, उनसे ज्ञान पाने के लिए वंदन करना पड़ता है ।

– जो प्रवर्तक साधु होते हैं, यानी साधु समुदाय को सद्व्यवहारों में जो प्रवर्तित करते रहते हैं, वे भी वंदनीय होते हैं ।

– उपाध्याय और आचार्य भी वंदनीय होते हैं ।

परंतु दीक्षित पिता, अपने दीक्षित पुत्र को वंदना नहीं करता है । भले ही पुत्र ने पिता के पूर्व दीक्षा ली हो । वैसे दीक्षित माता, अपनी दीक्षित पुत्री को वंदना नहीं करती है, दीक्षित पुत्र को भी वंदना नहीं करती है ।

– वैसे ही दीक्षित बड़ा भाई, अपने दीक्षित छोटे भाई को वंदन नहीं करता है । बहनों में भी यही व्यवहार होता है ।

– पुत्र साधु है, माता–पिता संसारी हैं, तो माता–पिता पुत्र–साधु को वंदना करते हैं ।

हमारे यहाँ साधु समुदायों में एवं साध्वी समुदायों में वंदन–व्यवहार का चुस्ती से पालन होता है । साधुजीवन में प्रधान धर्म ही विनय है । धर्म का मूल विनय है । वंदन से विनय का पालन होता है । वंदन से नम्रता बनी रहती है । परस्पर का स्नेह बना रहता है ।

गुरु–वंदन से विशेष रूप से छः गुणों की प्राप्ति होती है ।

## वंदन से गुणप्राप्ति :

– सर्वप्रथम तो विनय–गुण की प्राप्ति होती है । गुरु–विनय होता है ।

– दूसरे नम्रता–गुण की प्राप्ति होती है । अभिमान दूर होता है ।

– वंदन किया यानी गुरुपूजा की । गुरुपूजा से गुरूता प्राप्त होती है ।

– 'गुरु को वंदना करना चाहिए,' यह जिनाज्ञा है, वंदन करने से जिनाज्ञा का पालन होता है ।

– गुरु–वंदन कर, आप गुरु से ज्ञान प्राप्त करते हैं, यह श्रुतधर्म की आराधना है ।

– वंदन से विनय होता है और विनय से कर्मनाश होता है । वंदन करने से इतने सारे गुणों की प्राप्ति होती है, इसलिए गुरु–वंदन प्रतिदिन करना चाहिए। सुबह दोपहर और शाम–तीनों समय गुरु–वंदन करना चाहिए ।

– जिस समय वंदन करने का होता है, उस समय वंदन नहीं करते हैं, तो 'अविनय' बढ़ता है । 'अविनय' बड़ा दोष है ।

## वंदन नहीं करने से दोषवृद्धि :

– गुरु–वंदन नहीं करने से अभिमान बढ़ता है । गुरु पास में होने पर भी गुरु की उपेक्षा कर, जो गुरु को वंदन नहीं करता है, उसका अभिमान बढ़ता है । अभिमानी मनुष्य गुरु से ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है ।

– गुरु के होते हुए भी गुरु को वंदना नहीं करना, यह गुरु का तिरस्कार है । गुरु का तिरस्कार करना, बहुत बड़ा दोष है । बड़ा पाप है ।

– गुरु–तिरस्कार करने से 'नीच गोत्रकर्म' बँधता है । अनेक जन्मों तक यह 'नीच गोत्रकर्म' दुःख देता रहता है । इस कर्म से पशुयोनि में भी जन्मना पड़ता है और दुःसह दुःख सहने पड़ते हैं ।

– 'बोधि' की प्राप्ति नहीं होती है । यानी अनेक जन्मों में, असंख्य जन्मों में सर्वज्ञ–शासन की प्राप्ति नहीं होती है ।

– अभिमान से, तिरस्कार–भावना से, जो मनुष्य गुरु–वंदन नहीं करता है, वह दीर्घकालपर्यंत संसार में भटकता रहता है ।

## गुरु के साथ आपका व्यवहार कैसा है :

यदि आपके हृदय में गुरु के प्रति बहुमान है, भक्तिभाव है, तो आप इस प्रकार अविनय नहीं करेंगे, तिरस्कार नहीं करेंगे । गुरुजनों के साथ आपका व्यवहार औचित्यपूर्ण होगा । कुछ महत्त्वपूर्ण औचित्यपालन की बाते बताता हूँ ।

– आप चलते समय, यदि गुरु के साथ चलते हो, तो उसके आगे–आगे नहीं चलें । हाँ, गुरु को मार्ग बताना हो, तो आप आगे चल सकते हैं, अन्यथा नहीं ।

– आपको गुरु के पीछे–पीछे चलना चाहिए । परंतु एकदम निकट नहीं, दो–तीन कदम पीछे चलना चाहिए ।

– गुरु के कंधे से कंधा मिलाकर, मित्र की तरह नहीं चलना चाहिए ।

– गुरु खड़े हों, तो उनके आगे नहीं खड़े रहें ।

– गुरु खड़े हैं, तो उनकी पीठ से थोड़े दूर खड़े रहें ।

– गुरु खड़े हैं, तो उनके पास मित्र की तरह खड़े नहीं रहें ।

– गुरु के आगे एकदम नजदीक बैठें नहीं ।

– गुरु के पीछे दो–तीन हाथ दूर बैठें ।

– गुरु के पास मित्रवत् नहीं बैठें ।

– गुरु के आसन को, शय्या को आपका पादस्पर्श नहीं होना चाहिए ।

– गुरु के आसन पर, संस्तारक पर बैठना नहीं चाहिए, सोना नहीं चाहिए ।

– गुरु बुलाये तो जवाब देना चाहिए ।

– गुरु के साथ कर्कश भाषा का प्रयोग नहीं करें । चिल्लाकर नहीं बोलें ।

– गुरु के पास जाओ तब 'मत्थएण वंदामि' बोलें ।

– गुरु को 'क्या है ?' ऐसे नहीं पूछें, परंतु 'मेरे योग्य क्या आज्ञा है ?' ऐसे पूछें ।

– गुरु को बहुवचन से संबोधित करें ।

– गुरु का धर्मोपदेश सुनकर 'आपने अच्छा उपदेश दिया,' ऐसे प्रशंसा–वचन बोलें । मन में आनन्दित होना चाहिए ।

– 'आपको इस सूत्र का अर्थ याद नहीं है,' ऐसा नहीं बोलना चाहिए ।

– गुरु के कथन का खंडन नहीं करें ।

– गुरु से बात करने आये हुए व्यक्ति के साथ आप बात करना शुरू न कर दें ! उसको गुरु से ही बात करने दें । बीच में आप बोल–बोल नहीं करें ।

– गुरु को विनय से भिक्षा के लिए निमंत्रित करें ।

– ग्लान–बिमार साधु की समुचित सेवा करें ।

– कभी साधुजनों की निन्दा नहीं करें । सच्चें–जूठे कलंक नहीं लगायें । अवर्णवाद नहीं करें ।

इस प्रकार आपका व्यवहार शुद्ध होना चाहिए, औचित्यपूर्ण होना चाहिए । इससे आप गुरुकृपा के पात्र बनते हैं । आपका हृदय निर्मल रहता है और आप विविध सुखों को प्राप्त करते हो ।

## प्रतिदिन गुरुमुख से जिनवचन सुनें :

सद्गुरु के पास पच्चक्खाण लेने के बाद, उनसे धर्मोपदेश सुनना चाहिए । यह मूल–'ओरिजिनल' विधि है । वर्तमान में प्रवचन सुनने का समय सुबह ९/१० बजे का होता है । ठीक है, आप पच्चक्खाण लेकर, घर जाकर नवकारशी कर, पुनः उपाश्रय में जाकर जिनवचनों का श्रवण करें ।

गुरु ज्ञानी हो, गीतार्थ हो, साध्वाचारों के पालन में जाग्रत हो – उनसे जिनवचनों का श्रवण करना चाहिए । अवश्य, प्रतिदिन श्रवण करना चाहिए ।

**सभा में से :** ऐसे गुरुदेवों का यहाँ आगमन ही क्वचित् होता है !

**महाराजश्री :** क्या करें ? जब कभी ऐसे गुरुदेवों का संयोग मिले तब प्रतिदिन उनकी पर्युपासना करते रहो और जिनवचन सुनते रहो । अनिवार्य कारण के बिना, एक दिन भी 'मिस' मत करो । आप लोग श्रावक हो न ? 'श्रावक' शब्द की परिभाषा जानते हो क्या ?

**प्रतिदिनं साधुजनात् सामाचारीं श्रृणोत्ति–इति श्रावकः ।**

साधुपुरुषों से जो मनुष्य प्रतिदिन 'सामाचारी' सुनता है, वह श्रावक कहलाता है। श्रावक का यह व्युत्पत्ति–अर्थ है। जो सुनता है वह श्रावक है ! जो धर्म का उपदेश सुनता है, सर्वज्ञकथित धर्म का उपदेश सुनता है, साधुपुरुषों के मुख से सुनता है, वह श्रावक है !

## सामाचारी : जीवन जीने की रीत :

प्राचीनकाल की उपदेशपद्धति यह थी। साधुपुरुष, श्रावकों को उनके आचारधर्म का उपदेश मुख्य रूप से दिया करते थे। सदाचारों को समझाया करते थे। '**आचारः प्रथमो धर्मः ।**' पहला धर्म आचार है, सदाचार है।

जो श्रावक नहीं होते, समकित द्रष्टि नहीं होते, जो आदि धार्मिक होते हैं, दूसरे–दूसरे धर्मों में मान्यता रखनेवाले होते हैं, उनको उपदेश देने की पद्धति दूसरी होती है। यहाँ प्रस्तुत में श्रावक के उपदेश की बात है। श्रावक–श्राविका को कैसा जीवन जीना चाहिए, यह बताया जाना चाहिए। धर्म को जीवन में कैसे जीना–यह बताया जाना चाहिए। शुद्ध जीवन–व्यवहारों का पालन करने की प्रेरणा देनी चाहिए। पवित्र, उदात्त और परोपकार–परायण जीवन जीने की रीत सिखानी चाहिए।

जब–जब सद्गुरु का योग मिले, तब जिनवचन अवश्य सुनें। जिनवचन सुनने से :

- आपके संतप्त हृदय को शीतलता मिलेगी।
- अशान्त मन को शान्ति प्राप्त होगी।
- समता और समाधि का अनुभव होगा।
- अच्छे कार्य करने की प्रेरणा मिलेगी।
- हृदय में पापों का पश्चात्ताप होगा।
- उच्च कोटि का धर्मपुरुषार्थ करने की भावना जगेगी।
- अध्यात्ममार्ग का प्रकाश मिलेगा।

– निराशाएँ मिट जायेंगी, उल्लास प्रगट होगा ।

– ये बातें सिर्फ कल्पना की उड़ान नहीं है । विज्ञापन की मायाजाल नहीं है, परंतु वास्तविकता है । इसके साक्षी हैं :

– गुर्जरेश्वर राजा कुमारपाल

– मालवदेश के महामंत्री पेथड़ शाह

– कान्य कुब्ज देश का राजा आम

– मुगल बादशाह अकबर

और दूसरे अनेक ऐतिहासिक महापुरुष ! इन महापुरुषों के विषय में मैंने कई बार आपको बताया है । हेमचन्द्रसूरीश्वरजी के चरणों में बैठकर कुमारपाल ने, धर्मघोषसूरीश्वरजी के चरणों में बैठकर पेथड़ शाह ने, बप्पभट्टीसूरीश्वरजी के चरणों में बैठकर आम राजा ने और हीरविजयसूरीश्वरजी के चरणों में बैठकर बादशाह अकबर ने कैसा ज्ञान पाया था, कैसी भव्य प्रेरणाएँ पाई थी, कैसी शान्ति–समता और समाधि पाई थी ? धर्मपुरुषार्थ की कैसी ज्वलंत प्रेरणाएँ पाई थी, क्या आपने नहीं सुना है ?

वर्तमानकाल में भी मैं ऐसे कई महानुभावों को जानता हूँ कि जो सद्गुरु का योग मिलने पर प्रतिदिन जिनवचन सुनते हैं, एक दिन भी चूकते नहीं हैं। उन्होंने अपने–अपने जीवन में अद्भुत परिवर्तन किये हैं । दुराचारों को छोड़, सदाचारों का पालन कर रहे हैं । हर परिस्थिति में शान्ति और समता बनाये रखते हैं । अवसर आने पर परोपकार के कार्य करते हैं । परमात्मपूजा, सामायिक और प्रतिक्रमण जैसी धर्मक्रियाएँ करते हैं । स्वाध्याय और ध्यान करते हैं । अपने पारिवारिक कर्तव्यों को निभाते हुए, सर्वत्यागमय साधुजीवन जीने की भावना बनाये रखते हैं । क्रोध–मान–माया और लोभ–कषायों पर जिन्होंने अच्छा कंट्रोल किया है ।

हैं ऐसे महानुभाव वर्तमान कलिकाल में भी ! क्योंकि जिनशासन है, जिनशासन के तत्त्व हैं, साधु–साध्वी हैं । बहुत कुछ है आज । हमें उनका लाभ उठाना चाहिए ।

**सभा में से :** क्या करें ? मन तड़पता है जिनवचन सुनने के लिए, परंतु देश–काल प्रतिकूल है । आर्थिक विषमता है । शेठ हो या नौकर, सुबह नौ बजे बाजार में जाना पड़ता है, रात को नौ बजे थके–पके वापस आते हैं, कब सुनें धर्मोपदेश ?

**महाराजश्री :** आपका कहना सही है । आजीविका का प्रश्न विकट हो गया है । बाजारों की स्थिति भी तो अच्छी नहीं है । इसमें भी जो नौकरी करनेवाले हैं, जो स्कूल–कॉलेजों में पढ़नेवाले हैं, उनको तो धर्मोपदेश सुनना मुश्किल हो ही गया है । शरीर से जो परवश हो गये हैं, रोगग्रस्त हैं, उनके लिए भी जिनवचन दुर्लभ हो गये हैं ।

फिर भी, जब अनुकूलता प्राप्त हो, आप जिनवचन सुनते रहें । सुनने का संयोग नहीं मिले तब पढ़ने का प्रयत्न करें । सुनें या पढ़ें, कुछ भी करें, आपको अपने सदाचारों की और सद्विचारों की रक्षा करना है ।

## सदाचारों और सद्विचारों पर आक्रमण :

क्योंकि कुछ वर्षों से सदाचारों पर और सद्विचारों पर प्रबल आक्रमण हो रहे हैं । और हमारे हजारों–लाखों जैन परिवार उन आक्रमणों के सामने आत्मसमर्पण करते जा रहे हैं । सदाचारों को छोड़ते जा रहे हैं, दुराचारों का स्वीकार कर रहे हैं । सद्विचारों को छोड़ते जा रहे हैं, बुरे विचारों में फँसते जा रहे हैं।

– जिन परिवारों में बिना छाना पानी नहीं पीया जाता था, उन परिवारों में, कहीं कहीं शराब की बोतलें देखने में आती हैं ।

– जिन परिवारों में जमीनकंद का प्रवेश वर्ज्य था, वहाँ अंडे और आमलेट को प्रवेश मिल गया है ।

– जिन परिवारों में बुजुर्गों का विनय किया जाता था, उनकी मर्यादाओं का पालन होता था, उन परिवारों में बुजुर्गों की उपेक्षा, मर्यादाभंग और उनका तिरस्कार हो रहा है ।

– जिन परिवारों में लेन–देन का व्यवहार शुद्ध रहता था, वहाँ पर आज धोखा, कपट और विश्वासघात हो रहा है ।

– अर्थप्रधान और भोगप्रधान विचारधाराएँ बहने लगी है ।

ऐसी विकट परिस्थिति में, सदाचारों की और सद्विचारों की रक्षा कैसे करोगे ? रक्षा के उपाय करने ही होंगे ।

## 'सदाचार बचाओ' आंदोलन आवश्यक :

अनेक उपायों में एक उपाय है आंदोलन करने का । 'सदाचार बचाओ,' आंदोलन शुरू कर देना चाहिए । प्रजा में आंदोलन की प्रबल भावना भर देनी चाहिए । याद रखना, सदाचार और सद्विचारों को नहीं बचायेंगे तो शासन को, जिनशासन को नहीं बचा पायेंगे । जिनशासन की रक्षा करने की भावनावालों को सर्वप्रथम यह काम करना होगा – सदाचार-रक्षा का और सद्विचार-रक्षा का ।

सदाचारों को और सद्विचारों को तहस-नहस कर देनेवाला एक राक्षस पैदा हो गया है – नशाखोरी का । तमाकू से ब्राउन सुगर तक इस राक्षस के पंजे फैल गये हैं । किशोर और किशोरियाँ भी इस राक्षस की चपेट में आ गये हैं। कौन बचायेगा इन नादानों को ? कैसे बचायेंगे इन निर्दोष बच्चों को ?

जिनवचनों के सहारे ही बचाये जा सकते हैं इन लोगों को । आयोजन करना होगा, उन लोगों तक जिनवचनों को पहुँचाने का । इस कार्य में जितना विलंब होगा, नशाखोरी का राक्षस संघ-समाज को भक्ष्य बना लेगा । इसलिए विभिन्न माध्यमों से जिनवचनों का ज्यादा से ज्यादा प्रसार करना होगा ।

'**ततो जिनवचनश्रवणे नियोगः ।**' पच्चक्खाण करने के बाद जिनवचन का श्रवण करने का नियम होना चाहिए,' इस बात का तात्पर्यार्थ बताया है । इस बात का महत्त्व बताया है । आप गंभीरता से सोचना ।

आज बस, इतना ही ।

* * *

# प्रवचन : ३४

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरिजी स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में श्रावक की दैनिक चर्या बताते हैं। प्रातःकालीन कार्य बताते हुए उन्होंने

- श्री नवकार मंत्र का स्मरण।
- देहशुद्धि और वस्त्रशुद्धि कर गृहमंदिर में चैत्यवंदन।
- प्रतिक्रमण के दौरान पच्चक्खाण–धारणा करना।
- परिवारसहित जिनभवन जाना।
- विधिपूर्वक जिनपूजा करना।
- गुरु–वंदन करना, उनसे धारणानुसार पच्चक्खाण करना
- और उनसे जिनवचन श्रवण करना।

इतनी बातें बतायी हैं। बीच में दूसरी कोई बात नहीं बतायी। कोई बात नहीं, कोई चर्चा नहीं। दूसरा कोई काम नहीं! अच्छा है न यह प्रातःकालीन कार्यक्रम? आप भी, इतना कार्यक्रम तो बना सकते हो, यदि सूर्योदय के पहले निद्रात्याग कर सको तो। सूर्योदय के पूर्व एक घंटा पहले जगना चाहिए और दूसरे कोई कार्य की जिम्मेदारी सर पर रखनी नहीं चाहिए। दूसरे सभी कार्य, धर्मोपदेश सुनने के बाद ही करने का निर्णय कर लेना चाहिए। हाँ, जहाँ, जिस गाँव में प्रतिदिन सद्गुरु का संयोग नहीं मिलता हो, वहाँ जिनपूजा करने के बाद, उपाश्रय में अथवा घर में आकर एक सामायिक करें। सामायिक में श्री नवकार मंत्र का जाप करें और धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन करें।

परंतु सद्गुरु का संयोग मिले तब उनके पास जाकर अवश्य जिनवचनों का श्रवण करते रहें। प्रतिदिन अथवा कभी–कभी जिनप्रवचन सुनने से आपका मन स्वस्थ–निराकुल बना रहेगा। मन की शंकाएँ दूर होंगी।

## सुनने के बाद चिंतन करें :

जिनवचन सुनने के बाद उन वचनों का पुनःपुनः, बार–बार चिंतन करें। चिंतन करने के लिए विशेष समय निकालने की जरूरत नहीं है, कपड़े पहनते–पहनते, भोजन करते करते, ट्रेन या कार में मुसाफरी करते समय आप चिंतन कर सकते हैं। सोचने का समय बहुत मिल सकता है। अगर जिनवचनों का चिंतन करने की कला प्राप्त हो गई, तो आप फालतू पापविचार करने की आदत से बच जायेंगे।

**सभा में से :** चिंतन किस प्रकार करना चाहिए – हमें आता ही नहीं है!

**महाराजश्री :** चिंतन का प्रारंभ प्रश्न से, जिज्ञासा से होता है। ज्यादा प्रश्न मन में नहीं उठें, कोई बात नहीं, दो प्रश्नों से चिंतन का प्रारंभ करें।

## क्यों और कैसे ? :

चिंतन करना बहुत ही आवश्यक है। क्योंकि '**वृथा श्रुतम–चिन्तितम्।**' चिंतन नहीं करोगे तो सुनना व्यर्थ चला जायेगा। जिनवचनों पर चिंतन कैसे करना चाहिए, यह मैं एक रोचक दृष्टांत के माध्यम से समझाता हूँ।

## राजा प्रदेशी :

श्रावस्ती नगर के पास 'सेतव्या' नाम का नगर था। वह नगर केकयार्द्ध प्रदेश की राजधानी था। वहाँ का राजा था प्रदेशी। प्रदेशी अधार्मिक था। धर्म से विपरीत आचरण करनेवाला था। अधर्म का प्रसार करनेवाला था। बड़ा क्रूर था। रौद्र था। प्रचंड क्रोधी था। सदैव शिकार करता रहता था। पशु–पक्षी की और मनुष्यों की हत्या से उसके हाथ खून से सने हुए रहते थे।

राजा प्रदेशी के रथ का सारथी था चित्त। चित्त उम्र में प्रदेशी से बड़ा था। राजा उसे अपने भाई के समान मानता था। चित्त अर्थशास्त्र में पारंगत था। इसलिए उसने राज्य की समृद्धि बढ़ायी थी। चारों प्रकार की नीतियों में कुशल था। हर कार्य को साम–दाम–दंड और भेद से निपटा देता था। बुद्धिमान था। राजा प्रदेशी विभिन्न बातों में चित्त से परामर्श लिया करता था। एक प्रकार से चित्त को राजा मंत्री ही मानता था।

राजा का घोर हिंसाचार चित्त को पसंद नहीं था, परंतु वह जानता था कि 'राजा आत्मतत्त्व को ही मानता नहीं है। इसलिए वह पुण्य-पाप और स्वर्ग-नर्क को भी नहीं मानता है। कोई ज्ञानी, कोई साधु-संन्यासी भी राजा को आत्मा का अस्तित्व समझा पाते नहीं हैं। जब तक आत्मा का अस्तित्व राजा नहीं समझेगा, तब तक हिंसा वगैरह अनेक पापों से वह निवृत्त नहीं होगा। मैं तो सेवक हूँ उनका। मुझे समझाने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। अपनी योग्यता के अनुसार ही कार्य करना चाहिए।'

चित्त को बुलाकर राजा ने एक दिन कहा : 'तुम्हें श्रावस्ती जाना है और राजा जितशत्रु को मेरा यह उपहार देना है।'

राजा का उपहार लेकर चित्त श्रावस्ती गया। राजा जितशत्रु को वह उपहार भेंट कर दिया।

जिस समय चित्त श्रावस्ती में गया था, उस समय श्रावस्ती में आचार्य केशीकुमार अपने ५०० शिष्यों के साथ बिराज रहे थे। नगर के ईशान कोण में कोष्ठक नाम का चैत्य था, वहाँ पर आचार्यदेव ने निवास किया था। चित्त ने दूसरे दिन प्रभात में विशाल जनसमूह को कोष्ठक चैत्य की ओर जाता हुआ देखा, उसके मन में जिज्ञासा पैदा हुई : 'आज इस नगर में कौन-सा महोत्सव होगा ? अपार जनसमूह एक ही दिशा में जा रहा है!'

## चित्त सारथि श्रमणोपासक बनता है :

रथ में बैठा चित्त भी ईशान कोण की तरफ चल पड़ा। कोष्ठक चैत्य में लोगों का बड़ा मेला-सा लगा था। आचार्य केशीकुमार, जो कि भगवान पार्श्वनाथ की परंपरा के बहुश्रुत आचार्य थे, उनको चित्त ने देखा। आचार्य का सुंदर रूप और सौम्य मुखाकृति देख, चित्त उनके प्रति आकर्षित हुआ।

लोग आचार्य को तीन प्रदक्षिणा दे रहे थे, चित्त ने भी तीन प्रदक्षिणा दी।

लोग आचार्य को वंदना कर रहे थे, चित्त ने भी वंदना की।

आज वह सर्वप्रथम जैन मुनियों को देख रहा था। क्योंकि 'सेतव्या' नगरी में प्रायः कोई भी साधु-मुनि-संन्यासी नहीं जाते थे। प्रदेशी राजा साधु-मुनि-

संन्यासी से घृणा करता था, उनका तिरस्कार करता था, कभी–कभी मार भी डालता था । इसलिए सेतव्या में साधु–मुनि–संन्यासियों का जाना ही बंद हो गया था ।

चित्त सारथि आचार्य का उपदेश सुनने बैठ गया । आचार्य की मधुर और गंभीर ध्वनि ने चित्त के चित्त को मोह लिया । आचार्य ने उस दिन आत्मतत्त्व को समझाया । परमात्मतत्त्व की पहचान करायी । गुरु का स्वरूप बताया और धर्मतत्त्व का वास्तविक बोध दिया । चित्त के हृदय में एक–एक बात जँच रही थी ।

चित्त बुद्धिमान था । वह एक–एक बात को बुद्धि से नापता था और स्वीकार करता था । धर्मोपदेश पूर्ण हुआ, वह महल में आया । उसके मन में सुनी हुई बातों पर चिंतन चलता ही रहा । राजा जितशत्रु ने चित्त को कुछ दिन श्रावस्ती में रूकने के लिए कहा था । उसको बहुत आनन्द हुआ । 'अच्छा हुआ यहाँ ज्यादा दिन रूकने को मिला ! मैं जब तक यहाँ रहूँगा, प्रतिदिन आचार्यदेव का धर्मोपदेश सुनने जाऊँगा ! एक प्रहर व्यतीत हो जाने पर ऐसा लगता है कि एक घटिका ही पसार हुई है ! आचार्यदेव एक–एक बात युक्ति के साथ कहते हैं, भिन्न–भिन्न उदाहरण देकर बात को सिद्ध करते हैं । शान्त और स्पष्ट शैली में समझाते हैं । काश ! मेरे महाराजा यह उपदेश सुने, परंतु वे तो साधुपुरुषों को देखते ही भड़कते हैं, प्रज्वलित हो जाते हैं ।'

चित्त को वहाँ श्रावस्ती में दूसरा तो कोई काम नहीं था । दोपहर में और रात्रि के प्रथम प्रहर में वो आत्मतत्त्व पर ही सोचता रहा । परमात्मतत्त्व के विषय में चिंतन करता रहा । गुरुतत्त्व और धर्मतत्त्व की जो बातें सुनी थी, उन बातों पर उहापोह करता रहा ।

दूसरे दिन वह कोष्ठक वन में गया । आचार्यदेव को तीन प्रदक्षिणा देकर, भावपूर्वक वंदना कर, उपदेश सुनने बैठा ।

आचार्यदेव ने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, सदाचार और अपरिग्रह – ये पाँच अणुव्रत समझाये । गुणव्रत और शिक्षाव्रत भी समझाये । गृहस्थ धर्म का सुचारू रूप से प्रतिपादन किया । व्रतमय, संयममय जीवन की महानता बतायी । 'मनुष्य

जीवन की सार्थकता व्रत–संयम से ही है', यह बात समझायी ।

चित्त को उदात्त–महान और उत्तम जीवन जीने का स्पष्ट मार्गदर्शन मिल गया । सरल स्वभावी तो था ही ! आचार्यदेव का उपदेश सीधा ही हृदय में उतर गया । उपदेश पूर्ण होने पर उसने आचार्यदेव को वंदना की, उपदेश की पुनःपुनः सराहना की और वह अपने महल में लौट गया ।

अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रतों के विषय में दिनभर सोचता रहा । मैं इन व्रतों को ग्रहण कर सकता हूँ क्या ? इन व्रतों का पालन कर सकता हूँ क्या ? व्रतपालन करने की मुझमें क्षमता है क्या ? इससे जीवन में आंतरिक तृप्ति प्राप्त होगी क्या ?' वह रात्रि में भी तब तक सोचता रहा, जब तक उसको निद्रा नहीं आयी ।

आज तीसरा दिन था ।

वह प्रातःकालीन कार्यों से निपट कर सीधा कोष्ठक वन में पहुँचा । आज उसने आचार्यदेव को प्रदक्षिणा दी, वंदना की और बाद में सभी ५०० मुनिवरों को वंदना की । आज उसका हृदय आनंद से, हर्ष से गद्‌गद् हुआ जा रहा था। वह उपदेश सुनने अप्रमत्त हो, बैठा ।

आज आचार्यदेव ने महाव्रतमय श्रमण जीवन का वर्णन किया । एक–एक महाव्रत बताया । एक–एक 'समिति–गुप्ति' का वर्णन किया । साधुजीवन की दिनचर्या बतायी । श्रमण के ज्ञानानन्द का वर्णन किया । सुनते सुनते चित्त हर्षविभोर हो उठा । 'यही श्रमण जीवन श्रेष्ठ जीवन है ।' यह बात उसके हृदय में जँच गई ।

उपदेश पूर्ण होने पर उसने आचार्यदेव को वंदना की और वह अपने स्थान पर चला गया । उसके मन में श्रमण जीवन के महाव्रतों पर चिंतन शुरू हो गया था ।

महाव्रतमय श्रमण जीवन कितना निष्पाप है ! कितना उत्तम है ! परंतु क्या मैं वह जीवन पा सकता हूँ ? वह जीवन जीने की मेरी क्षमता है क्या ? नहीं, अभी इस समय मैं श्रमणोपासक बन सकता हूँ । बारह व्रत का पालन कर सकता

हूँ। जो भी आराधना शक्य है, उसका पालन मुझे करना ही चाहिए। कल गुरुदेव के पास जाकर गृहस्थ धर्म का स्वीकर कर लूँगा।

और चित्त गया आचार्य केशीकुमार के पास।

उसने बारह व्रत स्वीकार किये, वह श्रमणोपासक बन गया। बहुत ही आनन्दित हो वह राजभवन लौटा। राजा जितशत्रु ने चित्त को बुलाकर कहा : 'चित्त, मेरा यह उपहार महाराजा प्रदेशी को दे देना।'

चित्त ने उपहार लिया और सेतव्या जाने की तैयारी करने लगा।

उसने अपने मन में सोचा : 'मैं आचार्यदेव को सेतव्या पधारने की विनंति करूँ। यदि वे सेतव्या पधारे, तो महाराजा का हृदय-परिवर्तन हो सकता है। उनका उजड़ा हुआ जीवनवन नंदनवन बन सकता है।'

चित्त रथ में बैठा। कोष्ठक वन में आया। आचार्यदेव को वंदना कर विनय से बैठा! उसने कहा : 'भगवंत, मैं आपको सेतव्या पधारने की विनंति करता हूँ। सेतव्या पधारने से महान उपकार होगा गुरुदेव!'

'महानुभाव, सेतव्या के द्वार साधु-मुनि-संन्यासी के लिए सदैव बंद रहते हैं। सेतव्या के वन-उपवन में भी उनको प्रवेश नहीं मिल पाता है, ऐसा हमने सुना है।' आचार्यदेव ने कहा।

'गुरुदेव, आपके पधारने से सेतव्या के द्वार सदा के लिए खुल जायेंगे, सेतव्या के वन-उपवन साधु-मुनि-संन्यासी की धर्मदेशना से गुंजने लगेंगे और हमारे महाराजा का हृदय-परिवर्तन होगा। हजारों स्त्री-पुरुषों का आत्मकल्याण होगा। आपकी अनुकूलतानुसार पधारने की कृपा करें।' चित्त ने इस प्रकार बहुत ही अनुनय किया। आचार्यदेव ने अनुनय का स्वीकार किया। चित्त अत्यंत आनंदित हुआ। आचार्य को वंदना कर अपने आवास में आया।

आशा और उमंगें हृदय में भर कर वह सेतव्या की ओर चल पड़ा।

## आचार्य केशीकुमार सेतव्या की ओर :

हालाँकि आचार्यदेव ने सेतव्या जाने के विषय में बहुत सोचा। वे स्वयं तो मरणांत उपसर्ग से भी निर्भय थे, परंतु साथ में रहे हुए ५०० श्रमणों का विचार

उनको विचलित कर रहा था । राजा प्रदेशी ने वास्तव में अनेक साधु-संन्यासी को मौत के घाट उतारे थे । परंतु चित्त, कि जो प्रदेशी का सारथि था, मंत्री था, प्रियपात्र था, वह श्रमणोपासक बना था ! इसलिए वे सेतव्या जाने को तत्पर बने थे ।

श्रावस्ती के श्रमणोपासकों ने आचार्यदेव को सेतव्या नहीं जाने के लिए बहुत समझाया । परंतु परोपकाररसिक आचार्यदेव ने सेतव्या जाने का अपना निर्णय बदला नहीं । 'हमारे जीवन का अस्तित्व ही परोपकार के लिए है ।' इस बात पर वे अड़िग थे । उन्होंने शुभ मुहूर्त में सेतव्या की ओर विहार कर ही दिया।

उधर चित्त ने सेतव्या जाकर, नगर के बाहर जो मृगवन था, वहाँ जाकर मृगवन के रक्षकों को कह दिया : 'जिनमत के आचार्य अपने ५०० शिष्यों के साथ यहाँ पधारनेवाले हैं, उनका स्वागत-सत्कार होना चाहिए, समझे न ?' पलभर तो रक्षक स्तब्ध रह गये । बाद में उन्होंने कहा : 'आपकी आज्ञा है तो हम उनका उचित स्वागत-सत्कार करेंगे और इस मृगवन में ठहरायेंगे ।'

## आचार्यदेव से प्रदेशी का मिलन :

विहार करते करते आचार्यदेव ५०० श्रमणों के साथ सेतव्या पधारे । मृगवन के रक्षकों ने उनको प्रणाम कर, उनका सहर्ष स्वागत किया और मृगवन में स्थिरता करने की विनती की । आचार्यदेव मृगवन में ठहर गये । उधर एक वनरक्षक ने जाकर चित्त को, आचार्य के आगमन के समाचार दे दिये ।

चित्त ने राजा प्रदेशी को कहा : 'महाराजा, कम्बोज से नये सुंदर अश्व आये हैं । मैंने रथ में जोते हैं, पधारें, नगर के बाहर घूम कर आयें ।' राजा रथ में बैठ गया । चित्त ने रथ को नगर के बाह्य प्रदेश में ले जाकर दूर-दूर जंगल में भगाया । राजा आनन्दित हुआ । उसको अश्व बहुत पसंद आये । उसने अश्वों की प्रशंसा की । चित्त ने रथ को वापस लिया । राजा ने कहा : 'चित्त, रथ को मृगवन में लेना, कुछ समय विश्राम कर, बाद में नगर में जायेंगे ।' चित्त जैसा चाहता था, वैसा ही हो रहा था । वह मन में बहुत ही प्रसन्न हो रहा था।

रथ ने मृगवन में प्रवेश किया । वनरक्षकों ने राजा को प्रणाम किया । जिस

प्रदेश में आचार्य बिराजे थे, उससे थोड़ी ही दूर, एक सुंदर लतामंडप के पास रथ को रोक दिया। राजा और चित्त ने लतामंडप में प्रवेश किया। दोनों वहाँ पर बैठे।

उधर आचार्य केशीकुमार, अपने ५०० श्रमणों को ज्ञान–दान दे रहे थे। मृगवन के नीरव वातावरण में आचार्य की मधुर–गंभीर आवाज गूँज रही थी। राजा प्रदेशी के कानों पर वह आवाज आयी। राजा ने चित्त के सामने देखा। राजा के मुँह पर, उसकी आँखों में नफरत के भाव उभरने लगे। उसने चित्त को पूछा : 'कौन है यह ? किसकी आवाज है यह ?'

चित्त ने विनय से कहा : 'महाराजा, ये आचार्य केशीकुमार हैं, आज ही यहाँ आये हैं।'

राजा ने कहा : 'उनको बोलो, वे अभी के अभी यहाँ से चले जायँ।'

चित्त ने कहा : 'महाराजा, मैंने सुना है कि ये आचार्य बड़े ज्ञानी हैं। अपने उनके पास चलें। उनको जो पूछना हो आप पूछें। यदि वे आपके प्रश्नों का सही जवाब नहीं देंगे, तो उनको तूर्त ही यहाँ से चले जाने के लिए कह देंगे।'

चित्त खड़ा हुआ। राजा भी अनिच्छा से चित्त के साथ चला। दोनों आचार्यदेव के पास आये। चित्त ने विनय से प्रणाम किया। प्रदेशी ने अविनय प्रकट किया। खड़े खड़े ही प्रदेशी ने आचार्य को कहा :

'श्रमण निर्ग्रन्थों की यह प्रतिज्ञा है, यह द्रष्टि है, यह रूचि है, यह उपदेश है, यह संकल्प है, यह मान है और यह प्रमाण है कि जीव पृथक् है और शरीर पृथक् है। पर वे नहीं मानते कि जो जीव है वह शरीर है।'

आचार्यदेव ने मधुर स्वर में कहा : 'राजन्, मेरा विचार भी यही है कि जीव और शरीर पृथक्–पृथक् हैं। जो जीव है वही शरीर है – यह मेरा मत नहीं है।'

प्रदेशी बोला : जीव और शरीर पृथक्–पृथक् हैं और जो जीव है वही शरीर है – ऐसा आप नहीं मानते, तो हे श्रमण, मान लें कि मेरे दादा पापकार्यों के कारण मरकर नरक गये होंगे। उनका मैं पौत्र हूँ। मुझसे वे बड़ा प्यार करते

थे। तो मेरे दादा को यहाँ आकर मुझे कहना चाहिए कि 'बेटे, घोर पाप के कारण मैं नरक में गया हूँ। इसलिए तूँ पाप नहीं करना। हे श्रमण, यदि मेरे दादा आकर मुझे ऐसा कहें तो मैं जीव और शरीर को भिन्न मान सकता हूँ। अभी तक तो आये नहीं हैं मेरे दादा। इसलिए मैं मानता हूँ कि उनके शरीर के साथ जीव भी नष्ट हो गया होगा।'

आचार्यदेव ने कहा : 'राजन्, मैं एक प्रश्न पूछता हूँ। मान लो कि कोई दुष्ट पुरुष तुम्हारी रानी के साथ व्यभिचार सेवन करता हुआ पकड़ा जाए, तो उसको क्या दंड दोगे ?'

राजा ने कहा : 'उसके शरीर के टुकड़े करवा दूँ....।'

आचार्यदेव ने कहा : 'परंतु वह पुरुष कहे कि जरा ठहर जाइये, मैं मेरे संबंधियों को जरा बताकर आऊँ कि 'व्यभिचार का फल प्राणदंड है, मौत है' तो तुम क्या करोगे ?

राजा ने कहा : 'क्षणमात्र का विलंब किये बिना मैं उसको मार डालूँगा।'

आचार्यदेव ने कहा : 'राजन्, ठीक इसी तरह तुम्हारे दादा नरक में पराधीन हैं, स्वतंत्र नहीं हैं, इसलिए वे तुमको कुछ कहने यहाँ नहीं आ सकते हैं।'

प्रदेशी ने कहा : "ठीक है, नरक में पराधीनता है इसलिए जीव वहाँ से बाहर नहीं निकल सकता है, परंतु मेरी माता, जो कि बहुत ही धार्मिक थी, उसने बहुत धर्म किया था, वह तो स्वर्ग में गयी होगी न ? स्वर्ग में तो जीव पराधीन नहीं होता होगा ? उनका मेरे प्रति अत्यंत वात्सल्य था, तो वह यहाँ आकर मुझे क्यों नहीं कहती है कि 'बेटे, धर्म के प्रभाव से मैं देवलोक में देव बनी हूँ...तूँ भी धर्म कर।' यदि मेरी माता आकर मुझे कहें तो मैं मान सकता हूँ कि जीव और शरीर भिन्न हैं।"

आचार्य ने कहा : 'राजन्, देवलोक में जो जाते हैं वे दिव्य प्रेम में डूब जाते हैं। दिव्य वैषयिक सुखों में आसक्त होते हैं, इसलिए वे यहाँ नहीं आते हैं। और, मनुष्य लोक इतना दुर्गंधमय, अशुभ है कि देव यहाँ आना पसंद ही नहीं करते हैं। इसलिए, स्वर्ग में गई हुई तुम्हारी माता यहाँ तुम्हारे पास नहीं आती

है ।'

राजा मौन रहा । उसने चित्त के सामने देखा । राजा ने चित्त को कहा : 'आज मैं थका हुआ हूँ । अभी अपने चलें । कल वापस आयेंगे । मुझे बहुत प्रश्न पूछने हैं ।' चित्त ने कहा : 'आचार्यश्री यहाँ एक महिना रूकना चाहते हैं, इसलिए आप प्रतिदिन यहाँ आकर जो भी प्रश्न पूछने हों, पूछें । मुझे विश्वास है कि आपके प्रश्नों का अवश्य यहाँ समाधान होगा ।'

दोनों खड़े हुए । चित्त ने दो हाथ जोड़, मस्तक नमाकर प्रणाम किया, राजा ने भी वैसे ही नमस्कार किया । आचार्य ने 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद दिया और राजा चित्त के साथ वहाँ से चल दिया ।

## आचार्य से राजा प्रभावित होता है :

चित्त के मन में बहुत ही संतोष पैदा हुआ । वह अपने मन में सोचता है : 'बहुत अच्छा हुआ आज । अच्छी धर्मचर्चा हुई । इस प्रकार प्रतिदिन वार्तालाप होगा तो महाराजा का जीवन सुधर जायेगा । उनका शिकार छूट जायेगा, मांसाहार और मदिरापान छूट जायेगा । बहुत सारे पाप छूट जायेंगे । साधु–मुनि–संन्यासी के प्रति श्रद्धा और सद्भाव पैदा हो जायेगा । जीवन धर्ममय बन जायेगा, उनका परलोक सुधर जायेगा । सचमुच, मैं यही चाहता था । मुझ पर महाराजा के अनेक उपकार हैं । उन उपकारों का बदला चुकाने का यह अवसर मिल गया !'

राजा को राजमहल में छोड़, चित्त अपने घर गया ।

राजा के मन में आचार्य के प्रति आदरभाव पैदा हो ही गया था । उसको लगा कि 'आचार्य चंद्र जैसे सौम्य हैं, सूर्य से भी ज्यादा उनका ज्ञानतेज है । उनकी आँखों में करुणा का सागर हिलोरें ले रहा है । मैं उनके पास प्रतिदिन जाऊँगा । आज उन्होंने मेरे प्रश्नों के तर्कबद्ध प्रत्युत्तर दिये । नरक से कोई नहीं आ सकता, स्वर्ग से भी कोई नहीं आ सकता ! नरक में पराधीनता और अति भयानक दुःख है, त्रास है । स्वर्ग में अति सुख है, विषयासक्ति है । वैषयिक श्रेष्ठ सुखों को छोड़कर कौन यहाँ आयेगा ? सही बात है ।'

राजा प्रदेशी घंटों तक विचार...चिंतन...मंथन करता रहा ।

धर्मतत्त्व का श्रवण करने के बाद, ग्रंथकार ने कहा है कि 'उस सुने हुए धर्मतत्त्व का आलोचन करना चाहिए।' 'सम्यक् तदर्थालोचनम्।' अच्छी तरह चिंतन-मनन-आलोचन करना चाहिए। ताकि मन में कोई शंका-संदेह या विपर्यास नहीं रहे।

राजा प्रदेशी के मन में आज नया ही चिंतन शुरू हुआ था। जीवन में सर्वप्रथम आज वह स्वर्ग और नरक के विषय में, आत्मा और शरीर की भिन्नता के विषय में सोच रहा था। यानी भिन्न अस्तित्व का स्वीकार कर रहा था।

## आत्मा दिखती क्यों नहीं ? :

फिर भी उसके मन में नये प्रश्न पैदा होते थे। आत्मा का शरीर से पृथक् अस्तित्व हो, तो आत्मा प्रत्यक्ष दिखनी चाहिए। नहीं दिखती है स्वतंत्र आत्मा !

दूसरे दिन उसने आचार्यदेव को यही प्रश्न पूछा। आचार्यदेव ने उसको कहा :

'जैसे हवा प्रत्यक्ष नहीं दिखती हैं, परंतु देख, इस वृक्ष की डालियाँ हिल रही हैं, पर्ण हिल रहे हैं, क्यों ? हवा से हिल रहे हैं न ? कार्य का कारण जहाँ प्रत्यक्ष न हो, अनुमान से कारण का निर्णय किया जाता है। वैसे मनुष्य में इच्छा, ज्ञान, सुख-दुःख वगैरह दिखायी देते हैं न ? उनका कारण तो होना चाहिए न ? कारण है आत्मा ! इच्छा, ज्ञान वगैरह आत्मा के गुण हैं, जड़ के नहीं। इसलिए आत्मा का स्वतंत्र अस्तित्व है। कारण के बिना कोई कार्य नहीं होता है। बहुत से ऐसे कार्य हैं, जो आत्मा के बिना संभवित ही नहीं हैं।'

इस प्रकार राजा प्रश्न पूछता रहा और आचार्य समाधान करते रहे। राजा का मिथ्यात्व दूर हुआ। सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति हुई।

## राजा प्रदेशी श्रमणोपासक बनता है :

'आत्मा है, आत्मा कर्मों से आवृत्त है, पुण्यकर्म है, पापकर्म है, स्वर्ग है, नरक है, आश्रव, संवर और निर्जरा है, मोक्ष है...' जब ये सारी बातें राजा ने मान ली, तब उसके मन में अपने विगत जीवन के विषय में घोर विषाद पैदा हुआ।

'मैंने मेरे जीवन में घोर पाप किये हैं। अनेक निर्दोष जीवों की हिंसा की है। अनेक साधुपुरुषों को क्रूरता से सताये हैं। झूठ बोला है, मांसभक्षण किया

है, मदिरापान किया है, जुआ खेला हूँ, शिकार किये हैं...ओह ! मेरा क्या होगा ? मुझे नरक में जाना पड़ेगा ? नरक की प्रचंड आग में जलना पड़ेगा ? मेरे किये हुए पापों की सजा तो मुझे भुगतनी ही पड़ेगी ।'

उसने आचार्यदेव केशीगणधर के चरणों में एक दिन यह विषाद प्रगट कर दिया । आचार्यदेव ने ज्ञानदृष्टि से उनके मन का समाधान किया । बारह व्रतों का स्वीकार कर, दृढ़ता से व्रतमय जीवन जीने का उपदेश दिया । प्रदेशी का एक ही जवाब था – 'गुरुदेव, अब आपकी आज्ञा वही मेरा जीवन रहेगा । मैं श्रमण बनने में शक्तिमान नहीं हूँ । मैं तो श्रमणों का, आपका उपासक बन पाऊँगा ।'

प्रदेशी ने बारह व्रत स्वीकार किये ।

ग्रंथकार ने तीसरी विकास–भूमिका यही बतायी है : '**श्रुतशक्यपालनम्** ।' जो धर्मतत्त्व सुनें, उसमें जितना शक्य हो, उतना पालन करना चाहिए । प्रदेशी के लिए गृहस्थ धर्म शक्य था, उसने उस गृहस्थ धर्म का स्वीकार किया और पालन किया ।

'गुरुदेव जैसा कहें, वैसा ही मुझे करना है ।' यह संकल्प उनकी '**आगमैकपरता**' थी । उनके लिए गुरु ही 'आगम' थे । आगम यानी ज्ञान । ज्ञान से ज्ञानी पृथक् नहीं होते । ज्ञानी की शरणागति यानी ज्ञान की शरणागति ! गुरु की आज्ञा वही शास्त्र की आज्ञा होती है । प्रदेशी के लिए आचार्यदेव केशीगणधर की आज्ञा ही सब कुछ था । पूर्ण समर्पण भाव पैदा हो गया था ।

## प्रदेशी वैषयिक सुखों से विरक्त बनते हैं :

'रायपसेणीय–सूत्र' में कहा गया है कि व्रतधारी बनने के बाद प्रदेशी राजा विरक्त बनते गये । उनके राज्य में सात हजार गाँव थे । राजा ने उन गाँवों को चार भागों में विभक्त कर दिये ।

– एक भाग राज्य की व्यवस्था के लिए सेना को दे दिया ।

– एक भाग राज्य के भंडार के लिए रक्खा ।

– एक भाग अंतःपुर (राणीवास) की रक्षा और निर्वाह के लिए दिया ।

– एक भाग दानशाला के लिए दिया ।

सारी व्यवस्था मंत्रियों को सौंपकर, राजा स्वयं व्रतपालन करता हुआ, मन–वचन–काया से ब्रह्मचर्य का पालन करने लगा । पर्व–तिथि के दिनों में पौषध और उपवास करने लगा । ज्ञान और ध्यान में निमग्न रहने लगा । वह सोचता रहता : 'मैं कब सर्वसंग का त्याग कर श्रमण बनूँगा ? संपूर्ण निष्पाप जीवन कब जीऊँगा ? धन्य हैं उन श्रमणों को, जो मोक्षमार्ग की यथाशक्ति आराधना करते हैं । मैं मन–वचन–काया से उनकी आराधना की अनुमोदना करता हूँ ।'

**'अशक्ये भावप्रतिबन्धः ।'**
**'तत्कर्तृषु प्रशंसोपचारौ ।'**

ग्रंथकार महर्षि ने उपर्युक्त दो बातें जो कही हैं, वह प्रदेशी के जीवन में, उनके चिंतन में जानने को मिलती हैं । उनके लिए श्रमण जीवन अशक्य था, परंतु उस श्रमण जीवन में उनका भाव–प्रतिबंध अशक्य था । भाव–प्रतिबंध यानी आंतरिक लगाव !

जो धर्म–आराधना हम नहीं कर पाते हों, उस धर्म–आराधना के प्रति हमारा आंतरिक लगाव तो होना ही चाहिए । संभव है कि श्रद्धावान मनुष्य बारह व्रतमय गृहस्थ धर्म का स्वीकार नहीं कर सके, पालन करने की उसकी क्षमता नहीं हो, परंतु उसके मन में उस गृहस्थ धर्म के प्रति लगाव होना चाहिए । और, लगाव होगा तो नीचे लिखी दो बातें उसके जीवन में दिखायी देगी :

१. गृहस्थ धर्म का पालन करनेवालों की प्रशंसा,

२. गृहस्थ धर्म का पालन करनेवालों की सेवा–भक्ति ।

## लगाव, प्रशंसा, सेवा–भक्ति :

ग्रंथकार आचार्यदेव ने ये बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही है । जो धर्म–आराधना आपसे नहीं हो पाती है, उस धर्म–आराधना के प्रति आपके मन में लगाव होना चाहिए । 'मैं कब श्रमणधर्म का पालन कर पाऊँगा ?' ऐसी इच्छा, ऐसी भावना आपके मन में जगनी चाहिए ।

और यह भावना सच्ची है या झूठी है – उसका निर्णय करने का उपाय

भी बता दिया है !

– आप साधुधर्म का पालन नहीं कर सकते हैं, परंतु जो महापुरुष साधुधर्म का पालन करते हैं, उनकी आप प्रशंसा करते हैं क्या ?

– साधुधर्म का पालन करनेवालों की सेवा–भक्ति करते हो क्या ? यदि करते हो, तो मानना पड़ेगा कि आपके मन में साधुधर्म के प्रति लगाव है ।

वैसे दान, शील और तपधर्म के विषय में समझना है ।

– आप दान नहीं दे सकते हो, परंतु दानधर्म के प्रति आपका लगाव होगा, तो आप दानदाताओं की प्रशंसा करेंगे । दानदाताओं की उचित सेवा–भक्ति करेंगे ।

– आप शीलधर्म का पालन नहीं कर सकते हो, परंतु शीलधर्म के प्रति आपकी आंतरिक प्रीति होगी, तो आप शीलवानों की बार–बार प्रशंसा करते रहेंगे, अवसरोचित भोजनादि के द्वारा उनका सत्कार–सन्मान करते रहेंगे ।

– आप तपधर्म का पालन नहीं कर सकते हो, परंतु तपधर्म के प्रति आपके मन में प्रेम होगा, तो तप करनेवालों की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते रहोगे और तपस्वियों की उचित सेवा–भक्ति करते रहोगे ।

अब आप सोचना कि अपने स्वयं के लिए, आप क्या कर रहे हो ! चिंतन करना, आत्मसाक्षी से चिंतन करना । श्रवण के बाद चिंतन करना ही चाहिए ।

राजा प्रदेशी की करुणान्तिका आज नहीं बताता हूँ ।

आज बस, इतना ही ।

* * *

# प्रवचन : ३५

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में श्रावक जीवन की दिनचर्या का प्रतिपादन किया है। उस दिनचर्या में जिनवचनों का श्रवण करना अति आवश्यक बताया है। उन्होंने कहा है :

- जिनवचनों का श्रवण करने का नियम करें।
- जो सुने उस पर सम्यग् चिंतन करें।
- जीवन की हर क्रिया आगमानुसार, शास्त्रानुसार करें।
- जो धर्मतत्त्व सुनें, उनमें से जो शक्य हो, उसका पालन करें।
- जो धर्म–आराधना नहीं कर सकते हैं, उसका लगाव होना चाहिए।
- जो करते हैं वह धर्म उसकी प्रशंसा करें, उचित सेवा करें।
- गहन–गंभीर तत्त्वचिंतन करें।
- जो तत्त्व आपको अति गूढ़, गहन और गंभीर लगें, जिसका अर्थ आप नहीं समझ पाते हों, जाकर गुरुदेव को प्रश्न करें, विशुद्ध विनय से प्रश्न करें।

## राजा प्रदेशी :

ये सारी बातें राजा प्रदेशी के जीवन में आई हुई थी। आचार्यदेव श्री केशी के परिचय से, संपर्क से, जैसे पारसमणि के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है, वैसे राजा प्रदेशी वास्तव में धर्मात्मा बन गया था। राजा प्रदेशी, निर्मल ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करता हुआ :

- प्रतिदिन, गुरुदेव केशी आचार्य से जिनवचन सुनता रहता था।
- सुनी हुई तत्त्व की बातों पर चिंतन–मनन करता रहता था।
- सुनते–सुनते हेय का त्याग और उपादेय का स्वीकार करता रहा।

– उसके जीवन की हर क्रिया, गुरुवचनानुसार हो गई थी ।

– जो श्रमण धर्म का पालन उसके लिए अशक्य था, उस श्रमण धर्म के प्रति उसका आंतरिक लगाव था, इसलिए वह

– हमेशा श्रमणों की, श्रमण जीवन की प्रशंसा, गुणानुवाद किया करता था। और उनको निर्दोष आहार, पानी, औषध, वस्त्र वगैरह का दान दिया करता था। उनकी सेवा–भक्ति करता रहता था ।

**सभा में से :** साधुओं को राजपिंड ग्रहण करने का निषेध है न ?

**महाराजश्री :** भगवान अजितनाथ से भगवान पार्श्वनाथ तक के २२ तीर्थंकरों के श्रमणों के लिए यह नियम नहीं है । इन २२ तीर्थंकरों के श्रमण सरल और निर्मल बुद्धि के धनी होने से, उनके लिए राजपिंड वर्ज्य नहीं होता था । वे चाहते तो लेते थे राजपिंड, वे नहीं चाहते तो नहीं लेते थे । आचार्यश्री केशीकुमार, भगवान पार्श्वनाथ की परंपरा के महान आचार्य थे । श्री गौतम स्वामी के साथ विशद तत्त्वचर्चा होने के बाद, उन्होंने भगवान महावीर स्वामी के धर्मशासन का स्वीकार किया था । बाद में उन्होंने राजा के वहाँ की भिक्षा ग्रहण नहीं की होगी ।

– राजा प्रदेशी, आचार्यदेव केशीकुमार के परिचय से जिनोक्त तत्त्वों के ज्ञाता बने थे; इसलिए गूढ, गहन और गंभीर जिनतत्त्वों का चिंतन–मनन करते थे और जो तत्त्व समझ में नहीं आता था, वह गुरुदेव के पास जाकर पूछते थे ।

अपने कह सकते हैं कि प्रदेशी धर्म करते नहीं थे, बल्कि धर्म को जीवन में जीते थे ! धर्म करना एक बात है, धर्म को जीना दूसरी बात है । जब तक धर्म करने की बात है, धार्मिकता का बाल्यकाल है ! धर्म को जीने की बात धर्म का यौवन काल होता है । प्रदेशी के मन–वचन और काया – तीनों योग धर्मरंग से रंग गये थे ।

इसलिए जब महाराणी सूर्यकान्ता ने, जो कि परपुरुषगामिनी, दुराचारिणी स्त्री थी, प्रदेशी को पौषधोपवास के पारणे में जहर देकर मार डाला था, तब प्रदेशी

का मन समता–समाधि में रहा था । सूर्यकान्ता के प्रति कोई रोष उसके मन में नहीं आया था । मरकर वह पहले देवलोक में देव बने हैं, उनका नाम 'सूर्याभ' है । यदि मृत्यु के बाद पहले देवलोक में आप उत्पन्न हों, तो सूर्याभ देव से मिलना ! पूछना कि 'पौषधोपवास के पारणे में जहर देनेवाली पत्नी के उपर गुस्सा कैसे नहीं आया ? हमें तो जहर नहीं, अमृत पिलानेवाली पत्नी के उपर भी बहुत गुस्सा आता है !' पूछेंगे न ?

**सभा में से :** स्वर्ग में जाने के हमारे लक्षण नहीं दिखते हैं । यदि नरक में एक–दूसरे से मुलाकात होती होगी, तो महाराजा श्रेणिक से मिलना है !

**महाराजश्री :** नरक में जाकर पूछने की बजाय, अभी इसी जीवन में उनकी मुलाकात कर सकते हो न ? कल्पना के आलोक में श्रेणिक की आत्मा को अवतरित कर, उनका साक्षात्कार करो । पूछना हो सो पूछो ! 'आपको नरक में कैसे जाना पड़ा ? आप तो श्रमण भगवान महावीर स्वामी के अनन्य उपासक थे ! ऐसा कौन–सा पाप आपको नरक में ले गया है ?' पूछना ! प्रत्युत्तर मिलेगा । मैं अभी प्रत्युत्तर नहीं दूँगा । आप उनसे ही कारण जानना और उस कारण का आप त्याग कर देना, ताकि नरक में नहीं जाना पड़े !

अथवा यहाँ ही किसी संविग्न गीतार्थ श्रमण–श्रेष्ठ से पूछ लेना ! जब संपर्क हो जाय तब ! जिस समय श्रमण भगवान महावीर स्वामी, वैशाली से विहार कर वत्सदेश में पधारे, वत्सदेश की राजधानी कौशाम्बी नगरी में पधारे, तब स्वर्गस्थ राजा शतानिक की बहन जयन्ती श्राविका ने विशुद्ध विनयभाव से भगवंत को कैसे प्रश्न पूछे थे, जानते हो आप ? शायद नहीं जानते होंगे ।

## महान श्रमणोपासिका जयन्ती :

श्री भगवती सूत्र के प्रथम शतक में जयन्ती श्राविका का जिक्र आता है । जब मैंने पढ़ा था वो प्रसंग–जयन्ती श्राविका ने जो प्रश्न पूछे थे भगवंत को, पढ़ते–पढ़ते जयन्ती के प्रति अत्यंत अहोभाव हृदय में भर आया था । एक श्रमणोपासिका, गृहस्थ स्त्री का कितना गहरा तत्त्वबोध ! कैसे गहन, गंभीर और गूढ़ प्रश्न पूछे थे उसने ! आप कैसे प्रश्न पूछते हो, उसके आधार पर आपके ज्ञान का अनुमान हो सकता है । तत्त्वविषयक गहन चिंतन के बिना, ऐसे प्रश्न

पैदा ही नहीं हो सकते हैं ।

## जयन्ती के प्रश्न – भगवान के उत्तर :

आप लोग जिनवचन श्रवण करते हैं, तत्त्वश्रवण भी करते हैं; परंतु चिंतन–मनन नहीं करते । इसलिए तत्त्वविषयक प्रश्न आपके मन में पैदा नहीं होते हैं। इसलिए विशेष रूप से आपके प्रश्न तत्त्वविषयक नहीं होते हैं । कभी कभी लोग ऐसे प्रश्न पूछते हैं कि जो प्रश्न राग–द्वेष को बढ़ावा देनेवाले होते हैं। राग–द्वेष को उपशान्त करनेवाले प्रश्न पूछें, राग–द्वेष की वृद्धि करनेवाले नहीं।

आज मैं आपको जयन्ती श्राविका के प्रश्न और भगवान महावीर स्वामी के उत्तर के कुछ नमूने बताऊँगा !

श्रमण भगवान महावीर स्वामी कौशाम्बी में पधारे । 'चन्द्रावतरण' नाम के चैत्य में बिराजे । भगवान का आगमन सुनकर, जयन्ती श्राविका भगवान का दर्शन–वंदन करने आई । भगवान ने वहाँ धर्मदेशना दी । धर्मदेशना पूर्ण होने पर, जयन्ती श्राविका ने विनय से भगवान को कहा :

'भगवन्, प्रयत्न करने पर भी, आपके कुछ गहन वचनों का अर्थ मैं नहीं समझ पाई हूँ । आप अर्थबोध कराने में समर्थ हैं, इसलिए मेरे मन के प्रश्न पूछना चाहती हूँ ।'

**भगवंत ने कहा :** 'भद्रे, तुम प्रश्न पूछ सकती हो ।'

**जयन्ती ने पूछा :** 'भगवन्, जीव गुरूत्व को कैसे प्राप्त होता है ?'

**भगवंत ने कहा :** 'जयन्ती, प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेम, द्वेष, कलह, दोषारोपण, चाड़ी–चुगली, रति–अरति, परनिन्दा, कलहपूर्वक मिथ्या भाषण और मिथ्यात्व–ये १८ दोष हैं । इन दोषों के सेवन से जीव गुरूत्व को यानी भारीपने को प्राप्त होता है ।'

**जयन्ती ने पूछा :** 'भगवन्, आत्मा लघुपने को कैसे प्राप्त होती है ?'

**भगवंत ने कहा :** 'इन १८ दोषों के अटकाव से जीव लघुपना–हल्कापन प्राप्त करता है । प्राणातिपात आदि करने से जिस प्रकार जीव संसार को बढ़ाता है, लम्बा करता है, संसार में भटकता है, उसी प्रकार प्राणातिपात आदि की निवृत्ति

से वह हल्का होता है, संसार को घटाता है, छोटा करता है और उल्लंघन कर जाता है !

हलकापन, संसार का घटना, संसार का छोटा होना और संसार का उल्लंघन करना प्रशस्त है। क्योंकि वे मोक्ष के अंग हैं। भारीपन, संसार का बढ़ना, संसार का लंबा होना और संसार में भटकना, अप्रशस्त है। क्योंकि वे अ–मोक्ष के अंग हैं।'

**जयन्ती ने पूछा :** 'भगवन्, मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता जीव को स्वभाव से प्राप्त होती है या परिणाम से ?'

**भगवंत ने कहा :** 'मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता स्वभाव से है, परिणाम से नहीं।'

**जयन्ती ने पूछा :** 'भगवन्, क्या सब भवसिद्धिक जीव मोक्षगामी हैं ?'

**भगवंत ने कहा :** 'हाँ, जो भवसिद्धिक हैं वे सब मोक्षगामी है।'

**जयन्ती ने पूछा :** 'भगवन्, यदि सभी भवसिद्धिक जीवों की मुक्ति हो जायेगी तो क्या यह संसार भवसिद्धिक जीवों से रहित हो जायेगा ?'

**भगवंत ने कहा :** 'जयन्ती, तुम ऐसा क्यों कहती हो ? जैसे सर्वाकाश की श्रेणी आदि–अनन्त हो, दोनों ओर से परिमित और दूसरी श्रेणियों से परिवृत्त हो, उसमें से समय–समय पर एक–एक परमाणु पुद्‌गल निकालते–निकालते अनन्त उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी व्यतीत कर दें, फिर भी वह आकाश श्रेणी खाली नहीं हो सकती। इसी प्रकार हे जयन्ती, भवसिद्धिक जीवों के सिद्ध होने पर भी, भवसिद्धिक जीवों से यह संसार खाली नहीं हो सकता।'

**जयन्ती ने पूछा :** 'भगवन्, जीव सोता हुआ अच्छा है या जागता हुआ अच्छा है ?'

**भगवंत ने कहा :** 'हे जयन्ती ! जो जीव अधार्मिक है, अधर्म का अनुसरण करता है, जिसे अधर्म प्रिय है, जो अधर्म कहनेवाला है, जो अधर्म देखनेवाला है, जो अधर्म में आसक्त है, जो अधर्म का आचरण करनेवाला है, उसका सोना अच्छा है। ऐसा जीव सोता रहता है तो वह बहुत से प्राणों के, भूतों के, जीवों

के और सत्त्वों के शोक एवं परिताप का कारण नहीं बनता है। ऐसा जीव सोता रहता हो, तो उसकी अपनी और दूसरों की बहुत–सी अधार्मिक संयोजना नहीं होती है । इसलिए ऐसे जीवों का सोना अच्छा है ।

और, है जयन्ती ! जो जीव धार्मिक और धर्मानुसारी हैं, जिनका धर्मयुक्त आचरण है, ऐसे जीवों का जगना ही अच्छा है । ऐसा जीव जगता है तो बहुत–से प्राणियों के अदुःख और अपरिताप के लिए कार्य करता है । ऐसा जीव जगता है तो अपने और अन्य लोगों के लिए धार्मिक संयोजना का कारण बनता है। ऐसे जीवों का जगना अच्छा है । इसलिए मैं कहता हूँ कि कुछ जीवों का सोते रहना अच्छा है और कुछ जीवों का जगना ।'

**जयन्ती ने पूछा :** 'भगवन्, जीवों की दुर्बलता अच्छी है या सबलता ?'

**भगवंत ने कहा :** 'कुछ जीवों की सबलता अच्छी है, कुछ जीवों की दुर्बलता अच्छी है ।'

**जयन्ती ने पूछा :** 'भगवन्, यह आप कैसे कह सकते हैं कि कुछ जीवों की दुर्बलता अच्छी है और कुछ की सबलता ?'

**भगवंत ने कहा :** हे जयन्ती ! जो जीव अधार्मिक हैं, जो जीव अधर्म से जीविकोपार्जन करते हैं, उन जीवों के लिए दुर्बलता अच्छी है । ये दुर्बल हों तो दुःख का कारण नहीं बनते ।

जो जीव धार्मिक हैं, उनका सबल होना अच्छा है । इसलिए मैं कहता हूँ कि कुछ जीवों की दुर्बलता अच्छी है, कुछ की सबलता ।'

**जयन्ती ने पूछा :** 'भगवन्, जीवों का दक्ष और उद्यमी होना अच्छा है या आलसी होना अच्छा है ?'

**भगवंत ने कहा :** 'कुछ जीवों का उद्यमी होना अच्छा है, कुछ का आलसी होना अच्छा है ।'

**जयन्ती ने पूछा :** 'भगवन्, आप ऐसा कैसे कह सकते हैं ?'

**भगवंत ने कहा :** जो जीव अधार्मिक है, अधर्मानुसार विचरण करते हैं, उनका आलसी होना अच्छा है । जो जीव धर्माचरण करते हैं, उनका उद्यमी होना

अच्छा है। क्योंकि धर्मपरायण जीव सावधान होता है तो वह आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान, शैक्ष, गण, संघ और साधर्मिक की सेवा–सुश्रुषा करता है।'

**जयन्ती ने पूछा :** 'भगवन्, श्रोत्रेन्द्रिय के वशीभूत पीड़ित जीव कौन–सा कर्म बाँधता है ?'

**भगवंत ने कहा :** 'हे जयन्ती ! क्रोध के वश हुए जीव जैसे संसार में परिभ्रमण करते हैं, वैसे श्रोत्रेन्द्रिय के वशीभूत जीव भी संसार में परिभ्रमण करते हैं। इतना ही नहीं, पाँचों इन्द्रियों को वशीभूत जीव संसार में भटकता है।'

भगवान के उत्तरों से संतुष्ट होकर जयंती श्राविका ने प्रव्रज्या अंगीकार कर ली।

## ज्ञान का फल विरति :

जयन्ती श्राविका ने दीक्षा ले ली। सभी पापों का त्याग कर दिया। संपूर्ण धर्ममय जीवन स्वीकार कर लिया। कैसे ? उनके प्रश्नों के उत्तर मिलने मात्र से ? नहीं, वैसे तो हमारे पास भी कुछ लोग प्रश्न पूछने आते हैं, उत्तरों से संतुष्ट होकर चले जाते हैं, दीक्षा नहीं लेते ! भगवान के उत्तरों से जयन्ती के प्रश्नों का समाधान तो हुआ ही था, साथ में मन का समाधान हो गया था ! भगवान के प्रति 'अब तो मैं भगवान की हर आज्ञा का पालन करूँगी' वैसी अपूर्व श्रद्धा प्रगट हो गई थी। उसने सही ज्ञान पाया था, ज्ञान के फलस्वरूप विरतिधर्म की प्राप्ति हो गई थी।

जयन्ती के कितने सुंदर प्रश्न हैं।

भगवंत के कितने अच्छे उत्तर हैं !

**सभा में से :** ये प्रश्नोत्तर सुनने में बहुत आनन्द आया। कोई वाद–विवाद नहीं ! मात्र संवादिता है इस प्रश्नोत्तर में।

**महाराजश्री :** जयन्ती श्रमणोपासिका थी और सामने तीर्थंकर भगवंत थे, इसलिए वाद–विवाद का तो प्रश्न ही वहाँ नहीं उठता है। जयन्ती प्रबुद्ध श्राविका थी। प्रबुद्ध व्यक्ति वाद–विवाद में उलझता नहीं है।

दो प्रबुद्ध–समान कक्षा के ज्ञानी–पुरुष जब मिलते हैं, तब किस प्रकार प्रश्न–उत्तर होते हैं, ये सुनने हैं क्या ? जहाँ वाद–विवाद होने की पूरी संभावना थी, फिर भी वाद–विवाद की कोई कटुता पैदा नहीं हुई । हार–जीत की कोई कुत्सित भावना पैदा नहीं हुई ।

आज जब 'प्रश्न' का विषय ही चला है, तब एक अद्भुत और विरल घटना सुनाता हूँ ।

## गौतम स्वामी और आचार्य केशीकुमार :

श्रमण भगवान महावीर स्वामी के प्रथम गणधर श्री इन्द्रभूति गौतम अपने शिष्यवृंद के साथ श्रावस्ती पधारे और नगर के निकट कोष्ठक वन में ठहर गये ।

उसी नगर के बाहर तिंदुक–उद्यान में, भगवान पार्श्वनाथ की परंपरा के आचार्य केशीकुमार शिष्यपरिवार के साथ बिराजे हुए थे ।

गौतम स्वामी के शिष्य श्रावस्ती में भिक्षा के लिए जाते हैं और केशीकुमार के श्रमण भी श्रावस्ती में भिक्षा के लिए जाते हैं । लोगों में चर्चा होने लगी है, साधुओं के मन में भी शंकाएँ पैदा हुई हैं कि एक ही मोक्षमार्ग होने पर भी

– केशीकुमार के साधु विविध रंग के मूल्यवान वस्त्र पहनते हैं और गौतम स्वामी के साधु श्वेत और जीर्णप्रायः वस्त्र पहनते हैं, ऐसा भेद क्यों ?

– भगवान पार्श्वनाथ ने चार महाव्रतों का उपदेश दिया और भगवान महावीर स्वामी पाँच महाव्रतों का उपदेश देते हैं, ऐसा भेद क्यों ?

दूसरी भी आचारविषयक भिन्नता प्रत्यक्ष देखने पर, नगर में एवं श्रमणों में परस्पर चर्चा होने लगी ।

दोनों आचार्यों ने परस्पर मिलने का निर्णय किया ।

गौतम स्वामी शिष्यवृंद के साथ तिंदुकवन में पधारे, जहाँ आचार्य केशीकुमार बिराजते थे । गौतम स्वामी को आते हुए देखकर केशीकुमार ने भक्ति–बहुमान के साथ उनका स्वागत किया । गौतम स्वामी को बैठने के लिए प्रासुक–निर्दोष आसन प्रदान किया गया ।

वार्ता का प्रारंभ केशीकुमार ने किया :

'हे महाभाग ! मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ ।' बोलकर, गौतम स्वामी की अनुमति प्राप्त कर प्रश्न किया :

'वर्धमान स्वामी ने पाँच शिक्षारूप धर्म का कथन किया है और महामुनि पार्श्वनाथ ने चातुर्याम धर्म का प्रतिपादन किया है । हे मेधाविन्, एक मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होनेवालों के धर्म में विशेष भेद होने के कारण क्या है ? और, धर्म के दो भेद हो जाने पर आपको संशय क्यों नहीं होता ?'

**गौतम स्वामी ने कहा :** 'जीवादि तत्त्वों का विनिश्चय जिसमें किया जाता है, ऐसे धर्मतत्त्व को प्रज्ञा ही देख सकती है । प्रथम तीर्थंकर के मुनि ऋजु और जड़ एवं चरम तीर्थंकर के मुनि वक्र और जड़ हैं । किन्तु मध्यम २२ तीर्थंकरों के मुनि ऋजु और प्राज्ञ होते हैं । इस कारण से धर्म के दो भेद किये गये । प्रथम तीर्थंकर के मुनियों का आचार दुर्विशोध्य था, चरम तीर्थंकर के मुनियों का आचार दुरनुपालनीय होता है । पर मध्यवर्ती २२ तीर्थंकरों के मुनियों का आचार सुविशोध्य और सुपालनीय है ।'

**केशीकुमार ने कहा :** 'आपने इस विषय में मेरी शंका दूर की । अब दूसरा प्रश्न पूछता हूँ । वर्धमान स्वामी ने अचेलक–धर्म का उपदेश दिया और महामुनि पार्श्वनाथ ने सचेलक–धर्म का प्रतिपादन किया है । हे गौतम, एक ही मोक्षमार्ग में प्रवृत्त हम लोगों में इतना भेद क्यों ? इसमें हेतु क्या है ? हे मेधाविन्, लिंग–वेष में भेद हो जाने पर, क्या तुम्हारे मन में संशय उत्पन्न नहीं होता ?'

**गौतम स्वामी ने कहा :** लोक में प्रत्यय के लिए, वर्षादिकाल में संयम की रक्षा के लिए, संयम यात्रा के निर्वाह के लिए, ज्ञानादि ग्रहण करने के लिए, 'यह साधु है,' ऐसी पहचान के लिए लोगों में लिंग–वेष का प्रयोजन है । हे भगवन्, वस्तुतः दोनों ही तीर्थंकरों की प्रतिज्ञा यही है कि मोक्ष के सद्भुत साधन तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र ही हैं ।'

**केशीकुमार ने पूछा :** हे गौतम, आप अनेक सहस्र शत्रुओं के मध्य खड़े हो । वे शत्रु आपको जीतने आपके सन्मुख आ रहे हो । आपने किस प्रकार उन शत्रुओं को जीता ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** एक के जीतने पर पाँच जीते गये, पाँच के जीतने पर दस जीते गये और दस प्रकार के शत्रुओं को जीत कर मैंने सभी प्रकार के शत्रुओं को जीत लिए हैं ।

**केशीकुमार ने पूछा :** वे शत्रु कौन हैं ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** हे महामुनि, अवश आत्मा ही एक शत्रु है । कषाय और इन्द्रियाँ भी शत्रु हैं । उनको जीत कर मैं विचरता हूँ ।

**केशीकुमार ने पूछा :** लोक में बहुत जीव पाश से बँधे देखे जाते हैं, परंतु तुम कैसे पाश से मुक्त और लघु होकर विचरते दिखते हो ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** मुनीश्वर, उन पाशों का सर्वप्रकार से छेदन कर, उपाय से विनष्ट कर, विचरता हूँ ।

**केशीकुमार ने पूछा :** 'वे पाश कौन-से हैं ?'

**गौतम स्वामी ने कहा :** भगवन्, वे पाश हैं राग, द्वेष और मोह । पुत्रादि के संबंधरूप पाश बड़े भयंकर हैं । इन पाशों का छेदन कर मैं विचरता हूँ ।

**केशीकुमार ने पूछा :** हे गौतम, हृदय के भीतर उत्पन्न हुई लता, उसी स्थान पर ठहरती है । उस लता का फल विषैला होता है । उसका परिणाम बड़ा दारुण होता है । आपने उस लता को किस प्रकार उखाड़ फेंका ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** मैंने उस लता का सर्व प्रकार से उच्छेदन किया है । खंड-खंड कर, आमूल उखाड़ कर फेंक दिया है । अतः मैं न्यायपूर्वक विचरता हूँ और उस लता के विषैले फलों के भक्षण से मुक्त हो गया हूँ ।

**केशीकुमार ने पूछा :** वह लता कौन-सी है ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** हे महामुनि, वह तृष्णारूप लता है । बड़ी भयानक है और भयानक फल देनेवाली है । उस लता का उच्छेदन कर मैं विचरता हूँ ।

**केशीकुमार ने पूछा :** शरीर में घोर और प्रचंड अग्नि प्रज्वलित हो रही है । जो अग्नि शरीर को भस्म करनेवाली होती है, उस अग्नि को आपने कैसे बुझाया है ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** महामेघ का उत्तम और पवित्र जल ग्रहण कर, मैं उस अग्नि पर सींचता रहता हूँ। अतः वह अग्नि मुझे नहीं जलाती है।

**केशीकुमार ने पूछा :** हे गौतम, वह अग्नि कौन–सी है ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** मुनीश्वर, वह अग्नि कषाय की है। श्रुत, शील और तप–जल है। उस जल से निरंतर मैं कषायाग्नि को सींचता रहता हूँ, अतः शान्त बनी हुई वह अग्नि मुझे नहीं जलाती है !

**केशीकुमार ने पूछा :** हे गौतम, एक दुष्ट और साहसिक अश्व चारों ओर भाग रहा है। आप उस अश्व पर आरूढ़ हैं, फिर भी वह अश्व आपको उन्मार्ग पर नहीं ले जा सकता है, यह कैसे ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** भगवन्, भागते हुए दुष्ट अश्व को पकड़ कर मैं श्रुतज्ञान की रस्सी से बाँधकर रखता हूँ। इसलिए मेरा अश्व उन्मार्ग पर नहीं जाता है, परंतु सन्मार्ग पर ही चलता रहता है।

**केशीकुमार ने पूछा :** हे गौतम, वह अश्व कौन–सा है ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** वह दुष्ट और रौद्र अश्व है मन। मन चारों ओर भागता है। धर्मशिक्षा के द्वारा मैं उसका निग्रह करता हूँ।

**केशीकुमार ने पूछा :** हे गौतम, संसार में ऐसे अनेक उन्मार्ग हैं, जिन्न पर चलने से सन्मार्ग छूट जाता है। आप सन्मार्ग पर चलते हुए, मार्गभ्रष्ट क्यों नहीं होते ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** हे मुनीश्वर, सन्मार्ग से जो गुजरते हैं और उन्मार्ग पर जो चल रहे हैं, उन सबको मैं जानता हूँ। इसलिए मैं सन्मार्ग से भ्रष्ट नहीं होता हूँ।

**केशीकुमार ने पूछा :** हे गौतम, वह सन्मार्ग कौन–सा है, उन्मार्ग कौन–सा है ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** रागी–द्वेषी और अ–सर्वज्ञ का बताया हुआ मार्ग उन्मार्ग है, सर्वज्ञ–वीतराग कथित मार्ग सन्मार्ग है। यह सन्मार्ग निश्चय रूप से उत्तम है।

**केशीकुमार ने पूछा :** हे मुनि, प्रचंड जलप्रवाह में बहते हुए प्राणियों के लिए शरणभूत और प्रतिष्ठारूप द्वीप आप किसको कहते हैं ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** एक महाद्वीप है, विशाल है, व्यापक है, वहाँ पर उस जलप्रवाह की गति नहीं है ।

**केशीकुमार ने पूछा :** हे गौतम, वह महाद्वीप कौन-सा है ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** वह धर्मद्वीप है । जरा और मृत्यु के जलप्रवाह में डूबते हुए जीवों के लिए शरणभूत है । उस द्वीप पर प्रतिष्ठित होना उत्तम है ।

**केशीकुमार ने पूछा :** हे गौतम, उस महान जलप्रवाह (समुद्र) में एक नौका है । विपरीत रूप से चारों ओर भाग रही है, उस नौका में आप आरूढ़ हो, फिर आप कैसे किनारा पाओगे ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** जो नौका छिद्रोंवाली होती है, वह पार नहीं ले जा सकती । परंतु जो नौका छिद्ररहित है, वह पार जाने में समर्थ होती है ।

**केशीकुमार ने पूछा :** वह नौका कैसी है ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** तीर्थंकर देव ने इस शरीर को ही नौका कहा है । जीव नाविक है । संसार समुद्र है । इस सागर को महर्षि तैर जाते हैं ।

**केशीकुमार ने पूछा :** हे गौतम, बहुत-से जीव घोर अंधकार में रहे हुए हैं । इस जीवलोक में कौन उद्योत करता है ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** जीवलोक में प्रकाश करनेवाला उदित सूर्य होता है ।

**केशीकुमार ने पूछा :** वह सूर्य कौन-सा है ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** सर्वज्ञ जिनेश्वर ही सूर्यसमान हैं । वे ही सर्वलोक में उद्योतकर हैं ।

**केशीकुमार ने पूछा :** शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीड़ित जीवों के लिए क्षेमरूप, शिवरूप और अव्याबाध स्थान आप कौन-सा मानते हो ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** लोक के अग्रभाग पर एक ध्रुव स्थान है । वहाँ

पर जन्म, जरा, मृत्यु नहीं है। व्याधि और वेदनाएँ नहीं हैं। परंतु उस पर आरोहण करना नितांत कठिन है।

**केशीकुमार ने पूछा :** वह स्थान कौन–सा है ?

**गौतम स्वामी ने कहा :** वह स्थान निर्वाण, सिद्धि, लोकाग्र, क्षेम, शिव अव्याबाध–इन नामों से प्रसिद्ध है। हे भगवन्, वह स्थान शाश्वत् है, लोक के अग्र भाग पर स्थित है, परंतु उस पर चढ़ना, वहाँ तक पहुँचना बड़ा ही कठिन है।

**केशीकुमार ने कहा :** 'हे गौतम, आप की प्रज्ञा साधु है ! आपने मेरे संशयों को नष्ट कर दिये ! हे संशयातीत ! हे सर्वसूत्रपारगामी ! आपको मेरा नमस्कार हो !'

केशीकुमार आचार्य, अपने ५०० शिष्यों के साथ भगवान महावीर स्वामी के धर्मशासन में सम्मिलित हो गये।

इन दो प्रज्ञावंत महामुनि का संवाद सुनकर, पूरी परिषद् सन्मार्ग में प्रवृत्त हुई। सभी लोग, इन दो महापुरुषों की प्रशंसा गुणानुवाद करने लगे।

**श्री उत्तराध्ययन–सूत्र** में (अध्ययन २३) यह संवाद पढ़ने को मिलता है। कितना बढ़िया है यह संवाद ? और, केशी आचार्य की कितनी सरलता ? उन्होंने भगवान महावीर का अचेलक आचार और पाँच महाव्रतमय साधुधर्म स्वीकार कर लिया ! अपना सचेलक आचार और चार महाव्रतमय साधुधर्म का आग्रह छोड़ दिया !

## केशीकुमार आचार्य का उच्चतम व्यक्तित्व :

संवाद में से शुभ परिणाम पैदा होता है। केशीकुमार आचार्य ने अपनी परंपरा को छोड़ दिया और वे भगवान महावीर के धर्मशासन में मिल गये। अपनी अलग परंपरा को मिटा दिया। यह सामान्य काम नहीं था, साधारण काम नहीं था। वर्तमानकालीन परिस्थितियों को देखते हुए और दो हजार वर्ष का इतिहास देखते हुए, इस घटना का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है।

शास्त्र और आगम का सहारा लेकर, बुद्धिमान लोग अपनी अलग-अलग परंपराओं को स्थापित करते आये हैं । अलग परंपरा स्थापित कर उसके नेता बनकर, स्थापक बनकर, इतिहास में अमर बन जाने के मोह में फसनेवालों की संख्या भी अच्छी है ! ये लोग (परंपरा के स्थापक) उत्तराध्ययन-सूत्र को नहीं पढ़े थे, ऐसा मत समझना । पढ़े हुए थे ! परंतु सत्य को पढ़ना सरल है, जीना बड़ा मुश्किल है ।

जरा सोचें : यदि केशी आचार्य अपनी पार्श्वनाथ-परंपरा को बनाये रखते, तो कौन रोकनेवाला था उनको ? उस काल में पार्श्वनाथ-परंपरा के वे प्रमुख आचार्य थे । क्यों वे महावीर शासन में सम्मिलित हो गये ? पार्श्वनाथ-परंपरा गलत थी क्या ? नहीं, वह भी तीर्थंकर का ही धर्मशासन था । सुचारू परंपरा थी ।

'लोगों का बुद्धिभेद न हो मोक्षमार्ग में,' यही प्रमुख विचारधारा थी । लोगों के मन में 'कौन सही, कौन गलत ? एक चार महाव्रतों का उपदेश देता है, एक पाँच महाव्रतों का ! एक लाल-पीले मूल्यवान वस्त्र पहनता है, एक श्वेत और जीर्ण वस्त्र पहनता है - ऐसा क्यों ?'

ऐसा सोचने पर लोग मोक्षमार्ग से विमुख हो जाते हैं । तीर्थंकरों ने कहा है कि लोगों को धर्मविमुख करने का पाप बड़ा पाप है । संसार में लाखों जन्म भटकानेवाला पाप है ।

इसलिए मोक्षमार्ग का एक ही प्रवाह बहना चाहिए । परंतु यह तो केवल अपनी भावना है । आज तो धर्मशासन इतना विभक्त हो गया है कि मोक्षमार्ग दिखता ही नहीं है ।

अपनी अलग-अलग परंपराएँ बनाये रखना और उसी में 'शासनरक्षा', 'सत्यरक्षा' की भ्रमणा बनाये रखना, आज की दुःखद परिस्थिति है । वाद-विवाद और आक्षेप-प्रति आक्षेप में 'शासनप्रभावना' की कल्पना करनेवाले बुद्धिमानों की संख्या बढ़ती जा रही है । केशी आचार्य और गौतम स्वामी का संवाद शास्त्र में बंद पड़ा है ।

माननना, न माननना आपकी इच्छा, मैंने तो वह संवाद शास्त्र में से लेकर आज खुला कर ही दिया है !

'गुरु समीपे प्रश्नः' इस सूत्र का विवेचन पूर्ण करता हूँ ।

आज बस, इतना ही ।

* * *

# प्रवचन : ३६

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्य श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में श्रावक जीवन की दिनचर्या बतायी है ।

– उस दिनचर्या में, विद्वान सद्गुरु के मुख से जिनवचनों का श्रवण करना अति आवश्यक बताया गया है ।

– जिनवचनों का श्रवण करते समय, जो तत्त्व आपको अति गूढ़, गहन और गंभीर लगे, जिसका अर्थ आप नहीं समझ पाते हों, तो आप विनय से गुरुदेव को प्रश्न करें और अर्थ–भावार्थ समझने का प्रयत्न करें ।

– अर्थनिर्णय हो जाने के बाद, आप उस अर्थनिर्णय का 'अवधारण' कर लें । बहुश्रुत गुरु मिलने ही मुश्किल हैं ! यदि मिल गये और आपके प्रश्न का समाधान हो गया, तो उस समाधान को 'स्मृति' में संग्रहित कर लेना । उस समाधान को भूलना नहीं है ! जीवन पर्यंत भूलना नहीं है ।

## भूलने के कारण – निवारण के उपाय :

जिस विषय में मनुष्य की अभिरुचि होती है, गरज होती है, उस विषय को मनुष्य भूलता नहीं है । यदि तत्त्वज्ञान में आपकी अभिरुचि है, तो आप तत्त्वनिर्णय को भूल नहीं सकते । परंतु तत्त्वनिर्णय सुनते समय यदि आपका मन चंचल होगा, चित्त सावधान नहीं होगा, तो आप भूल जाओगे उस तत्त्वनिर्णय को !

गहन और गंभीर विषय को सुनते समय आपका मन विकल्परहित होना चाहिए । मन के उपर विकल्पों का भार नहीं होना चाहिए । चिंताग्रस्त नहीं होना चाहिए चित्त । चिन्ताग्रस्त चित्त से जो भी बात सुनोगे, आप भूल जाओगे । चिंताओं से और फालतू विकल्पों से स्मृतिशक्ति का ह्रास होता है । यानी स्मृतिशक्ति क्रमशः घटती जाती है । सुनने के बाद उससे पूछा जाय कि 'क्या सुना आपने ? किस तत्त्व की चर्चा सुनी आपने ?' नहीं बता सकता ! क्योंकि उसने विकल्परहित मन से नहीं सुना है ! सुनते समय दूसरे अनेक विचारों में उसका मन उलझा हुआ होता है ।

तत्त्वज्ञान ग्रहण करते समय :

- स्थिर आसन से बैठें,
- अपनी द्रष्टि गुरुदेव के प्रति स्थापित करें,
- मन को तत्त्वज्ञान में से आनन्द लेने दो !

## समाधान लिख लो :

जो बात आपके मन में स्पष्ट हो गई, उस बात को आप अपनी नोटबुक में लिख लिया करो । उतना ही लिखो कि आप उसको सप्ताह में एक–दो बार पढ़ सको । कुछ लोग सुनते नहीं हैं, लिखते रहते हैं । बहुत लिखते हैं । वे स्वयं पढ़ नहीं पाते हैं । मेरे एक परिचित भाई ने मुझे कहा था कि उन्होंने अनेक मुनिराजों के प्रवचनों की पचास से ज्यादा नोट्स लिखी हैं ! पचास नोटबुक्स के पेज कितने ? वो भाई लिखते हैं, पुनः पढ़ते नहीं हैं । इसलिए उनको वह तत्त्वज्ञान याद नहीं है ।

पुनःपुनः तत्त्वज्ञान का अभ्यास करने से तत्त्व की वे बातें स्मृति में द्रढ़ हो जाती हैं । भूल नहीं सकते उन बातों को । पुनःपुनः अभ्यास करने के लिए 'शोर्ट नोट्स' (Short notes) लिखनी चाहिए । लंबा–चौड़ा नहीं लिखना चाहिए । जिस विषय में आपको कोई शंका रही न हो, उस विषय को ही लिखना चाहिए ।

## बहुश्रुत गुरु :

तत्त्वज्ञान के गंभीर विषयों का निर्णय 'बहुश्रुत' गुरु से करना चाहिए । जिनशासन में बहुश्रुत गुरु का विशिष्ट स्थान है । कभी–कभी तो, जो बहुश्रुत कहे उसी को शास्त्रवचन मानने का होता है । श्री उत्तराध्ययन–सूत्र में बहुश्रुत ज्ञानी की पूजा करने को कहा है भगवान महावीर स्वामी ने ।

बहुश्रुत महापुरुष, सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र के धारक तो होते ही हैं, विशेष रूप से वे ज्ञान–प्रकाश के पुंज होते हैं । निश्चयनय और व्यवहारनय से वस्तु का एवं व्यक्ति का अवलोकन करने की क्षमता रखते हैं । आगम ग्रन्थों की आज्ञाओं की, देश–काल के संदर्भ में व्याख्या करते हैं । पुरुष और अवस्था के परिप्रेक्ष्य में जिनाज्ञाओं का निरूपण करते हैं । अज्ञान की अँधियारी गलियों

में भटकते हुए जिज्ञासु जनों को वे सम्यग् ज्ञान के प्रकाशपथ पर ले आते हैं। उनके संपर्क में आनेवाला मनुष्य, ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में निःशंक बन जाता है।

ऐसे ज्ञानी पुरुषों की खोज करनी पड़ेगी। मुश्किल हैं ऐसे ज्ञानी पुरुष। फिर भी जिस काल में, जिस समय में जो श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष मिल जाय, उनसे ज्ञान को, तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर, उसका स्मृति में अवधारण कर लेना चाहिए। आपकी स्मृति में जितना तत्त्वज्ञान होगा, उतना ही आप तत्त्वचिंतन कर पाओगे।

ज्ञानी पुरुषों के संपर्क में रहने से और उनसे ज्ञान प्राप्त करते समय एकाग्रता रखने से तत्त्वज्ञान का सम्यक् अवतरण हो सकता है। ग्रंथकार आचार्यदेव ने कहा है : '**निर्णयावधारणम्**' इस सूत्र का अर्थ इतना ही है।

## उपाश्रय में कर्तव्यपालन :

आप प्रतिदिन उपाश्रय जाते हैं, साधुपुरुषों को वंदन करते हैं, उनसे सम्यग् ज्ञान पाते हैं, जिनवचनों का श्रवण करते हैं – अच्छा है, यह सब करना ही चाहिए। परंतु इससे भी कुछ ज्यादा कर्तव्यों का पालन करने के लिए ग्रंथकार ने कहा है : **ग्लानादिकार्याभियोगः**।

उपाश्रय में जाकर आपको देखना है कि :

– कौन बीमार है ?

– कौन बालमुनि हैं ?

– कौन वृद्ध मुनि हैं ?

– कौन–कौन मुनि अध्ययन करने में निमग्न हैं ?

– आज कौन मुनि अभ्यागत हैं ? कौन मुनि बाहर से पधारे हुए हैं ?

यह सब ध्यान रखने का है। और, उन सभी के प्रति आपके जो कर्तव्य हों, उन कर्तव्यों के पालन में प्रमाद नहीं करना है। उल्लास से कर्तव्यपालन करने का है।

## ग्लान मुनि की सेवा :

यदि कोई मुनि ग्लान है, बीमार है, रूग्ण है और उनको औषध की आवश्यकता

है, तो आप औषध लाकर दें । यदि वैद्य–डॉक्टर की आवश्यकता है, आप उनको बुलाकर लायें । रात्रि के समय बीमार का खयाल करनेवाला कोई न हो, तो आप मुनि के पास रहें और उनकी सेवा करते रहें ।

**सभा में से :** हम लोग तो हमारे घरों में अपने माता–पिता की और बच्चों की भी सेवा नहीं करते हैं, भले वे बीमार हों ! सेवा करने का भाव ही नहीं जगता है ।

**महाराजश्री :** दुर्भाग्य समझना चाहिए आपको । बीमार की सेवा करने की भावना नहीं जगती है, तो बड़ा दुर्भाग्य है आपका । बीमार माता–पिता की सेवा नहीं करते हो, तो फिर मानवता कहाँ रही ? मानवता नहीं है, तो धार्मिकता कैसे आयेगी ? जीवन में मानवता नहीं है, तो धार्मिकता हो ही नहीं सकती । मानवतारहित मनुष्य धार्मिक क्रियाएँ करता हो, परंतु धार्मिकता का भाव उसके हृदय में पैदा ही नहीं हो सकता है ।

आज जो बात मैं करता हूँ, वह ऐसे श्रावकों के लिए हैं कि जो मानवता से भरेपूरे हैं । जिनको वास्तव में श्रावक जीवन जीना है । 'श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने कैसा गृहस्थधर्म बताया है,' यह समझने की जिनकी जिज्ञासा है; ऐसे विवेकी श्रावकों का, साधुपुरुषों के प्रति पहला कर्तव्य यह है – बीमार–रूग्ण साधुओं की उचित सेवा करें । वैसे, श्राविकाएँ साध्वीजी की सेवा करती रहें ।

## बाल मुनिवरों के प्रति :

जिस प्रकार ग्लान मुनिवरों का खयाल करना है आपको, वैसे बाल मुनिवरों का भी खयाल करने का है । पूर्व जन्म के संस्कारों से छोटी उम्र में भी बच्चे दीक्षा लेते हैं । धार्मिक परिवारों में बचपन से ही बच्चों को त्याग और वैराग्य के संस्कार मिलते हैं । साधुपुरुषों के संपर्क में आते हैं वे बच्चे । साधुपुरुषों का उपदेश जिस बच्चे के हृदय को स्पर्श करता है, वह साधु बनने तत्पर बन जाता है । उस बच्चे के माता–पिता दीक्षा लेने की अनुमति प्रदान करते हैं । गुरु उस बच्चे की चारित्रपालन की क्षमता देखते हैं और वह बच्चा साधु बन जाता है ।

बच्चे को दीक्षा देनेवाले गुरु में वह क्षमता होनी चाहिए कि वे बच्चे के भविष्य को, ज्ञान के प्रकाश में देखें। 'यह बच्चा आजीवन चारित्रधर्म का पालन कर सकेगा या नहीं।' ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से अथवा योगशक्ति से अथवा दैवी सहायता से जाना जा सकता है भविष्य। आजीवन साधुधर्म का पालन करना सरल नहीं है, बहुत ही मुश्किल काम है। सभी बच्चों में साधुधर्म के पालन की शक्ति नहीं होती है। हजार में एक बच्चा मुश्किल से वैसा मिलता है कि जो आजीवन साधुधर्म की पालना कर सकता है।

वैसे बाल मुनियों की मानसिक भूमिका देखते हुए, साधुओं को और श्रावकों को उनका विशेष खयाल करना चाहिए।

– उनको जो प्रिय हो वैसी भिक्षा देनी चाहिए।

– उनको जो प्रिय हो वैसे वस्त्र देने चाहिए।

– उनको जो प्रिय हो, प्रशस्त हो, वैसी किताबें देनी चाहिए।

– उनको जो प्रिय हो वैसी पैन–पेन्सिल वगैरह देना चाहिए।

उनको आप पूछें : 'महाराज साब, आपको क्या चाहिए ?' प्रेम से पूछें। उनको जो चाहिए, वे उनके गुरुदेव को कहेंगे, गुरुदेव आपको कहेंगे : 'महानुभाव, बाल मुनि को यह वस्तु चाहिए....।'

बाल मुनि की प्रिय–अप्रिय की कल्पनाओं का संमार्जन करने का कर्तव्य उनके गुरुदेव का होता है। कभी जो प्रिय नहीं लगना चाहिए वह प्रिय लगता है और जो प्रिय लगना चाहिए वह अप्रिय लगता है ! इसलिए बाल मुनियों के गुरु खास कर मनोविज्ञान के ज्ञाता होने चाहिए। मनोवैज्ञानिक ढ़ंगसे ही बाल मुनियों को शिक्षा देनी पड़ती है। अच्छे को अच्छा मनवाना, बुरे को बुरा मनवाना आसान काम नहीं है ! आप लोगों को मनवाना मुश्किल है, तो फिर बच्चों को मनवाना सरल होता है क्या ?

एक महत्त्व की बात कहता हूँ, ध्यान से सुनना।

जो व्रत–नियम युवक और प्रौढ़ साधुओं के लिए होते हैं, वे सभी नियम बाल मुनि और वृद्ध मुनि के लिए नहीं होते हैं। उनके लिए विशेष अपवाद

होते हैं । गुरुजन वे अपवाद जानते होते हैं । इसलिए, कोई बाल मुनि, कोई नियम का पालन नहीं करता हो, तो आप निन्दा नहीं करें अथवा उसके प्रति दुर्भाव नहीं करें । महाव्रत सभी के समान होते हुए भी, तीर्थंकर भगवंतों ने वय-अवस्था की द्रष्टि से अपवाद भी बताये हैं ।

आप लोगों का यह कर्तव्य है कि आप बाल मुनियों के उल्लास को बनाये रखें । उनके मन को प्रफुल्लित रखें । हाँ, उनके साथ वैसी बातें कभी नहीं करें कि जिससे उनका मन संसार-सुखों के प्रति आकृष्ट हो ! आप उनके साथ ज्ञान-विज्ञान की बातें करें । ज्ञानवर्धक किस्से-कहानी कहें । चारित्रदढ़ता बनानेवाली कहानियाँ कहें । वैसी घटनाएँ सुनाया करें ।

वास्तव में यह खयाल तो गुरु को करने का है । आपको सहायक बनने का है । गुरु को चाहिए कि बाल मुनि की जिज्ञासाओं का प्रेम से समाधान करते रहें । बालसहज जिज्ञासाएँ तो पैदा होंगी ही ! यदि उन जिज्ञासाओं का समुचित समाधान किया जाता है, तो बाल मुनि का बौद्धिक विकास होता है और गुरु के प्रति प्रेम बढ़ता है ।

बाल मुनि पर ज्यादा दबाव नहीं डालना चाहिए । उनके मन की बातों को शान्ति से, प्रेम से सुननी चाहिए और उनके जीवन-निर्माण की योजना बनानी चाहिए । किस-किस धर्माराधना में उनको रुचि-अभिरुचि है, वह जानकर, उस आराधना में उनकी प्रगति करानी चाहिए । विशेष करके ज्ञानोपासना में उनकी अभिरुचि बढ़ानी चाहिए ।

बाल मुनियों का आपको भी ध्यान रखना है !

## वृद्ध साधुओं के प्रति कर्तव्य :

जैसे ग्लान और बाल मुनियों की सेवा-भक्ति करने की है, वैसे जो वयोवृद्ध मुनि हों, उनका भी खयाल करने का होता है । वृद्धावस्था मनुष्य को पराधीन बना देती है । शरीर अशक्त बन जाता है और इन्द्रियाँ कार्यक्षम नहीं रहती हैं, तब दूसरों की सहायता अपेक्षित बन जाती है ।

- कान सुनते नहीं, अथवा कम सुनते हैं ।

– आँखें देखती नहीं हैं, अथवा कम देखती हैं ।

– खड़े होने से तकलीफ होती है, सरलता से बैठा नहीं जाता है ।

– चलने में पैर लड़खड़ाते हैं ।

– स्वयं के कार्य स्वयं कर नहीं सकते हैं ।

ऐसी स्थिति में वृद्ध साधुओं के तन–मन–संयम को सँभालना है !

सभा में से : यह कर्तव्य तो साधुपुरुषों का होता है न ?

महाराजश्री : हाँ, इस कर्तव्य का पालन साधुपुरुषों का हैं, परंतु गृहस्थ श्रावकों का भी है । उनको सहायक बनने का है । कभी वृद्ध साधु के पास सहायक युवक साधु नहीं है, दोनों साधु वृद्ध हैं, उनका शरीर कार्यक्षम नहीं है, स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं है, ऐसी स्थिति में आपको उनकी सेवा करनी चाहिए । उनके पास बैठकर उनकी सुखशाता पूछनी चाहिए । उनको औषध, वस्त्र इत्यादि जो चाहिए, वह लाकर देना चाहिए । उनके साथ बहुत ही सहानुभूति से व्यवहार करना चाहिए ।

सभा में से : कुछ वृद्ध साधु बहुत ही गुस्सा करते हैं ।

महाराजश्री : वह गुस्सा अल्पकालीन होता है, क्षणिक होता है । क्षणिक क्रोध क्षम्य होना चाहिए । क्रोध के सामने अरुचि या अभाव नहीं होना चाहिए । आप यदि उनकी सेवा करेंगे, तो आपके साथ वे गुस्सा नहीं करेंगे ।

साधुओं की सेवा का कर्तव्य विशेष रूप से साधुओं का ही होता है । फिर भी आप लोगों को वृद्ध साधुओं का खयाल करना है । उनको सहायता करनी चाहिए । ऐसा करने से उन साधुओं के मन का समाधान होता है ।

## ज्ञानोद्यत साधुओं की सेवा :

जिस प्रकार वृद्ध, बाल और बिमार साधुओं की यथोचित सेवा करने का लक्ष्य रखने का है, वैसे ही अध्ययनशील साधुओं का भी ध्यान रखने का है । यदि आपके घर के निकट उपाश्रय है और उपाश्रय में साधुपुरुष रहे हुए हैं । खास अध्ययन करने के लिए ही रहे हुए हैं । आप उनका ध्यान रखें । उनको क्या चाहिए–पूछते रहें । उनको पुस्तक वगैरह जो चाहिए, देना चाहिए ।

आज के युग में पुराने काल जैसी तकलीफें तो नहीं होती हैं। आज के युग में 'ज्ञानखाता' प्रायः सभी जैनसंघों के पास होता है। ज्ञानखाते की द्रव्यराशि का उपयोग साधुपुरुषों के अध्ययन–कार्य में हो सकता है। पढ़ानेवाले पंडित को पारिश्रमिक दिया जा सकता है, पुस्तकें भी खरीदी जा सकती है। पुस्तकें छपवाई भी जा सकती हैं।

परंतु ज्ञानखाता वगैरह खातों का वहीवट करनेवाले ट्रस्टी लोग जाग्रत होने चाहिए। अध्ययन करनेवाले, शास्त्रों का लेखन, संशोधन और प्रकाशन करनेवालों के साथ उनका सहयोग होना चाहिए।

विशिष्ट कोटि का अध्ययन करनेवालों की गोचरी वगैरह का भी खयाल करना आवश्यक होता है। कुछ गाँव–शहरों में सुबह और शाम की गोचरी दुर्लभ होती जा रही है। होते हैं कुछ भक्तिभाववाले परिवार। परंतु यह कर्तव्य आप सभी का है। जिन–जिन शहरों में साधु–साध्वी के अध्ययन के लिए विशिष्ट पाठशालाएँ हैं, अध्ययन की व्यवस्था है, वहाँ श्रावक/श्राविकाओं की विशेष रूप से जाग्रति होनी चाहिए।

## नये आगन्तुक साधुओं के प्रति :

जो साधु आपके आसपास रहे हुए हैं, उन सभी के प्रति जैसे जाग्रत रहते हुए कर्तव्यों का पालन करने का है, वैसे नये साधु–साध्वी गाँव में आयें, उनके प्रति भी आपको भक्तिभाव से ध्यान देना है।

मान लो कि गाँव में साधुसमूह या साध्वीवृन्द ने प्रवेश किया, नये नये आये हैं, गाँव के मार्गों से अपरिचित हैं, आप उनको देखते हैं, तो आप सर्वप्रथम क्या करेंगे ? आप विनय से सर झुका कर 'मत्थएण वंदामि' बोलेंगे और बाद में उनको उपाश्रय बताने, उनके साथ चलेंगे !

**सभा में से :** हम लोग ऐसा नहीं करते हैं, हाथ भी कभी नहीं जोड़ते हैं।

**महाराजश्री :** इसलिए तो समझा रहा हूँ ये सारी बातें ! ये बातें आप लोग नहीं समझते हैं इसलिए साधु–साध्वी को निष्कारण कष्ट होता है।

गुजरात के एक गाँव में हम पहली बार जा रहे थे। सुबह का समय था।

हमने गाँव में प्रवेश किया। उस गाँव में हमें कोई श्रावक पहचानता नहीं था! क्योंकि उस समय मेरा कोई पद नहीं था और प्रसिद्धि भी नहीं थी। हम चार मुनि थे। उपाश्रय कहाँ आया है, हम जानते नहीं थे। हमने एक भाई को पूछा : 'जैन उपाश्रय किधर है ?' उसने हमारे सामने देखा और हाथ लंबा कर दिशा बता दी और वह आगे बढ़ गया।

हम उस दिशा में आगे बढ़े। दो रास्ते आये। वहाँ एक श्रावक मिला, दो हाथ जोड़े। हमने पूछा : 'उपाश्रय जाने का रास्ता कौन-सा है ?' उसने भी एक दिशा में हाथ लंबा करके कहा : 'महाराज, इस रास्ते पर सीधे चले जाना, आगे मस्जिद आयेगी वहाँ से दायीं ओर मुड़ जाना, आगे पानी की टंकी आयेगी, पासवाली गली में मुड़ जाना, आगे जा कर कबूतरखाने के पास किसी को पूछना, उपाश्रय बता देगा !'

इतना भाषण देकर वह भी अपने रास्ते चला गया। हम आगे बढ़े। पानी की टंकी तक तो पहुँच गये, परंतु वहाँ से दूसरी गली में मुड़ गये, चलते रहे, पर उपाश्रय नहीं मिला। एक भाई को पूछा : 'जैन उपाश्रय कहाँ है ?' उसने कहा : आप गलत जगह पर आ गये हैं, आप इस पूर्व दिशा में जाइये, आगे एक हरा मकान आयेगा, वहाँ से दक्षिण दिशा में जाना, उधर आपको जैन देरासर दिखेगा !'

हम गये। देरासर मिला। दर्शन-चैत्यवंदन किया। पूजारी को पूछा : 'उपाश्रय कहाँ है ?' उसने कहा : 'उपाश्रय तो गाँव में जो देरासर है उसके पास है ! यहाँ से एक किलोमीटर।' पूजारी की बात सुनकर हम एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। १६ किलोमीटर का विहार करके आये थे, गाँव में भी दो-तीन किमी. चले होंगे। हमने पूजारी को कहा :

'भय्या, तुम चलकर हमें बताओगे उपाश्रय ?'

पूजारी हमारे साथ आया, उसने उपाश्रय बताया और हम स्थान पर पहुँचे। सर्वप्रथम जो श्रावक मिला था, वह यदि हमारे साथ चलता, तो हमें भटकना नहीं पड़ता ! इसलिए कोई भी साधु-साध्वी आपको रास्ता पूछें अथवा मंदिर-उपाश्रय के विषय में पूछें, तो आप साथ चलकर बतायें। नजदीक हो, रास्ता

सीधा हो, तो समुचित मार्गदर्शन दिया करें ।

वैसे, अभ्यागत साधुओं के प्रति हमारे भी (साधुओं के) कर्तव्य होते हैं । हमारा साधु-साधुओं का व्यवहार भी आप लोगों को जानना चाहिए । बहुत अच्छा व्यवहार, शास्त्रों में बताया गया है । एक उदाहरण बताता हूँ ।

हम एक उपाश्रय में ठहरे हुए हैं । गोचरी के समय गोचरी ले आये हैं, गोचरी करने के लिए बैठ भी गये हैं, हाथ में पहला कवल उठाया है, मुँह में डालने की देरी है, वहाँ अभ्यागत-प्राघूर्णक साधुओं ने उपाश्रय में प्रवेश किया और उनकी आवाज 'नीसिहि नीसिहि नमो खमासमणाणं' सुनायी दी ! हमें भोजन का कवल मुँह में नहीं डालना चाहिए, वापस पात्र में कवल डालकर, खड़े हो जाना चाहिए और आगन्तुक साधुओं का 'मत्थएण वंदामि' बोलकर स्वागत करना चाहिए । आगन्तुक साधुओं के साथ यदि हमारी समान समाचारी (समान धर्मक्रियाएँ, समान धार्मिक मान्यताएँ) हो, तो उनको पूछकर, उन साधुओं के लिए हम भिक्षा ले आयेंगे । आगन्तुक साधु थोड़ा-सा विश्राम करेंगे । भिक्षा आने के बाद हम सब साथ बैठकर भोजन करेंगे ।

यदि आगन्तुक साधु स्वयं भिक्षा लाने के लिए आग्रह करें, तो हमारा एक साधु उनके साथ जाकर गृहस्थों के (जैन के) घर बतायेंगे । उनको विहार करके जाना है, रास्ता नहीं जानते हैं वे, तो हमारा साधु उनको रास्ता बताने जायेगा। यदि कोई महानुभाव गृहस्थ रास्ता बतानेवाला मिल जाता है, तो हम नहीं जाते रास्ता बताने के लिए ।

हमारा साधुओं का आपस का व्यवहार, यदि शास्त्रीय ढंग से सुसंस्कृत हो जाय, तो श्रमणसंघ का आपस का मैत्रीभाव बढ़ जाय । शास्त्राज्ञा के पालन में उत्साही साधु-समुदायों को चाहिए कि वे साधुओं के आपस के व्यवहार को शास्त्रानुसारी बनायें । एक-दूसरे के साथ औचित्यपूर्ण व्यवहार में छोटे-बड़े का अथवा कम-ज्यादा ज्ञान का भेद नहीं देखा जाता है ।

– आगन्तुक साधु दीक्षापर्याय में छोटे हैं, यजमान साधु दीक्षापर्याय में बड़े हैं, तो भी वे खड़े होकर आगन्तुक साधुओं का उचित स्वागत करेंगे !

– आगन्तुक साधु बड़े ज्ञानी अथवा प्रभावशाली नहीं हैं, यजमान साधु बड़े ज्ञानी हैं, प्रभावशाली हैं, पदस्थ हैं, फिर भी आगन्तुक साधुओं का खड़े होकर स्वागत करेंगे ।

– आगन्तुक साधु श्रेष्ठ कोटि के चारित्री–तपस्वी नहीं हैं, यजमान साधु श्रेष्ठ कोटि के चारित्री हैं, महान तपस्वी हैं, फिर भी वे खड़े होकर आगन्तुक साधुओं का प्रेम से स्वागत करेंगे ।

स्नेह और सद्भाव महत्त्व की बात होती है । कम–ज्यादा व्यवहार विशेष महत्त्व नहीं रखता है । शास्त्रों में विविध प्रकार के विधान मिलते हैं । बहुत ही सुन्दर व्यवस्था मिलती है ।

## साधु–श्रावकों का संबंध :

ग्रंथकार आचार्यदेव ने इस सूत्र के (ग्लानादिकार्याभियोगः) माध्यम से आपका और हमारा संबंध स्पष्ट कर दिया है । साधु और साध्वी अपने संयमधर्म की आराधना तभी निश्चिंतता से और प्रसन्नता से कर सकते हैं, जब आप श्रावक–श्राविकाएँ उनकी आधारशिला बनकर रहे हो । उनके संरक्षक बनकर रहे हो। आप लोग :

– बीमार साधु–साध्वी की सेवा करते हैं ।

– बाल (छोटी उम्र के) साधु–साध्वी का खयाल रखते हैं ।

– वृद्ध साधुओं की सेवा–शुश्रूषा करते हो ।

– अध्ययनशील साधु–साध्वी को अध्ययन की सारी सुविधाएँ देते हों ।

– साधु–साध्वी के लिए निवास की, उपाश्रय की व्यवस्था करते हो ।

– साधु–साध्वी के विहारों में भी समुचित सेवा और सहयोग देते हो ।

– साधु–साध्वी के उपदेश को ग्रहण कर जिनशासन की प्रभावना के अनेक कार्य करते हो ।

साधु और साध्वी, आपके लिए क्या करते हैं, वह भी सुन लो :

– श्रावक–श्राविकाओं को धर्म का, तत्त्व का उपदेश देते हैं ।

– मांसाहार, शराब, जुआ वगैरह पापों से आपको बचाने का भरसक प्रयत्न करते हैं ।

– प्रभुदर्शन, प्रभुपूजन, सामायिक, प्रतिक्रमण, तीर्थयात्रा वगैरह अनेकविध धर्मक्रियाओं में आपको जोड़ने का प्रयत्न करते हैं ।

– परोपकार के कार्यों में आपको प्रोत्साहित करते हैं ।

– आपके व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक, सामाजिक प्रश्नों को अहिंसा के और अनेकान्त के सिद्धान्त से सुलझाने का प्रयत्न करते हैं ।

– जैन संघ अहिंसक और निर्व्यसनी बना रहे, इसलिए सतत जाग्रत रहते हैं ।

– उपदेश के द्वारा, साहित्य के द्वारा, शिविर वगैरह आयोजनों के द्वारा विविध देश–प्रदेशों में पैदल चलकर धर्मशासन का प्रचार–प्रसार करते हैं ।

इस प्रकार अपने एक–दूसरे को, मोक्षमार्ग की आराधना में सहायक बनते हैं । इस अपेक्षा से अपना संबंध बहुत ही महत्त्वपूर्ण संबंध है । इसलिए दो सावधानी बरतनी चाहिए अपने को :

– आप लोग साधु–साध्वी की निंदा नहीं करें ।

– साधु–साध्वी आपकी अवहेलना, तिरस्कार नहीं करें ।

## सावधान रहें :

अपने इस घनिष्ट संबंध को तोड़ने के लिए कुछ लोग प्रयत्नशील बने हैं। अपना यह संबंध उन लोगों से सहन नहीं होता है । संबंध तोड़ने के लिए, वे लोग दो काम कर रहे हैं :

१. साधु–साध्वी के छोटे–बड़े दोषों को सभाओं में गाते हैं और अखबारों (Newspaper) में छपवाते हैं । घोर निन्दा करते हैं ।

२. साधुओं के पास आकर, 'आजकल श्रावक–श्राविकाएँ बिगड़ गये हैं, व्यसनी हो गये हैं....' वगैरह बातें करते हैं । साधु–साध्वी के हृदय में, श्रावक–श्राविकाओं के प्रति दुर्भाव पैदा करते हैं ।

ऐसा होने से आपस का प्रेमभाव टूटता जा रहा है। अविश्वास बढ़ता जा रहा है। इसलिए आपको सावधान रहना है, हम लोगों को भी सावधान रहना है। जो लोग श्रावकाचार का तनिक भी पालन नहीं करते हैं, वे लोग अखबारों में साधुपुरुषों की निन्दा करते हैं! वे स्वयं के दोषग्रस्त जीवन का विचार भी नहीं करते हैं, जीवन को दोषमुक्त करने की तो बात ही नहीं! ऐसे 'लेखकों' से सावधान रहना। उटपटांग लिखते रहते हैं! पढ़नी ही नहीं चाहिए वैसे श्रमणद्वेषी लोगों की बातें।

गुणदृष्टिवाले बने रहो। दूसरों में रहे हुए गुणों को ही देखते रहो। त्यागी, तपस्वी और ज्ञानी-ध्यानी साधुपुरुषों की सेवा-भक्ति करते रहो। कभी कोई गलती देखने में आए तो विनय से और नम्रता से एकान्त में बताया करो। पूज्य पुरुषों की अवज्ञा कभी मत करो। साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविकाओं को परस्पर पूरक बनना है, विघटक नहीं बनना है। मोक्षमार्ग की आराधना में एक-दूसरे को सहायक बनना है।

कर्तव्यपालन में जाग्रत बने रहो। बीमार, बाल, वृद्ध, अध्ययनशील और प्राघूर्णक साधु-साध्वी के प्रति आपके जो कर्तव्य हैं, उन कर्तव्यों का पालन करने के लिए प्रयत्नशील रहें। पूज्य पुरुषों के प्रति पूज्यभाव अखंड रखते हुए सेवा-भक्ति करते रहोगे, तो दो फल की प्राप्ति होगी - गुणप्राप्ति और पुण्यप्राप्ति। आप ये दोनों फल प्राप्त करनेवाले बनें-यही मंगल कामना।

आज बस, इतना ही।

* * *

# प्रवचन : ३७

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी, स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में श्रावक की दिनचर्या बताते हुए कहते हैं कि श्रावक प्रतिदिन उपाश्रय में जाए और वहाँ रहे हुए साधु-समुदाय का खयाल करे। कोई बीमार साधु हो, कोई बाल मुनि हो, कोई वृद्ध साधु हो, तो उन सभी की यथोचित सेवा करे। औषध, अन्न, पानी, वस्त्र, पुस्तक वगैरह जो आवश्यक हो, प्रदान करता रहे।

इसी विषय में ग्रंथकार आचार्यश्री ने विशेष रूप से कहा :

'कृताकृतप्रत्युपेक्षा ।'

बहुत ही अच्छी बात कही है। कार्य करने की समुचित पद्धति प्रस्तुत कर दी है।

## 'क्या किया, क्या नहीं किया' - सोचें :

चाहे मंदिर का कार्य हो, चाहे उपाश्रय का। कार्य हो जाने पर सोचना चाहिए कि 'मैंने कौन-सा कार्य किया, कौन-सा नहीं किया।' ऐसा सोचने से मालूम हो जाता है कि कौन-सा कार्य नहीं हो पाया है। जो कार्य आप नहीं कर पाये हो, कार्य करना आवश्यक है, आप दूसरे व्यक्ति को कहकर वह कार्य करवा सकते हो।

कभी प्रमाद से, कभी जल्दबाजी में, कभी शारीरिक अशक्ति से, कभी पैसे के अभाव से, कोई कार्य नहीं भी हो सकता है। भावना होते हुए भी कार्य नहीं हो सकता है। कार्य की उपेक्षा भी होती है। जैसे कि :

- यह कार्य तो पूजारी का है, पूजारी करेगा।
- यह कार्य ट्रस्टी लोगों का है, वे करेंगे।
- यह कार्य तो नौकर का है, वह करेगा।
- मुझे आज जल्दी बाजार में जाना है, मैं मुनिराजों का कार्य नहीं कर सकता,

दूसरे लोग करेंगे ।

– मुझे आज घर में बहुत काम है ।

– मुझे आज बाहर गाँव जाना है ।

कभी ये बातें सही होती हैं, कभी नहीं भी होती हैं । इसकी वजह से कार्य बिगड़ता है और मनुष्य की कार्यदक्षता में क्षति आती है ।

## गृहकार्यों में भी यह गुण आवश्यक :

यदि आप अपने गृहकार्यों में सफलता और प्रशंसा पाना चाहते हो, तो आप इस गुण को सिद्ध करें । जैसे कि आपको आज चार काम करने के हैं :

१. एक रुग्ण मित्र को हॉस्पिटल में मिलने जाना है ।

२. घर के लिए घी, तेल और धान्य लाना है ।

३. बैंक में जाना है, कुछ रुपये बैंक से निकालने हैं ।

४. एक व्यापारी से रुपये लेने हैं ।

सर्वप्रथम आपको ये चारों काम याद कर लेने चाहिए । यदि डायरी रखते हों, तो डायरी में लिख लेने चाहिए । काम निपटा कर जब आप घर वापस लौटते हों, तब आपको सोचना चाहिए, डायरी खोलकर देखना चाहिए कि आपको जो जो काम करने थे, वे कर लिये क्या ? कोई काम रह गया हो, भूल गये हों, तो वह काम पूर्ण कर आप घर लौटें । याद होते हुए भी, संयोगवश कार्य न हो पाया हो, तो घर पर आने के बाद घरवालों के मन का समाधान कर सकते हो ।

**सभा में से :** समाधान तो झूठ बोलकर भी कर देते हैं !

**महाराजश्री :** जिस दिन आपका झूठ पकड़ा गया उस दिन क्या होगा ? झगड़ा तो होगा ही, साथ साथ आप विश्वासपात्रता खो दोगे ! यह बहुत बड़ा नुकसान है । आपके उपर आपके घरवालों का विश्वास होना बहुत ही आवश्यक है । इसलिए जूठ नहीं बोलना । कह देना कि 'यह कार्य करना मैं भूल गया !' अथवा 'प्रयत्न करने पर भी यह कार्य नहीं हो पाया ।'

कुछ लोग तो ऐसे भुलक्कड़ होते हैं कि एक काम भी उन्हें याद नहीं रहता है। भूल जाते हैं! और ऐसे लोग प्रायः अपने-अपने घर में अप्रिय बन जाते हैं! आपस के संबंध बिगड़ते हैं।

कुछ वर्ष पहले अमेरिकन गजट में एक घटना पढ़ी थी। एक युवक की शादी हुई। शादी के दूसरे दिन युवक ने ऑफिस जाते समय अपनी पत्नी से पूछा: 'बाजार से तेरे लिए कुछ लाना है?' पत्नी ने कहा: 'हाँ, लाना है! बिस्किट का एक बड़ा पेकेट लेते आना।' युवक ने कहा: 'अच्छा, आते समय लेकर आऊँगा।'

युवक ऑफिस गया। लौटते समय उसने सोचा नहीं कि 'मुझे घर क्या ले जाना है।' जब वह अपनी स्ट्रीट में पहुँचा तब याद आया कि 'उसे बिस्किट का बड़ा पेकेट ले जाना है घर पर!' वह पास के छोटे-छोटे स्टोर में गया। वहाँ बिस्किट का बड़ा पेकेट नहीं था, छोटा था। उसने छोटा पेकेट ले लिया और घर पर आया। जाते ही उसकी पत्नी ने पूछा: 'मेरे लिए बिस्किट का बड़ा पेकेट लाये क्या?' उसने कहा: 'आज छोटा पेकेट लाया हूँ कल बड़ा ले आऊँगा!' उसकी पत्नी अत्यंत नाराज हो गई और बोली: 'तुम कंजूस हो, तुझे मेरे प्रति प्यार नहीं है। बिस्किट का एक पेकेट भी मेरे लिए नहीं ला सकते हो, तो फिर दूसरा क्या लाकर दोगे? मुझे तेरे साथ नहीं रहना है' और वह उसी समय घर छोड़कर चली गई। लग्न-विच्छेद कर दिया।

छोटी-सी भूल कभी बहुत बड़ा नुकसान कर देती है। आप कहोगे कि उस स्त्री को थोड़ी धीरज रखनी चाहिए थी! ऐसी जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए थी! ठीक है, मनुष्य का स्वभाव बन गया है दूसरे की भूल देखने का। वास्तव में आत्मनिरीक्षण करना चाहिए कि 'मेरी भूल क्या है?' मनुष्य अपनी भूलों को समझता चले तो बहुत कुछ सुधर सकता है। दूसरों को सुधारना बहुत मुश्किल है, स्वयं को सुधारना सरल काम है।

सदैव यह आदत डाल दो सोचने की। 'कौन-सा कार्य मुझे करना था? कौन-सा किया और कौन-सा नहीं किया?' इस आदत से आपकी कार्यदक्षता बढ़ती जायेगी।

## दक्षता से और गंभीरता से सोचें :

परंतु, उपर–उपर से नहीं सोचना है। एकाग्रता से सोचना है। जो कार्य आपको करना है, विशेष रूप से बिमार के विषय में, आप दक्षता से सोचें। कोई कार्य आप भूल न जायं, सावधानी से सोचें। डॉक्टर ने आपको बिमार लड़के के लिए कहा :

- दो–दो घंटे में लड़के का टेम्परेचर लेते रहना और चार्ट में लिखते रहना।
- एक–एक घंटे में दो–दो टेब्लेट देते रहना।
- दो–दो घंटे में पीने की दवाई देते रहना।
- रोजाना सुबह एक इंजेक्शन देने का है।
- आज उसका ब्लड टेस्ट, युरीन टेस्ट करवा लेना।
- एक–एक घंटे में थोड़ा–थोड़ा दूध, ज्यूस वगैरह प्रवाही पदार्थ देना।

आप ये सारी बातें याद रखते हो ना ? फिर सोचते हो न कि 'मैंने कौन–सी दवाई दी, कौन–सी नहीं दी ? टेम्परेचर नापा या नहीं ? टेस्ट कौन–सा करवाया, कौन–सा नहीं करवाया ?' यदि कुछ बातें भूल जाते हो, तो डॉक्टर का उपालंभ सुनना पड़ता है न ? लड़के को भी नुकसान हो सकता है।

इसलिए ग्रंथकार कहते हैं – किये हुए और नहीं किये हुए कार्यों की प्रत्युपेक्षा किया करो ! विशेष रूप से देवकार्य और गुरुकार्य के विषय में प्रत्युपेक्षा किया करो ! यदि घर के कार्यों में प्रत्युपेक्षा करने की आदत होगी, तो देवकार्य एवं गुरुकार्य में प्रत्युपेक्षा करोगे ही। हाँ, देव–गुरु के प्रति आपके हृदय में श्रद्धा और भक्ति होगी, बहुमान होगा, प्रेम होगा, तो अवश्य प्रत्युपेक्षा करोगे। उपेक्षा नहीं करोगे। देवकार्य और गुरुकार्य करने से आपकी मन–वचन–काया की शक्ति सफल होगी। कृतार्थ होगी।

## उपेक्षा नहीं, प्रत्युपेक्षा करें :

शुभ कार्यों की कभी उपेक्षा नहीं करें। अपने कर्तव्यों के प्रति जाग्रत रहें। विशेष रूप से, आपकी जिस कार्य के प्रति जिम्मेदारी हो, उस कार्य के प्रति

कभी भी उपेक्षा नहीं करें। कुछ उदाहरण के माध्यम से यह बात समझाता हूँ।

मान लो कि आप एक देरासर के कार्यवाहक ट्रस्टी हैं। देरासर के जितने भी कार्य होते हैं, उन कार्यों में से आपको जिन-जिन कार्य को देखने के हैं, आप उन कार्यों का लिस्ट बना ले।

- देरासर में पूजारी काम बराबर करता है या नहीं, आपको देखना है।
- देरासर में केसर, चंदन, धूप वगैरह सामग्री स्टोक में है या नहीं, आपको देखना है।
- देरासर में कोई मरम्मत का काम है या नहीं, आपको देखना है।
- देरासर स्वच्छ रहता है या नहीं, आपको देखना है।
- देरासर में जितनी प्रतिमाएँ हो, उन सभी प्रतिमाओं को देखना है :
    * कोई प्रतिमा खंडित तो नहीं हुई है न ?
    * कोई प्रतिमा की आँखें चली तो नहीं गई है न ?
    * कोई प्रतिमा के उपर काले, पीले, लाल दाग तो नहीं पड़े हैं न ?
    * कोई प्रतिमा की चोरी तो नहीं हो गई है न ?

यह सब देखकर, जो कुछ भी करना है, आपको विलंब किये बिना करना चाहिए। आज कितने काम किये और कितने काम करने शेष है, आप गंभीरता से सोचें।

- मंदिर का हिसाब-किताब देखने की आपकी जिम्मेदारी है, तो आप अवश्य हिसाब-किताब देखें। रोजाना देखें। रोजाना नहीं देख सकते हैं, तो हर सप्ताह देखा करें। मुनिम के भरोसे नहीं रहें।

कई गाँव-नगरों में मैंने देखा है कि ट्रस्टी की लापरवाही-उपेक्षा की वजह से मंदिरों में हजारों-लाखों रुपये का गोटाला हो गया। मुनिमों ने गोलमाल कर दी।

**सभा में से :** जितने रुपयों की गोलमाल हुई, उतने रुपये ट्रस्टियों को देने चाहिए न ?

**महाराजश्री :** अवश्य देने चाहिए । वसूल करके देने चाहिए । वसूल नहीं हों तो स्वयं के रुपये देने चाहिए । परंतु कौन देता है ? मंदिरों के हिसाब–किताब देखने की फुरसत किस ट्रस्टी को है ? और ऐसी घोर उपेक्षा करनेवालों की कैसी दुर्दशा होती है, यह आप जानते हो ? इस जनम में बरबादी और परलोक में दुर्गति !

## प्रत्युपेक्षा से तीर्थंकर–नामकर्म का उपार्जन :

और, जो महानुभाव अपने कर्तव्य का सही पालन करता है, मंदिरों के प्रति, उनकी व्यवस्था के प्रति, द्रव्य–व्यवस्था के प्रति जाग्रत रहता है, कोई भी गोलमाल नहीं होने देता है, वह महानुभाव 'तीर्थंकर–नामकर्म' बाँध लेता है । यानी आनेवाले जन्मों में, किसी भी जन्म में वह तीर्थंकर बनता है । तीर्थंकर की भक्ति, तीर्थंकर के शासन की भक्ति, शासन के कर्तव्यों के प्रति सजगता, मनुष्य को तीर्थंकर क्यों न बनाये ?

चाहिए प्रत्युपेक्षा । 'मैंने कौन–सा कार्य किया और कौन–सा कार्य नहीं किया ?' यह गंभीरता से सोचते रहना है । एक सावधानी रखना । कभी कोई कार्य, आपको करना था, आप भूल गये, वह कार्य नहीं कर पाये और किसी दूसरे व्यक्ति ने याद कराया – "आपको वह कार्य करना था, आपने नहीं किया ।"

उस समय आप नाराज नहीं होना । याद करानेवाले के प्रति क्रोध नहीं करना ।

**सभा में से :** कुछ द्वेषी लोग क्रोध में आकर याद कराते हैं । आक्रोश करते हैं !

**महाराजश्री :** उस समय आपको समताभाव रखना है । कुछ लोगों को ऐसी आदत होती है कि वे किसी को कुछ कहेंगे तो आक्रोश की भाषा में कहेंगे। घर में भी उनकी यही आदत होती है । प्रेम से, शान्ति से याद दिलाने की आदत डालनी चाहिए । आप लोग भी यह बात मान लो । भूल जाना कम–ज्यादा प्रमाण में सभी लोगों में पाया जाता है । कोई मनुष्य बहुत बातें भूल जाता है, कोई मनुष्य कम बातें भूल जाता है । याद दिलाने की रीत अच्छी होनी चाहिए।

**सभा में से :** बार–बार याद करने पर भी कुछ ट्रस्टी लोग ध्यान में बात

लेते ही नहीं हैं, तब आक्रोश हो जाता है, गुस्सा आ जाता है ।

**महाराजश्री :** ऐसे ट्रस्टियों के प्रति उपेक्षाभाव धारण करें । यदि शक्ति हो तो ऐसे ट्रस्टियों को हटाने का प्रयत्न करें । दुर्भाव से नहीं, परंतु मंदिर के हित की द्रष्टि से कार्य करें । एक बात याद रखना – दूसरों को सुधारने की प्रवृत्ति में अपना मन नहीं बिगड़ना चाहिए । अपने मन में द्वेषभाव पैदा नहीं होना चाहिए ।

जहाँ तक देरासरों की, मंदिरों की बात है, मंदिर बनाना सरल है, उसको निभाना, व्यवस्था को सुचारु बनाये रखना बहुत मुश्किल काम है । आज अच्छे, प्रामाणिक और कर्तव्यनिष्ठ पुरुषों का अकाल पड़ा है । ऐसी परिस्थिति में मंदिरों के विषय में गंभीरता से सोचना अनिवार्य हो गया है । प्रमुख बनना, ट्रस्टी बनना, सेक्रेटरी बनना सरल है, परंतु अपने पद के कर्तव्यों को निभाना सरल नहीं है । मुश्किल है ।

## देरासरों के ट्रस्टी कैसे होने चाहिए ? :

पहले तो उन सभी ट्रस्टियों को, प्रमुख वगैरह को जैन देरासर के विषय में शास्त्रीय ज्ञान होना चाहिए । द्रव्यव्यवस्था का भी ज्ञान होना चाहिए ।

- देरासर में कैसी कैसी आशातनायें नहीं होनी चाहिए,
- देरासर में कैसे वस्त्र पहनकर जाना चाहिए,
- देरासर में कैसी वस्तुएँ नहीं ले जानी चाहिए,
- देरासर में कौन–सी धातु के बरतन काम आते हैं; कौन–सी धातु के बरतन काम नहीं आते,
- देरासर कब खुलना चाहिए; कब बंद होना चाहिए,
- प्रतिमाजी की पूजा कैसे द्रव्यों से होनी चाहिए,
- मंदिर की शोभा कैसे बढ़ानी चाहिए वगैरह ।
- सभी पदाधिकारी प्रतिदिन मंदिर में आनेवाले चाहिए और परमात्मा की पूजा करनेवाले चाहिए ।
- पदाधिकारी देशविरुद्ध कार्य करनेवाले नहीं होने चाहिए ।

– पदाधिकारी शराबी और जुआरी नहीं होने चाहिए ।

– पदाधिकारी सदाचारी और सच्चरित्री होने चाहिए ।

– देव–गुरु के प्रति आदर–बहुमान करनेवाले पदाधिकारी होने चाहिए ।

ऐसे पदाधिकारी होने से मंदिरों की व्यवस्था सुंदर बनती है और संघ की उन्नति होती है ।

ये बातें प्रासंगिक बता दी है । प्रस्तुत में है मंदिर के कार्यों के विषय में सजग रहने की बात । जो कार्य करने के हैं, परंतु नहीं कर पाये हैं, तो कर लेने चाहिए । उपेक्षा नहीं करनी चाहिए ।

## ग्लान–बाल–वृद्ध के कार्य :

घर में कोई बिमार हो, उपाश्रय में साधु–साध्वी बिमार हो, कोई साधर्मिक बिमार हो और उनकी सेवा करने का कार्य आपके जिम्मे हो, तो आपको जाग्रत रहकर सेवा के कार्यों को करना चाहिए ! कोई कार्य भूलना नहीं चाहिए । एक साथ तीन–चार कार्य करने हों, तो लिस्ट बना लो :

– डॉक्टर को बुलाकर लाना है ।

– बाजार से दवाइयाँ लानी है ।

– अनुपान की व्यवस्था करनी है वगैरह ।

आप बाजार गये, डॉक्टर को बुलवा लाये और दवाइयाँ भी ले आये । उपाश्रय आने के बाद सोचो, अपना लिस्ट देखो, 'कोई काम भूल तो नहीं गये ?' लिस्ट पढ़ा तब याद आया – 'अनुपान की व्यवस्था करने की तो रह ही गई है !' आप शीघ्र जाकर अनुपान की व्यवस्था करें । इस बात की उपेक्षा नहीं करें अथवा 'इतना काम दूसरा कोई श्रावक कर लेगा !' इस प्रकार कर्तव्यविमुख न बनें ।

## एक दुःखद अनुभव :

विहार करते हुए हम एक दिन शहर में गये । जैन समाज के लगभग ७० घर होंगे । लोग सुखी–संपन्न थे । लोगों ने हमारा स्वागत किया । मैंने प्रवचन

दिया । दोपहर हो बजे मेरे सहवर्ती एक मुनि को बुखार आया । बुखार ज्यादा था । मैंने वहाँ के एक प्रमुख कार्यकर्ता को डॉक्टर बुलवाने के लिए सूचना दी ! उन्होंने कहा : 'मैं अभी डॉक्टर को लेकर आता हूँ ।' हम उसके भरोसे रहे । चार बजने पर भी डॉक्टर नहीं आया । बुखार बढ़ता जा रहा था । मैंने वहाँ के एक नौकर को उस ट्रस्टी के पास भेजा । ट्रस्टी ने आकर कहा : 'महाराज सा. क्षमा करना, डॉक्टर के पास जाना ही भूल गया, यह नौकर आपका संदेशा लेकर आया तब याद आया, मैं अभी बुलाकर लाता हूँ डॉक्टर को ।'

शाम को ६ बजे डॉक्टर आया ! ट्रीटमेंट दी और चार–पाँच दिन के बाद बुखार उतरा । साधु–साध्वी को ऐसे दो–चार अनुभव जिस गाँव में होते हैं, उस गाँव में रहने की इच्छा नहीं होती है ।

मनुष्य को अपने घर में भी बिमार का खयाल करना आवश्यक होता है । यदि पुरुष बिमार पत्नी की उपेक्षा करता है, अथवा पत्नी बिमार पति की उपेक्षा करती है, तो आपस में मनमुटाव हो जाता है । संबंध बिगड़ जाता है ।

## बिमार की उपेक्षा नहीं करें :

बिमार की उपेक्षा करने से बिमार का मन आर्तध्यान (पापविचार) करता रहता है । निराशा उसको घेर लेती है । और, यदि आप उसकी सेवा करते हो, उसका पूरा खयाल रखते हो, तो उस बिमार को शान्ति मिलती है, समाधि मिलती है । बिमार को शान्ति–समता देना श्रेष्ठ धर्म है । श्रेष्ठ सुकृत है । ज्ञानी पुरुषों ने कहा है कि 'सौ काम छोड़कर बिमार की सेवा सर्वप्रथम करें ।' सेवा करते समय यह सोचते रहना चाहिए कि 'सेवा का कोई काम अधूरा तो नहीं रह गया है ?' यदि अधूरा रह गया हो तो रात्री में उठकर भी वह कार्य पूरा कर लेना चाहिए !

कभी कोई साधु–साध्वी की बिमारी दीर्घकाल तक चलती है । उस समय सेवा करते थक जाना नहीं चाहिए । दुर्भाव नहीं आना चाहिए । सेवाकार्य में विलंब नहीं होना चाहिए । बिमार के साथ दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिए । बिमार के साथ सदैव सद्व्यवहार ही करना चाहिए । उनके मन को दुःख नहीं पहुँचाना चाहिए । उनके साथ प्रिय शब्दों में बात किया करो और उचित समय पर सेवा

करते रहो ।

## वृद्ध, अंध और अपंग के प्रति :

जैसे बिमार के प्रति कर्तव्यों का खयाल रखने का है, वैसे वृद्ध पुरुषों के प्रति भी कर्तव्यों को निभाना है । जो वृद्ध स्त्री-पुरुष स्वयं अपने काम नहीं कर सकते हैं, उनके कार्यों को सुचारु रूप से करने चाहिए । उनके मन को संतोष हो वैसे करने चाहिए । एक काम किया, दूसरा नहीं किया, फिर दो काम किये और बाद में उनको मुँह भी नहीं दिखाया, वैसा नहीं करना चाहिए ।

उनको हाथ पकड़कर खड़ा करो, बाद में हाथ पकड़कर बिठाओ भी सही। उनको प्रेम से भोजन कराओ, वैसे भोजन के बाद थाली भी उठा लिया करो! उनको स्नान कराओ, वैसे वस्त्रपरिवर्तन भी कराया करो । उनको दवाई देने की हो तो दवाई दो और जो अनुपान देना हो, वह अनुपान भी दिया करो ।

**सभा में से :** ऐसी सेवा तो हमने हमारे माता-पिता की भी नहीं की है ।

**महाराजश्री :** फिर भी माता-पिता को घर में तो रखे होंगे न ? आपके बच्चे आपको शायद घर में भी नहीं रखेंगे ! वृद्धाश्रम में भेज देंगे !

**सभा में से :** घर से वृद्धाश्रम अच्छा होगा !

**महाराजश्री :** ट्रायल पर जाकर देखो वृद्धाश्रम ! वहाँ रोटी, कपड़ा और मकान मिलता है; परंतु स्नेह, सहानुभूति और प्रशंसा नहीं मिलती है । मनुष्य को रोटी, कपड़ा और मकान मिल जाने मात्र से संतोष नहीं होता है । जीवन का अर्थ मात्र रोटी, कपड़ा और मकान नहीं है । मनुष्य को यदि भरपूर स्नेह मिलता है और रोटी कम मिलती है, तो वह दुःख नहीं मानेगा । मनुष्य को यदि समय-समय पर सहानुभूति मिलती है और चाहिए वैसे कपड़े नहीं मिलते हों, तो वह दुःख नहीं मानेगा । मनुष्य को यदि प्रशंसा के दो शब्द मिलते हैं और अच्छा मकान नहीं मिलता है, तो वह दुःख नहीं मानेगा ।

वृद्धाश्रमों में समय पर भोजन मिलता है, परंतु स्नेह कहाँ से मिलेगा ? वृद्धाश्रमों में कपड़े मिलते है, परंतु समय-समय पर सहानुभूति कौन देगा ? वृद्धाश्रमों में अच्छा, पक्का मकान, पलंग, गद्दी मिल जाती है; परंतु प्रशंसा के पुष्प कहाँ

से लायेगा ? इसलिए वृद्धाश्रम में रहे हुए लोगों को घर याद आता है, परिवार याद आता है और वे बेचारे रोते हैं अकेले–अकेले !

वृद्ध अवस्था ही ऐसी है कि उस अवस्था में स्नेह, सहानुभूति और प्रशंसा की भूख बढ़ जाती है। अपेक्षा बढ़ जाती है। आप उनको दिया करो ये तीन बातें ! इसमें पैसे नहीं लगते हैं। इसमें कोई शारीरिक श्रम नहीं लगता है।

बात एक है – आपके हृदय में वृद्ध पुरुषों को शान्ति–समता और संतोष देने की भावना जीवंत रहनी चाहिए। यह बात हमेशा ध्यान में रखना कि एक दिन आप भी वृद्ध होनेवाले हो, यदि दीर्घकालीन आयुष्य है आपका तो !

वृद्ध साधु–साध्वी की सेवा–भक्ति बहुत ही विनय और बहुमान से करनी चाहिए। जिनशासन की व्यवस्था तो यह है कि जिस समुदाय के वृद्ध साधु–साध्वी हों, उस समुदाय के आचार्य ही उनकी देखभाल करें। उनकी सेवा का प्रबन्ध करें। श्रावक–श्राविका अपनी मर्यादा में रहते हुए सेवा–भक्ति में सहभागी बनें।

यदि आपके गाँव में वृद्ध साधु–साध्वी रहे हुए हैं, आपके मोहल्ले में या गली में वृद्ध साधु–साध्वी रहे हुए हैं, तो आप प्रतिदिन उनकी सेवा–भक्ति कर सकते हैं। उनकी सेवा–भक्ति करने में, साधुजीवन के कुछ नियमों का पालन नहीं भी हो सकता हो, तो भी आप जिनाज्ञा के विराधक नहीं बनते हैं। ग्लान, वृद्ध, बाल साधु–साध्वी के लिए, साधुजीवन के नियमों में अनेक अपवाद बताये गये हैं।

– मान लो कि उपाश्रय में दो या तीन ही साधु हैं, सभी वृद्ध हैं, अशक्त हैं, गोचरी–पानी लेने आपके घर नहीं आ सकते हैं, ऐसी स्थिति में आप लोग उपाश्रय में जाकर गोचरी (भोजन–पानी) दे सकते हैं।

– वैसे, वे स्वयं अपने वस्त्र धो नहीं सकते हैं, तो आप अचित्त जल से उपयोगपूर्वक वस्त्रप्रक्षापन कर सकते हैं।

– वैद या डॉक्टर की सूचना हो तो उनके शरीर को अचित्त जल से स्पंज कर सकते हो।

– उनके पास बैठकर कोई धर्मग्रन्थ उनको सुना सकते हो । कोई स्तवन–सज्झाय गाकर सुना सकते हो ।

यह सेवा–वैयावच्च का महान धर्म है । जनमोजनम यह धर्म आत्मा के साथ चलता है और श्रेष्ठ सुख–समृद्धि देता रहता है । इसलिए जब–जब बिमार, वृद्ध, बाल साधु–साध्वी की सेवा करने का अवसर मिले तब प्रमाद नहीं करना। उपेक्षा नहीं करना । अपनी तन–मन–धन की शक्ति का सदुपयोग करना । यही सदुपयोग है ।

ग्रंथकार आचार्यदेव ने 'कृताकृतप्रत्युपेक्षा' को इतना महत्त्व दिया है, तो अपने को भी वह महत्त्व समझना ही चाहिए । अपने कर्तव्यों का पालन संपूर्ण रूप से हो, इसलिए प्रतिदिन गंभीरता से सोचना है कि 'आज मैंने कौन – से कार्य किये और कौन–से कार्य नहीं किये । विशेष रूप से मंदिर के एवं बिमार वगैरह के कार्य कौन–से किये, कौन–से नहीं किये, यह सोचना चाहिए ।

यह सोचने की आदत डालो । इससे आपकी कार्यदक्षता बढ़ेगी । आप कार्यकुशल बनेंगे ।

आज बस, इतना ही ।

* * *

# प्रवचन : ३८

महान श्रुतधर, परम कृपानिधि आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में श्रावक जीवन का विशिष्ट धर्म बताया है। बारह व्रतों का विवरण करने के बाद श्रावक की दैनिक जीवनचर्या बतायी जा रही है। आप सुन रहे हैं जीवनचर्या की बातें। आप महसूस करते होंगे कि हजार वर्ष पूर्व बतायी गई ये बातें, आज भी उतनी ही उपयोगी और उपयुक्त हैं। ये बातें कभी पुरानी नहीं होती हैं, कभी अर्थहीन नहीं होती हैं। हमें इन बातों को वर्तमान देश-काल के संदर्भ में समझने का प्रयत्न करना चाहिए। सम्यग् आचार्यदेव ने श्रावक जीवन की सर्वांगीण उन्नति का लक्ष्य रखते हुए मार्गदर्शन दिया है। वे कहते हैं :

"उचितवेलयाऽऽगमनम्।"

जिनमंदिर-संबंधित और साधु-संबंधित कर्तव्यों का पालन करने का उपदेश देने के पश्चात् वे श्रावक को गृहविषयक और व्यापारविषयक कर्तव्य याद कराते हुए कहते हैं कि 'उचित समय पर घर पहुँच जाओ, उचित समय पर दुकान या ऑफिस पहुँच जाओ!'

## समय की पाबंदी समझें :

मंदिर जाना है; दर्शन, पूजन, स्तवन इत्यादि आराधना करनी है; मंदिर-संबंधित कार्य भी (जो आपको) करने हैं, परंतु घर कब पहुँचना है, यह भी याद रखने का है। भूलना नहीं है। दुकान कब पहुँचना है, याद रखना है। गुरुजनों के पास जाना है, उनका दर्शन-वंदन, सेवा वगैरह करना है; परंतु घर-दुकान पहुँचने का समय भूलना नहीं है। समय की पाबंदी समझें और हर कर्तव्य का समुचित पालन करें। ऐसा करने से आप यशस्वी बनेंगे और आपकी कार्यदक्षता बढ़ेगी। और यदि आप समय की पाबंदी नहीं समझते हैं, तो आप अनेक अनर्थों के भागी बनेंगे, अनेक क्लेशों के निमित्त बनेंगे। कैसे बनते हैं निमित्त, यह बताता हूँ।

## अनियमितता से घर में क्लेश :

आप मंदिर अथवा उपाश्रय गये हैं, आपको ११ बजे घर पहुँचना है और भोजन करना है। आप ११ बजे घर नहीं पहुँचते हैं, बारह बजे पहुँचते हैं। आपकी पत्नी अथवा आपकी माता, आपके पहुँचने पर झुँझलाकर पूछते हैं – 'इतनी देर क्यों लगा दी ? मैं तुम्हारा कितना इन्तजार करूँ ? मुझे भी घर के कितने काम होते हैं ? समय पर घर आया करो।' मान लो कि आपको गुस्सा आ गया, आपने नहीं बोलने के वचन बोल दिये, क्या होगा ? झगड़ा ! लड़ाई ! भोजन करना दूर रह जायेगा और क्लेश बढ़ जायेगा। आप कहोगे कि 'हमने देर कर दी वह सही बात है, परंतु मंदिर–उपाश्रय में देर लगी न ? दूसरी जगह तो गये नहीं ? तो फिर पत्नी को झगड़ा नहीं करना चाहिए न ?'

बात नियमितता की है, निश्चित समय की है। आपने कहाँ देर लगायी, वह प्रश्न नहीं है। आपने देर कर दी, इससे आपकी पत्नी के गृहकार्यों में विक्षेप होता है, दूसरे गृहकार्य बिगड़ते हैं, यह प्रश्न है। आप देरी से आते हैं, तो रसोईघर का काम समाप्त नहीं होता, बरतन साफ करनेवाला अपने समय पर आकर चला जाता है, बाद में आपकी पत्नी को स्वयं बरतन मांजने पड़ते हैं वगैरह दुविधाएँ पैदा होती हैं। इसलिए क्लेश पैदा होता है। आप समय के नियमित नहीं रहते हैं, तो दूसरों को भी अनियमित बना देते हो। दूसरों के स्वभाव को बिगाड़ते हो।

## सोक्रेटीस की पत्नी झगड़ालु क्यों बनी थी ? :

ग्रीस देश का तत्त्वचिंतक सोक्रेटीस, सारे विश्व में 'तत्त्वचिंतक' के रूप में प्रसिद्ध हो गया। जैसे वह तत्त्वचिंतक, तत्त्वोपदेशक था, वैसे वह अपने घर के प्रति लापरवाह था। कभी भी वह समय पर घर नहीं पहुँचता था। इसलिए उसकी पत्नी नाराज होती थी। गुस्सा करती थी, झगड़ा करती थी। यदि सोक्रेटीस अनियमित नहीं होता, तो संभव है कि उसकी पत्नी गुस्सैल नहीं बनती। लोगों ने सोक्रेटीस की क्षमा–समता की प्रशंसा की, परंतु उसकी अनियमितता की भर्त्सना नहीं की ! उसकी पत्नी की निन्दा की, परंतु पत्नी के गुस्से में निमित्तभूत सोक्रेटीस की निन्दा नहीं की !

आप लोगों के घरों में ज्यादातर अनियमितता को लेकर झगड़े होते हैं !

– पति घर पर नियमित समय से नहीं आता है, तो झगड़ा होता है ।

– लड़का-लड़की स्कूल से समय पर नहीं आते, तो झगड़ा होता है !

– नौकर समय पर नहीं आते, तो झगड़ा होता है !

खास कर, आप लोगों को मंदिर से और उपाश्रय से घर पर नियमित-निश्चित समय पर जाना चाहिए । अन्यथा गलती आप करोगे और अज्ञानी लोग निंदा मंदिर और साधुओं की करेंगे । घर के लोग, दूसरे लोगों के सामने आपकी निंदा इस प्रकार करते रहेंगे – 'हमारे वो, मंदिर में दो-तीन घंटा रहते हैं, साधुओं के पास दो-तीन घंटा रहते हैं, न घर का खयाल करते हैं, न धंधे में उनका ध्यान है । धंधा बिगड़ता जा रहा है, घर में लड़के-लड़कियाँ बिगड़ती जा रही है । क्या होगा घर का, क्या होगा धंधे का, भगवान जाने । मुझे तो लगता है कि मेरा घर उजड़ जायेगा ।'

दुनिया है यह ! आपकी निन्दा के साथ मंदिर की और साधुपुरुषों की भी निन्दा करने लगती है । निमित्त आप बनते हो । इसलिए ग्रंथकार आचार्यदेव ने कहा है कि घर और व्यवहार के कार्यों के लिए मंदिरादि से समय पर लौटा करो ।

## दुनिया की उपेक्षा नहीं करने की है :

जब तक आप गृहस्थ हैं, परिवार के साथ जीवन जीते हैं, तब तक आपको विवेक रखना होगा । कर्तव्यपालन में जाग्रत रहना पड़ेगा ।

**सभा में से :** कुछ महात्माओं के प्रवचनों में हम सुनते हैं कि 'जब मंदिर में जाओ तब दुनिया को भूल जाओ, समय का भान भी नहीं रहना चाहिए' वगैरह ।

**महाराजश्री :** ठीक तो कहते हैं ! जब तक मंदिर में रहो, तब तक परमात्मा में ही मन जोड़कर रहो । उस समय दूसरे विचार नहीं करने चाहिए । परमात्मा के साथ तादात्म्य बन जाना चाहिए । परंतु ऐसी स्थिति कितना समय रह सकती है, यह जानते हो ? ऐसी स्थिति घंटा-दो घंटा नहीं रहती है, ऐसी स्थिति कुछ मिनट-कुछ सेकंड रह सकती है ! कहने का तात्पर्य यह है कि मंदिर में जब

तक रहो तब तक दुनिया को भूल जाओ ! परंतु मंदिर में से जब बाहर आओगे तब दुनिया में ही आना पड़ेगा ! दुनिया की उपेक्षा करने से आप उपेक्षित हो जाओगे !

अहमदाबाद में एक महानुभाव मिले थे । रोजाना प्रवचन सुनने आते थे । वैसे वे साधन-संपन्न थे । बंगला था, कार थी, मार्केट में बड़ी दुकान थी । एक दिन मेरे पास आकर अपनी मनोवेदना व्यक्त करने लगे : 'महाराज सा. जैसा आप कहते हो, वैसा ही संसार है । पत्नी, पुत्र वगैरह सभी स्वार्थी हैं, मनस्वी हैं, किसी को धर्म करना नहीं है, धर्म करनेवालों की निन्दा करते हैं ! मौज-मजा करते हैं, पाप-पुण्य का भेद समझते नहीं, क्या करूँ ? कुछ समझ में नहीं आता !'

वास्तव में यह उसका वैराग्य नहीं था, उद्वेग था ! संताप था ! अंसतोष था ! जब मैं उसकी बातों की गहराई में गया, तब मालूम पड़ा कि यह महानुभाव न घर का खयाल रखते थे, न दुकान का ! घर की सारी जिम्मेदारी उसकी पत्नी ने उठा ली थी और दुकान की जिम्मेदारी बड़े लड़के ने उठा ली थी । परंतु इस महानुभाव का लगाव तो घर और दुकान से बना हुआ ही था ! इसलिए वे घर और दुकान की बातों में हस्तक्षेप करते रहते थे । पत्नी और पुत्र को यह हस्तक्षेप पसंद नहीं था । पत्नी कह देती थी : आप घर-व्यवहार को सँभालते नहीं हो और हर बात में टांग अड़ाते रहते हो, यह मुझे पसंद नहीं है । या तो आप घर-व्यवहार को ठीक रूप से सँभालो अथवा मुझे सँभालने दो । आप देखा करो । आपको घर का और दुकान का काम करना नहीं है, मंदिर और उपाश्रय में बैठा रहना है और बाद में - 'तूने यह काम अच्छा नहीं किया, वो काम बिगाड़ दिया, वैसा बड़बड़ाट करते हो । मुझे पसंद नहीं है ।' पत्नी का आक्रोश सकारण था ! वैसे पुत्र का आक्रोश भी सही था । पिताजी दुकान पर कभी तीन बजे से पूर्व पहुँचते ही नहीं थे ! कभी-कभी वो दुकान पर जाते ही नहीं थे । परंतु जब जाते तब लड़के को डाँटते रहते ! 'यह सौदा बराबर नहीं किया, इस पार्टी के साथ व्यापार नहीं करना था' वगैरह । लड़का फट् से जवाब दे देता था, पिता का अपमान कर देता था । पिता को बुरा लगता था !

और संसार उसको बुरा लगता था ! वह अपनी भूल समझने को तैयार नहीं था ।

## अपनी भूलों का स्वीकार करें :

मैंने उस महानुभाव को कहा : 'यदि आप घर में अपना वर्चस्व चाहते हो, आपकी इच्छानुसार घर–व्यवहार चलाना चाहते हो, तो आप मंदिर–उपाश्रय में ज्यादा समय मत रूको, समय पर घर जाया करो । घर के कार्यों को सँभालो। वैसे, आप दुकान में अपना वर्चस्व चाहते हो, तो समय पर दुकान पहुँच जाया करो । दुकान के सभी कार्यों को अच्छी तरह सँभालो । आपका लड़का कहता था कि आपको इन्कमटेक्स ऑफिस में जाना था, आप नहीं गये, देरी से गये और पेनल्टी–दंड भरना पड़ा ।

'यदि आपको मंदिर और उपाश्रय का ही कार्य सँभालना है, तो फिर घर–दुकान का मोह छोड़ दो । घर पत्नी को सँभालने दो, आप मौन रहा करो, पत्नी पूछे उतना ही जवाब दिया करो और दुकान लड़के को सँभालने दो । आप ड़बड़ब मत किया करो । मन में भी असंतोष नहीं रखना चाहिए । घर को मात्र भोजनशाला और धर्मशाला समझकर संसार में रहो ! वो भी पसंद नहीं हो, तो दीक्षा ले लो ! साधु बन जाओ !

परंतु हमारे यहाँ साधुजीवन में भी अपने–अपने कर्तव्यों का पालन समय पर करना ही पड़ता है । जिस साधु को गोचरी लाने के लिए ग्यारह बजे जाना है, वह साधु उस समय मंदिर में जाकर बैठ जाय अथवा पढ़ने के लिए बैठा रहे, तो नहीं चलता ! गुरु उस साधु को कहेंगे : 'यह समय मंदिर जाने का नहीं है, पढ़ाई करने का नहीं है, भिक्षा लेने चले जाओ !'

भिक्षा लेने के लिए समय पर जाना है, वैसे भिक्षा लेकर समय पर वापस उपाश्रय में आना है ! ऐसा नहीं चलता कि ग्यारह बजे भिक्षा लेने जाय और दो–तीन बजे तक भिक्षा के लिए घर–घर भटकता रहे ! आधे घंटे में या एक घंटे में उसको भिक्षा लेकर वापस आ जाना पड़ता है । कभी दो–तीन किलोमीटर दूर जाना हो भिक्षा के लिए, तो गुरु को कहकर जाना पड़ता है । वैसे आप लोगों को कभी मंदिर या उपाश्रय के काम के लिए ज्यादा समय लगनेवाला

हो, तो घर में बोलकर जाना चाहिए ।

यदि आप धार्मिक हैं, फिर भी घर में अप्रिय हैं, तो आपको आत्मनिरीक्षण करना चाहिए । धार्मिक मनुष्य जनप्रिय ही होना चाहिए । **जनप्रियता, धार्मिक मनुष्य का एक लक्षण है** । आप में यदि सच्ची धार्मिकता होगी, तो आप जनप्रिय होंगे ही ! परंतु यदि धार्मिकता नहीं होगी आपके हृदय में, तो आप जनप्रिय नहीं भी हो सकते हैं । आपके घर में आप सभी को प्रिय बने रहें, यह अत्यंत आवश्यक बात है ।

## अनियमितता से अप्रियता :

अप्रिय बनने के अनेक कारण होते हैं, उनमें एक कारण अनियमितता है । अनियमितता कहें, उपेक्षा कहें, लापरवाही कहें – एक ही बात है । अपने कर्तव्यों के प्रति उपेक्षा करनेवाला मनुष्य अप्रिय बनता है ।

बंबई में एक डॉक्टर थे । ५० वर्ष पहले की बात है । उस समय परदेश जाकर F.R.C.S. की डिग्री ली थी । बंबई में ऐसी डिग्रीवाले डॉक्टर उस समय थोड़े ही थे । अच्छी प्रेक्टीस जम गई थी । परंतु धीरे धीरे वे अपने पेशन्टों के प्रति लापरवाही करने लगे । आप डॉक्टर को सुबह ९ बजे फोन करो कि 'पेशन्ट की स्थिति गंभीर है, आप जल्दी पधारें ।' डॉक्टर कहते थे : 'अभी आया' और वे आते थे ग्यारह बजे ! वे धीरे धीरे अप्रिय बनने लगे । प्रेक्टीस टूटती चली ।

गुजरात के एक शहर में एक वकील थे । वकालत अच्छी करते थे । परंतु उनको वकालत से भी ज्यादा रुचि तत्त्वचर्चा की रहती थी । वे उपाश्रय जाते, वहाँ यदि किसी मुनिराज के साथ तत्त्वचर्चा करने बैठ जाते, तो उनको समय का भान नहीं रहता था । असील उनकी ऑफिस में बैठे रहते, थक कर चले जाते और दूसरे वकील को अपना केस सौंप देते । वकील की वकालत टूट गयी । अत्यंत दरिद्र अवस्था में आ गये थे । उनका एक पुण्यकर्म अच्छा था, उनकी पत्नी शांत, सुशील और सहनशील थी ! अन्यथा ऐसे लोगों की बहुत बुरी दशा होती है ।

धर्मक्षेत्र के लोगों को, उनके व्यावहारिक, सांसारिक कर्तव्यों के प्रति जाग्रत करते हुए आचार्यदेव कहते हैं '**उचितवेलया आगमनम्** ।' दीर्घद्रष्टि से यह बात कही गयी है । अर्थ–पुरुषार्थ और काम–पुरुषार्थ, गृहस्थ जीवन के साथ जुड़े हुए पुरुषार्थ हैं । उन पुरुषार्थों की उपेक्षा नहीं करने की है । इस विषय में पहले अध्याय के प्रवचनों में मैंने विस्तार से समझाया हुआ है ।

## मनुष्य का जीवन सापेक्ष है :

चाहे मनुष्य गृहस्थ हो या साधु हो, उसका जीवन दूसरे मनुष्यों के साथ जुड़ा हुआ है । जीवन में दूसरों की अपेक्षा रहती ही है । किसी न किसी रूप में अपेक्षा रहती है । ये अपेक्षाएँ मुख्य रूप से तीन प्रकार की होती हैं : अर्थ की अपेक्षा, काम की अपेक्षा और धर्म की अपेक्षा । कोई हमारी अपेक्षाएँ पूर्ण करें, हम दूसरों की अपेक्षाएँ पूर्ण करें – यह संसार–व्यवहार है । अर्थ और काम की अपेक्षाओं पर अंकुश रखनेवाला तत्त्व है धर्म । परंतु ये तीनों पुरुषार्थ परस्पर बाधक नहीं बनने चाहिए । यदि आप मंदिर से या उपाश्रय से उचित समय पर घर नहीं पहुँचते हैं, तो अर्थ–पुरुषार्थ एवं काम–पुरुषार्थ में बाधा पहुँचती है ! अर्थ–पुरुषार्थ बिगड़ता है, काम–पुरुषार्थ बिगड़ता है ! इससे आपके मन में और परिवार के लोगों के मन में अशान्ति, असंतोष वगैरह दोष पैदा होते हैं । धर्मध्यान नहीं होता है । तत्त्वचिंतन नहीं होता है । इसलिए हर कार्य उचित समय पर करते रहें ।

## दूसरों की शांति का विचार करें :

एक बात भूलना नहीं कि आपके परिवार में अशान्ति होगी, तो आप भी अशान्त बनोगे । जैसे आप अपनी शान्ति चाहते हो, वैसे परिवार की शान्ति का भी गंभीरता से विचार करो । परिवार की शान्ति का विचार किये बिना, आप शान्ति नहीं पा सकेंगे । इस प्रकार परिवार के सभी सभ्यों को सोचना चाहिए । 'मेरे निमित्त घर में किसी को अशान्ति नहीं होनी चाहिए ।' यह विचार यदि घर के सभी लोग करने लग जायँ, तो घर में किसी प्रकार की अशान्ति नहीं रह सकती है ।

**सभा में से :** 'घर के लोग दूसरों की शान्ति–अशान्ति का विचार ही नहीं करते हैं, सभी अपने–अपने तान में गुलतान !'

**महाराजश्री :** एक भाई ने अभी अभी चार–पाँच दिन पूर्व मुझे कहा था : महाराज सा. कल रात ग्यारह बजे तक घोर अशान्ति रही । लड़की शाम को पाँच बजे घर से गयी थी । हमेशा शाम को सात–आठ बजे घर आ जाती है । कल रात को दस बजे तक नहीं आयी । दस–बारह जगह फोन किये, कोई पता नहीं लगा । लड़की की माँ रोने लगी । लड़के इधर–उधर खोजने गये । ग्यारह बजे वह स्वयं आ गई । उसकी माँ ने पूछा : 'कहाँ गई थी ? इतनी देर कहाँ लगा दी ?' अकड़कर लड़की ने जवाब दिया : 'मैं कहीं पर भी जाऊँ, मुझे पूछने की जरूरत नहीं ।' और वह अपने कमरे में चली गई । कहिए, अपनी लड़की को भी पूछ नहीं सकते कि वह कहाँ गयी थी ! और हम रात को ग्यारह बजे तक चिंता करते रहे । लड़की को विचार नहीं आया कि मैं देरी से जाऊँगी, तो मेरे माता–पिता को चिंता होगी, अशान्ति होगी । वह चाहती तो कहीं से भी फोन कर सकती थी ।

उस भाई की बात, आज घर–घर की बात बन गई है । कोई किसी की शान्ति का विचार नहीं करता है । फिर भी एक–दूसरे का मोह बना रहता है ! यह आश्चर्य नहीं है ? पत्नी, पति को अशान्त करती रहती है, फिर भी पति का मोह टूटता नहीं है ! पति, पत्नी को अशान्त करता रहता है, फिर भी पत्नी का मोह टूटता नहीं है ! लड़के माता–पिता को अशान्त करते रहते हैं, फिर भी माता–पिता का पुत्रमोह टूटता नहीं है । बहु, सासु को अशान्त करती रहती है, फिर भी सासु का मोह कम होता नहीं है ! विरक्ति–वैराग्य आता नहीं है।

उचित वेला में सभी कार्य करने चाहिए । उचित वेला में मंदिर जाया करो, उचित वेला में साधु–समागम किया करो, उचित वेला में घर आया करो, उचित वेला में दुकान जाया करो । उचित वेला में अपने कर्तव्यों का पालन किया करो । ऐसा करने से आपका श्रावक जीवन यशस्वी और निरूपद्रवी बनेगा । हाँ, उचित समय में यदि आप कार्य नहीं करेंगे, तो कष्ट–आपत्ति पा सकते हो । फिर, वहाँ आप कर्म का दोष नहीं देखना । कर्म का दोष देखते रहोगे,

तो आपका पुरुषार्थ–प्रयत्न सुधरेगा नहीं । आप अपने प्रयत्न का संशोधन करें।

## मनुष्य जीवन में पुरुषार्थ प्रधान है :

पुरुषार्थ में संशोधन करने की बजाय हम कर्म का दोष देखते रहते हैं, इसलिए हमारा पुरुषार्थ सुधरता नहीं है । कर्म के सिद्धान्त को हम लोगों ने एकान्त रूप से पकड़ लिया है । जो कुछ भी होता है और भविष्य में होगा, वह सब कर्म से ही होगा – ऐसा हमने मान लिया है । इससे कितना विघातक परिणाम आता है, क्या आप सोच सकते हो ? सबसे खराब परिणाम आया है निष्क्रियता का । हमारे पुरुषार्थ में नवीनता नहीं आती है, तेजस्विता नहीं आती है । दो–चार बार पुरुषार्थ निष्फल जाने पर हम पुरुषार्थ छोड़ देते हैं, ऐसा मानकर 'हमारे भाग्य [कर्म] में कार्यसिद्धि है ही नहीं ।' हम अपनी हार मान लेते हैं ।

तीर्थंकर भगवंतों ने मनुष्य जीवन में पुरुषार्थ को सर्वोपरि बताया है । कहा है : **पुरुषार्थाराधनकालोऽयम्** । पुरुषार्थ की साधना करने का यह मनुष्य जीवन का काल है । इसमें कर्मों का दोष देखते हुए, हाथ पर सर टेककर बैठना नहीं है । पुनःपुनः पुरुषार्थ करना है । पुरुषार्थ में निष्फल जाने पर, पुरुषार्थ में कहाँ भूल हुई, यह खोजो । भूल दिखने पर उसको सुधारो और पुनः पुरुषार्थ करो।

आपको जिस समय व्यापार करना था, उस समय नहीं किया और जो अर्थलाभ प्राप्त करना था, नहीं कर पाये । क्या भाग्य का दोष मानोगे या आपके पुरुषार्थ का ? आप अपने पुरुषार्थ का दोष देखें । दूसरी बार आप समय पर व्यापार करेंगे ।

आप घर में अथवा बाजार में, सामाजिक क्षेत्र में या राजकीय क्षेत्र में, जो भी कार्य करेंगे, जो भी व्यवहार करेंगे, आपका व्यवहार धर्मप्रधान होगा । आप धर्मनिरपेक्ष कोई भी व्यवहार नहीं करेंगे ।

## धर्मप्रधान व्यवहार किया करें :

ग्रंथकार आचार्यदेव धर्माचार्य थे । उनका जीवन धर्ममय था । वे प्रजा को अर्थप्रधान और कामप्रधान उपदेश कैसे देंगे ? वे तो प्रजा को अर्थ और काम से मुक्त करने की भावनावाले थे । उन्होंने कहा : '**धर्मप्रधानो व्यवहारः** ।' चाहे

आप अर्थ की प्रवृत्ति करें या काम की प्रवृत्ति करें, उस प्रवृत्ति पर 'धर्म' का प्रभाव, धर्म की मर्यादा रहनी चाहिए ।

पैसा कमाना अर्थ-पुरुषार्थ है । परंतु अन्याय, अनीति और बेईमानी से पैसा नहीं कमाना । यह धर्म की मर्यादा, धर्म का प्रभाव, धर्म की प्रधानता है ! यह बात, इस ग्रंथ के पहले अध्याय के प्रवचनों में विस्तार से समझायी है, इसलिए आज विस्तार नहीं करता हूँ ।

काम-पुरुषार्थ को थोड़ा-सा स्पष्ट रूप से समझाना है । काम का अर्थ मात्र 'सेक्सी' प्रवृत्ति नहीं करना है । काम-पुरुषार्थ में शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श के भोग-उपभोग का समावेश होता है । जिनको इस विषय का वास्तविक ज्ञान नहीं होता है, वे लोग काम-पुरुषार्थ का अर्थ मात्र 'मैथुन-क्रिया' ही करते हैं ! इसलिए काम-पुरुषार्थ को ठीक ठीक ढंग से समझाना है ।

## काम-पुरुषार्थ :

- अपने कानों से शब्द श्रवण करना काम-पुरुषार्थ है ।
- अपनी आँखों से रूप-दर्शन करना काम-पुरुषार्थ है ।
- अपने नाक से गंध ग्रहण करना काम-पुरुषार्थ है ।
- अपनी जिह्वा से रस-स्वादन करना काम-पुरुषार्थ है, और
- अपनी जननेन्द्रिय से मैथुन-सेवन करना काम-पुरुषार्थ है । स्त्री-पुरुष संभोग की सभी क्रियाएँ काम-पुरुषार्थ में समाविष्ट होती है ।

इस काम-पुरुषार्थ को धर्म-पुरुषार्थ में बदलने की द्रष्टि होनी चाहिए । यदि ज्ञानद्रष्टि होती है, तो कर्मबंधन की जगह कर्म-निर्जरा हो सकती है ।

**सभा में से :** यह कैसे संभव हो सकता है ?

**महाराजश्री :** सुनो ध्यान से, समझाता हूँ !

– कानों से शब्द श्रवण करते समय 'मुझे क्या सुनना चाहिए और मुझे क्या नहीं सुनना चाहिए' इस बात का विवेक होना चाहिए । मुझे किसी के दोषों की निन्दा नहीं सुनना है, दूसरों के गुणों की प्रशंसा सुनना है । मुझे स्वप्रशंसा

भी नहीं सुनना है । मुझे जिनेश्वर भगवंत के वचन सुनने हैं ! सुनना काम–पुरुषार्थ है, परंतु जिनवचन सुनना धर्म–पुरुषार्थ बन जाता है । सुनना काम–पुरुषार्थ है, परंतु दूसरों के गुणानुवाद सुनना धर्म–पुरुषार्थ है !

– आँखों से देखना काम–पुरुषार्थ है, परंतु जो शुभ है उसको देखना धर्म–पुरुषार्थ है । जिनमंदिर, जिनमूर्ति, सद्गुरु, साधर्मिक वगैरह को शुभ भाव से देखना धर्म–पुरुषार्थ है । किसी भी वस्तु को या व्यक्ति को यदि आप ज्ञानद्रष्टि से देखते हों, तो वह धर्म–पुरुषार्थ बन जाता है ! हनुमानजी ने संध्या के समय आकाश में बादलों की रमणीय रचना को देखा था न ? देखना काम–पुरुषार्थ है, वह महत्त्वपूर्ण नहीं है, उन्होंने किस द्रष्टि से देखा था, यह महत्त्वपूर्ण था। देखने पर विरक्ति का भाव पैदा हुआ था । दुनिया से लगाव टूट गया था ! वहाँ से उनकी मुक्तियात्रा का प्रारंभ हुआ था ।

बादलों को तो हम भी देखते हैं न ? कभी, वह देखकर जीवन की क्षणभंगुरता का विचार आया ? कभी जीवन की वास्तविकता का चिंतन किया ? नहीं ! क्योंकि हम देखते अवश्य हैं, परंतु देखना आता नहीं है । तत्त्वद्रष्टि से देखना आता नहीं है ! यदि तत्त्वद्रष्टि खुल जाय, तो फिर कुछ भी देखो न ! आप कर्मबंध नहीं करेंगे, कर्मनिर्जरा ही होती रहेगी ! कुरूप स्त्री को देखो या रूपवती स्त्री को देखो, आपके दर्शन में कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है ! निर्धन को देखो या धनवान को देखो; आपका दर्शन सम्यग् ही होगा, सम्यग् दर्शन धर्मपुरुषार्थ ही कराता है ।

– वैसे गंध ग्रहण करना काम–पुरुषार्थ है, परंतु दुर्गंध आने पर दुगंछा नहीं करना और सुगंध आने पर राग नहीं करना – यह धर्म–पुरुषार्थ है । यह बात मनुष्य के स्वयं के लिए है, परंतु परमात्मा के मंदिर में सुगंधी धूप करने में आनन्द आता है, परमात्मा का जाप–ध्यान करते समय सुगंधी वातावरण पसंद करते हैं, तो यह भी धर्म–पुरुषार्थ ही कहा जायेगा ।

परंतु मात्र आनन्द–प्रमोद के लिए आप इत्र–सेंट–एसेन्स वगैरह का उपयोग करते हैं, तो वह काम–पुरुषार्थ ही कहा जायेगा । वैसे :

– भोजन करना काम–पुरुषार्थ है, परंतु रात्रि में भोजन नहीं करना धर्म–

पुरुषार्थ है; भक्ष्य ही खाना, अभक्ष्य नहीं खाना धर्म–पुरुषार्थ है । कम खाना, कम वस्तु खाना, रसास्वाद कम करना धर्मपुरुषार्थ है ! भोजन करने पर भी आसक्ति नहीं होना, धर्म–पुरुषार्थ है ! इसलिए तो भोजन करते–करते भी 'केवलज्ञानी' बने हैं न ? चाहिए ज्ञानद्रष्टि ! ज्ञानद्रष्टि होने पर, कामक्रिया करने पर भी पापकर्मों का बंधन नहीं होता है !

– जिह्वा से जैसे भोजन–रसास्वाद किया जाता है, वैसे बोलने की क्रिया भी होती है ! बोलना काम–पुरुषार्थ है, कामक्रिया है परंतु प्रिय एवं हितकारी बोलना धर्मपुरुषार्थ बन जाता है ! असत्य नहीं बोलना धर्म–पुरुषार्थ बन जाता है । शास्त्रानुसारी बोलना धर्म–पुरुषार्थ बन जाता है ।

– मैथुन की क्रिया काम–पुरुषार्थ है, परंतु अपनी पत्नी के साथ ही मैथुनक्रिया करना, परस्त्री के साथ नहीं करना, धर्म–पुरुषार्थ बन जाता है ! श्रावक का चौथा व्रत यही है न ? स्वस्त्री–संतोष एवं परस्त्री का त्याग । व्रत यानी धर्म ।

धर्म–पुरुषार्थ की प्रधानता का यह अर्थ है । अर्थ–पुरुषार्थ और काम–पुरुषार्थ करते हुए भी प्रधानता धर्म–पुरुषार्थ की रहनी चाहिए । दिन और रात के २४ घंटों में ज्यादा समय आपका धन–संपत्ति प्राप्त करने में, उसका संरक्षण करने में एवं वैषयिक सुख भोगने में जाता है, फिर भी आप ज्ञानद्रष्टि के माध्यम से धर्म–पुरुषार्थ को प्रधान बना सकते हो । जीवन के प्रत्येक कार्य को धर्म के रंग से रंग देना है । ऐसा नहीं कि दो–चार धर्मक्रियाएँ कर लें और बाद में अर्थ–पुरुषार्थ एवं काम–पुरुषार्थ में आसक्त बने रहें ।

**सभा में से :** हमारी तो यही दशा हो गई है ! दो–चार धर्मक्रिया कर लेते हैं, नवकारवाली फेर लेते हैं, पूजा–सामायिक–प्रतिक्रमण कर लेते हैं, परंतु पैसे की आसक्ति और विषयासक्ति बढ़ती जा रही है ।

**महाराजश्री :** मैं जानता हूँ आपकी इस परिस्थिति को ! धर्मक्रियाओं को ही आपने धर्म–पुरुषार्थ मान लिया है ! अर्थ–पुरुषार्थ और काम–पुरुषार्थ को धर्म–पुरुषार्थ में बदलने की कल्पना भी आपको नहीं है । इसलिए आप लोगों का व्यवहार अशुद्ध बन गया है । व्यवहार क्या है ? अर्थ–पुरुषार्थ और काम–पुरुषार्थ ही व्यवहार है । यदि इन पुरुषार्थों के उपर धर्म का रंग नहीं चढ़ता

है, तो व्यवहार अशुद्ध बनेगा ही । व्यवहार–शुद्धि करना है, तो धर्म को जीवन में जीने का प्रयत्न किया करो । धर्म करने की बात नहीं है, जीने की बात है ! आप लोग कुछ धर्मक्रियाएँ करके संतोष कर लेते हो ! धर्म को जीते नहीं हो। घर में धर्म नहीं रहा, बाजार में धर्म नहीं रहा । इसलिए धर्म की प्रधानता नहीं रही !

'धर्मप्रधानो व्यवहारः' चाहिए – ऐसा कहने का तात्पर्य यही है कि व्यवहार में धर्म की झलक आनी चाहिए । तभी व्यवहार–शुद्धि आयेगी । ग्रंथकार ने प्रथम अध्याय में व्यवहार–शुद्धि की एक–एक बात बहुत ही स्पष्टता से बतायी है ।

सभा में से : वर्तमान विषम काल में क्या व्यवहार–शुद्धि संभवित है ?

महाराजश्री : व्यक्तिगत रूप से संभवित है, समष्टिगत रूप से संभव न भी हो !

सभा में से : व्यक्ति समष्टि का ही अभिन्न अंग है न ?

महाराजश्री : है, फिर भी व्यक्ति व्यक्ति है, समष्टि समष्टि है ! व्यक्ति स्वयं स्वतंत्र है । अलबत्त, उसमें नैतिक हिंमत होनी चाहिए । सिद्धान्तनिष्ठ बने रहने के लिए, आदर्शों को जीवन में जीने के लिए दृढ़ मनोबल होना चाहिए । ऐसे लोग इस वर्तमान काल में भी हैं ! मैं जानता हूँ ऐसे महानुभावों को । आप कहेंगे कि ऐसे लोग लाख में एक–दो होंगे ! तो मैं कहूँगा कि आप वैसे बनेंगे, तो तीन की संख्या हो जायेगी ! वैसे एक–एक बढ़ते जायेंगे, तो संख्या कितनी बढ़ सकती है ?

आप लोग व्यवहार–शुद्धि – धर्मप्रधान व्यवहार क्यों नहीं कर सकते हो, इसका कारण जानते हो क्या ? इसका मूल कारण है : धनधान्यादि में असंतोष ! असंतोष की आग भड़क रही है आप लोगों के दिल और दिमाग में । इस विषय में आगे विवेचन करूँगा ।

आज बस, इतना ही ।

* * *

# प्रवचन : ३९

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में श्रावक जीवन का विशद विवेचन किया है। जिस किसी स्त्री-पुरुष को समुचित श्रावक जीवन जीना है, उसके लिए यह तीसरा अध्याय अच्छा मार्गदर्शक बन सकता है। बारह व्रतों का वर्णन-विवेचन तो दूसरे अनेक ग्रंथो में प्राप्त होता है, परंतु श्रावक की दिनचर्या एवं भावात्मक भूमिका जो इस ग्रंथ में प्राप्त होती है, दूसरे किसी ग्रंथ में नहीं मिलती है।

आप श्रावक हैं, गृहस्थ हैं, दूसरे गृहस्थों के साथ आपको व्यवहार करना पड़ता है। धार्मिक क्षेत्र में, सामाजिक क्षेत्र में, राजकीय क्षेत्र में आपको कार्य करने के होते हैं। उन सभी क्षेत्रों में आपका व्यवहार शुद्ध रहना चाहिए। कहीं पर भी अनीति, अन्याय और बेईमानी नहीं होनी चाहिए। परंतु आज आप लोगों का व्यवहार शुद्ध है क्या ? क्यों नहीं है ? आपने कभी गंभीरता से सोचा है क्या ? नहीं, आप इस विषय में सोचते ही नहीं। ग्रंथकार आचार्यदेव ने कहा है : 'द्रव्ये संतोषपरता।' धन-संपत्ति में संतोषी बने रहिए ! यदि संतोषी नहीं बने रहोगे, असंतोष बढ़ता जायेगा, तो अनेक अनर्थों में फँस जाओगे।

## पापों का मूल असंतोष :

धन-संपत्ति में जिसको संतोष नहीं होता है, वह किसी भी उपाय से धन कमाने का पुरुषार्थ करता रहेगा। उपाय सही हो या गलत ! उपाय का विवेक रहेगा ही नहीं। प्रायः हर व्यापार में बेईमानी हो गई है न ? हर व्यापार में अनीति और मिलावट हो गई है न ? क्यों ? मनुष्य को लाखों-करोड़ों रुपये कमाने हैं। सभी को धनवान बन जाना है। इसलिए मनुष्य पुण्य-पाप भूलता जा रहा है। धर्म और अधर्म को भूलता जा रहा है। संतोष है ही नहीं। असंतोष की आग भभक रही है आप लोगों के दिल-दिमाग में।

ऐसी मनःस्थिति में और अशुद्ध व्यवहार में आप क्या श्रावक बनोगे ? ऐसे

लोग श्रावक बन ही नहीं सकते। मात्र व्रत धारण करने से श्रावक नहीं बना जा सकता है। मात्र मंदिर जाने से श्रावक नहीं बन सकते हैं। मात्र उपदेश श्रवण करने से श्रावक नहीं बन सकते हैं। श्रावक तो संतोषी होता है! संतोष से अपनी जीवनयात्रा करता जाता है। अनीति, अन्याय, चोरी, असत्य, बेईमानी वगैरह, श्रावक से सौ कोस दूर रहते हैं।

## श्रावक का संतोष कैसा हो ? :

श्रावक के विचार इस प्रकार होते हैं : 'मुझे क्या चाहिए ? भोजन में उष्ण घी से चुपड़ी हुई रोटी हो, पहनने को अखंड वस्त्र हो और दूसरों की दासता नहीं हो; बस, इससे ज्यादा मुझे नहीं चाहिए।' इस ग्रंथ के टीकाकार आचार्यश्री ने इतना ही बताया है। मैं कुछ बढ़ाकर कहता हूँ : 'रहने को छोटा-सा घर चाहिए, परिवार का योगक्षेम हो सके उतनी आय होनी चाहिए, बच्चों की शिक्षा, औषधोपचार, शादी-व्यवहार वगैरह सरलता से संपन्न हो सके उतनी आय होनी चाहिए! बराबर है न ? इससे ज्यादा नहीं चाहिए न ?'

सभा में से : मुझे ज्यादा नहीं चाहिए, परंतु मेरी पत्नी को ज्यादा चाहिए! पत्नी को नहीं चाहिए ज्यादा, बच्चों को बहुत ज्यादा चाहिए! इससे घर में क्लेश होता है। घर में सभी के समान विचार नहीं होते हैं।

महाराजश्री : सर्व प्रथम आपका निर्णय होना चाहिए कि मुझे संतोषी बनना है। पैसे के पीछे पागल नहीं बनना है। आपका निर्णय होने के बाद, आप यदि बुद्धिमान हैं, तो आपकी पत्नी को संतोषी बना सकते हो। धीरे धीरे उसको समझाने का प्रयत्न कर सकते हो। कुछ घरों में तो मैंने देखा है कि स्त्री संतोषी होती है, पुरुष को संतोष नहीं होता है। स्त्री कहती है अपने पति को : 'अब आप धंधा छोड़ दो। लड़कों को सौंप दो दुकान। बहुत पैसे हैं अपने पास। निवृत्ति ले लो और चलें अपने पालिताना, गिरनार वगैरह तीर्थों में। अब शान्ति से आत्मकल्याण करते रहें। घर में भी अपने अपनी धर्म-आराधना करते रहेंगे। सारा व्यवहार लड़कों को और पुत्रवधुओं को सौंप दें!' कहती हैं ऐसी बातें पत्नी! परंतु पतिदेवों को पसंद नहीं आती है! क्योंकि संतोष नहीं है! लाखों रुपये पास होने पर भी, दिन-रात दौड़धूप करते रहते हैं!

मेरे एक परिचित भाई को मैंने कहा : 'आपकी उम्र ५० वर्ष की हुई । अब आप रात्रिभोजन नहीं करें । सूर्यास्त के पहले बाजार से घर पहुँच जाया करें ! आप नौकर नहीं हैं, किसी की गुलामी नहीं है ।'

उन्होंने मुझे कहा : 'आपकी बात सही है, परंतु संध्या के समय इतना सारा काम रहता है कि मैं सूर्यास्त के पूर्व घर पहुँच ही नहीं सकता हूँ ।'

हालाँकि मैं जानता हूँ कि उनके दो लड़के ऑफिस में बैठते हैं और अच्छी तरह काम सँभालते हैं । उनकी तरफ से पिता को कोई रुकावट भी नहीं है, परंतु पिता को संतोष नहीं है ! उनको रात में नौ बजे के पहले भूख ही नहीं लगती है ! क्योंकि ऑफिस में दिनभर कुछ न कुछ खाने–पीने का कार्यक्रम चलता ही रहता है ! सही बात है न ! फिर शाम को ६ बजे भूख कैसे लग सकती है ? रात्रिभोजन करने में कोई भय नहीं लगता है ! कोई घबराहट नहीं लगती है, कोई भूल नहीं लगती है !

मूल कारण है असंतोष ! पैसे का असंतोष ! जीवनपर्यंत पैसे ही कमाने हैं । परंतु याद रखना कि जीवन में पैसे ही सब कुछ नहीं है ! करोड़ों रुपये होने पर भी आप शान्ति से भोजन नहीं कर सकते, परिवार के साथ प्रेम से बात नहीं कर सकते, बच्चों के साथ आनन्द से आधा घंटा भी बैठ नहीं सकते ! न परमात्मा का स्मरण–दर्शन कर सकते हैं, न साधुपुरुषों का परिचय कर सकते हैं, न धर्मग्रंथों का अध्ययन कर सकते हैं, न अपने सामाजिक व्यवहारों को निभा सकते हो । ऐसे करोड़ों रुपयों का क्या करना ? व्यर्थ हैं वे रुपये ।

## असंतोष से अनर्थों की परंपरा :

'अर्थ से अनर्थ !' आपने सुना होगा कई बार ? जानने पर भी आप अर्थोपार्जन में संतोष नहीं करोगे, तो एक दिन आप अनर्थों से, आपत्तियों से बर्बाद हो जाओगे ।

मैंने एक कहानी पढ़ी थी, आज वह कहानी सुनाता हूँ : बरसों पहले एक युवा, अपने पौरुष की परीक्षा के लिए भटकता हुआ एक सुंदर घाटी में पहुँच गया । वह घाटी वृक्षों की हरियाली और चमकीले फूलों से भरी थी । वहाँ उस युवा ने आसपास खड़े पहाड़ों की ओर देखा तो उसे एक पर्वत की दुर्गम चोटी

दिखाई दी, जो बर्फ से चमचमा रही थी । उस युवक ने सोचा : 'मैं इसी पर्वत पर अपना जोर आजमाऊँगा !' उसने चमड़े की अपनी कमीज़ पहनी, कंबल अपने कंधों पर डाला और चोटी पर चढ़ने के लिए बढ़ चला ।

वह शिखर पर पहुँच गया ! जैसे कि दुनिया के एक छोर पर खड़ा हो गया । उसका हृदय आनन्द से भर गया था । तभी उसे अपने पैरों के पास सरसराहट सी सुनाई दी । नीचे देखने पर उसे एक साँप दिखाई दिया । साँप बोल उठा :

'मैं नहीं बचूँगा यहाँ । यहाँ बेहद सर्दी है और मेरे लिए यहाँ आहार भी नहीं है । मुझे तुम अपनी कमीज़ में रखकर नीचे घाटी तक ले चलो ।'

युवक ने कहा : 'नहीं, मैं तुम जैसों को जानता हूँ । तुम विषैले साँप हो । मैं तुम्हें उठाऊँगा तो तुम मुझे ही काट लोगे और मैं मर जाऊँगा ।'

साँप ने कहा : 'नहीं, ऐसा नहीं, मैं तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार नहीं करूँगा। तुम मेरी सहायता करोगे तो मैं तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँचाऊँगा ।'

युवक ने अपने आप पर काफी देर तक नियंत्रण रखा, लेकिन साँप भी बराबर अनुनय-विनय करता रहा । अंततः युवक ने उसे उठाकर अपनी कमीज़ के भीतर धर लिया और उसे लेकर घाटी की ओर चल दिया । घाटी में पहुँच कर उसने साँप को सँभालकर भूमि पर रख दिया । अकस्मात् साँप ने कुंडली मारी, फन लहराया और लपककर युवक के पैर में काट लिया !

युवक चिल्लाया : 'लेकिन तुमने जो वादा किया था.....'

साँप ने सरक कर, आगे बढ़ते हुए कहा : 'तुमने मुझे उठाया था, तब भी तुम जानते थे कि मैं क्या हूँ ।'

हॉलीवुडी फिल्मों का एक अभिनेता '**आयरन आईज कोडी**' यह कहानी अनेक युवकों को कहता है और मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करने की प्रेरणा देता है। मैं भी सभी मादक द्रव्यों में कातिल मादक द्रव्य 'अर्थ' से बचने के लिए आप लोगों को कहता हूँ । अर्थ यानी धन-दौलत, रुपये-पैसे, वैभव-संपत्ति ! साँप जैसी है ! अर्थ साँप जैसा है । एक दिन वह जरूर काटेगा और मारेगा ! इसलिए कहता हूँ कि अर्थप्राप्ति में संतोष करें ।

## अपरिग्रह का आदर्श भूला जा रहा है :

मुझे कभी–कभी विचार आता है कि हम लोगों ने यानी जैनों ने अहिंसा का विचार और आचार आज भी भुलाया नहीं है । एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों की दया का पालन आज भी बहुत–से जैन करते हैं । परंतु 'परिग्रह पाप है,' यह बात स्मृति में भी नहीं रही है ।

**सभा में से :** हम सुबह–शाम प्रतिक्रमण में १८ पापस्थान के नाम बोलते हैं, तब 'पाँचवा परिग्रह' बोलते हैं !

**महाराजश्री :** बोलते समय हृदय में चोट लगती है क्या ? हमारी मान्यता अपरिग्रह की है और प्रवृत्ति परिग्रह बढ़ाने की रही है । हिंसा करनेवालों की हम निन्दा करेंगे, भर्त्सना करेंगे, परंतु परिग्रही की निन्दा नहीं करते ! हिंसा करनेवालों को हम पापी कहते हैं; परिग्रही को, ज्यादा पैसेवाले को, धनवान को हम पुण्यशाली कहते हैं । इसलिए हम भी पुण्यशाली बनने का पुरुषार्थ करते हैं, सही बात है न ?

अपरिग्रह आपका आदर्श बनेगा, तो संतोष सहजता से आ जायेगा । 'मुझे इस जीवन में अपरिग्रही बनना है, मात्र जीवननिर्वाह के लिए ही उपार्जन करना है, ज्यादा पैसे नहीं चाहिए, ज्यादा संपत्ति नहीं चाहिए ।' यह आदर्श सदैव स्मृति में रहना चाहिए । जीवननिर्वाह के लिए जितने पैसे चाहिए, आप उतना प्रयत्न करते रहें । यदि ऐसा दृढ़ संकल्प कर लिया, तो धनवान लोगों से भी ज्यादा आनन्द आप पाओगे । चित्त शान्त हो जायेगा । शान्त चित्तवालों का सुख, आंतर–सुख अनुपम होता है । क्योंकि वे सदैव संतोषामृत का पान करते रहते हैं ।

संतोष को अमृत कहा गया है ! आप लोग मानोगे ? अभी तो आप लोगों को परिग्रह अमृत समान लगता होगा ? लेकिन परिग्रह अमृत नहीं है, वह तो जहर है । आपको आज नहीं तो कल, मानना ही पड़ेगा कि परिग्रह जहर है । हलाहल विष है । जब आपको इस बात की प्रतीति होगी, तब आपको संतोष अमृत समान लगेगा । आप संतोषी बन जाओगे । आप श्रेष्ठ आंतर–सुख का अनुभव करोगे ।

## जीवन की राह बदलनी होगी :

आपको जब इस तथ्य की अनुभूति होगी कि अपार धन–संपत्ति, धनभंडार हमें सही सुख नहीं दे सकता है, सही संतोष नहीं दे सकता है, उसी क्षण से हम एक और ही जीवन जीने लगेंगे । हमारे जीवन की राह बदल जायेगी ।

अधिक द्रव्यप्राप्ति से आपको क्षणिक आनन्द अवश्य मिलेगा, परंतु आत्मिक सुख के साथ उसका कोई मेल नहीं होता है । द्रव्यप्राप्ति का क्षणिक आनंद दीर्घकालीन दुःख में भी बदल सकता है । संतोष–परितोष का सुख, जो कि अद्भुत सुख है, उसके भाग्य में नहीं होता है ।

श्रावक का जीवन द्रव्य–लोलुपता से मुक्त होना चाहिए ।

**सभा में से :** श्रमण भगवान महावीर स्वामी के श्रावक आनंद, कामदेव वगैरह के पास तो विपुल धन–संपत्ति थी ।

**महाराजश्री :** विपुल धन–संपत्ति होना एक बात है, धन–संपत्ति की लोलुपता होना दूसरी बात है । आनन्द, कामदेव वगैरह की अनासक्ति के विषय में आपने कभी सुना है या पढ़ा है ? पुण्य के उदय से उन महान श्रावकों को विपुल धन–संपत्ति मिली थी, परंतु वे जलकमलवत् जीवन जीते थे !

सहजता से, पुण्यकर्म के उदय से आपको करोड़ों रुपये मिल जाय, तो कोई बात नहीं है । आपको समझना चाहिए कि आपके पास करोड़ों विषैले साँप आ गये हैं । आप सावधान रहें ताकि वे आपको काटे नहीं । आप शीघ्र उस संपत्ति से मुक्त होने का सोचेंगे । संपत्ति में कभी भी आसक्त नहीं बनेंगे ।

## आनन्द श्रावक :

आप आनन्द श्रावक की बात करते हो न ? आनन्द श्रावक बारह व्रतों का पालन करते थे । जानते हो किस प्रकार वे पालन करते थे ? उपवास भी करते थे और पौषध भी करते थे । यह सब करते करते १४ वर्ष व्यतीत हो गये थे, पन्द्रहवाँ वर्ष जब चल रहा था, एक समय रात्रि के उत्तरार्ध में, धर्मानुष्ठान करते करते उनको विचार आया : "मैं वाणिज्यग्राम नगर में बहुत लोगों का आधार हूँ, इसलिए मैं कुछ व्यग्रता का अनुभव करता हूँ । इस कारण में श्रमण भगवान

महावीर के श्रेष्ठ धर्म का स्वीकार नहीं कर सकता हूँ । इसलिए यह अच्छा होगा कि सूर्योदय होने पर, ज्येष्ठ पुत्र को सारी जिम्मेदारी सौंप दूँ और मैं निवृत्त बन, कोल्लागसन्निवेश में जाकर, ज्ञातकुल की पौषधशाला में रहता हुआ भगवान महावीर के श्रेष्ठ श्रावकधर्म की पालना करूँ !'

जैसा सोचा वैसा किया उस महान श्रावक ने ! कुटुम्ब का सारा बोझ जयेष्ठ पुत्र को सौंप दिया और कहा : 'भविष्य में मुझसे किसी प्रकार की बात मत पूछना !'

करोड़ों रुपये की संपत्ति होना एक बात है, उस संपत्ति के प्रति ममत्व नहीं रखना, दूसरी बात है । आनंद, कामदेव वगैरह श्रावकों के पास जो विपुल संपत्ति थी, वह पहले से थी । जब वे श्रावक नहीं बने थे, भगवान महावीर नहीं मिले थे, तब से थी । जब भगवान महावीर का संपर्क हुआ, तब द्रष्टि बदल गई ! द्रष्टि अपरिग्रह की बन गई । परिग्रह का परिमाण कर लिया और मन को तत्त्वचिंतन में लगा दिया ।

ग्रन्थकार की बात आप सही अर्थ में समझने का प्रयत्न करें । वे जो संतोष की बात कहते हैं, बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है । आपके मन में असंतोष नहीं होना चाहिए । द्रव्यप्राप्ति का असंतोष, आपके मन को धर्मध्यान नहीं करने देगा । शुभ विचार नहीं करने देगा । तत्त्वचिंतन नहीं करने देगा । इसलिए उन्होंने कहा कि द्रव्यप्राप्ति में संतोष कर लो । मात्र जीवननिर्वाह के लिए ही अर्थप्राप्ति का पुरुषार्थ करते रहो । भाग्योदय होने पर विपुल धन–संपत्ति की प्राप्ति हो जाय, तो उसमें आसक्त मत बनो । शुभ कार्यों में उस संपत्ति का विनियोग कर दो।

## संतोष से दानधर्म का पालन सरल :

संतोष होगा तो आप सोचेंगे : 'मुझे जीवन–निर्वाह के लिए कितने रुपये चाहिए ? बहुत थोड़े, तो फिर इतने सारे रुपयों को क्यों मेरे पास रखूँ ? क्यों न दानधर्म की आराधना करूँ ? सात शुभ क्षेत्रों में संपत्ति का विनियोग करता रहूँ, दुःखी जीवों का उद्धार करता रहूँ । जीवदया के कार्य करता रहूँ ।' ऐसे विचार करते रहने से दानधर्म का पालन सरल बन जायेगा । चाहिए संतोष ।

**सभा में से :** शुभ कार्य करने की इच्छा होती है, परंतु धन का ममत्व छूटता नहीं है, आसक्ति छूटती नहीं है ।

**महाराजश्री :** 'ममत्व, आसक्ति अच्छी नहीं है, उसका परिणाम अच्छा नहीं होता है' इस विषय में विचार करते रहो । धन की आसक्ति से जीवन में कैसी कैसी बुराइयों का प्रवेश हो जाता है, यह बात सोचते रहो ।

– धन की लोलुपता से जीवहिंसा के विचार आते हैं ।

– धन की आसक्ति से झूठ बोला जाता है ।

– धन के ममत्व से चोरी भी मनुष्य करता है ।

– धन की आसक्ति से मनुष्य अनीति, अन्याय, बेईमानी करता है ।

– धन की आसक्ति मनुष्य को दुर्गति में ले जाती है ।

यदि दुर्गति में नहीं जाना है, नरक गति और तिर्यंच गति में नहीं जाना है, तो धन की आसक्ति मिटा दो । अनासक्त बन, दानधर्म की आराधना करते रहो । धन–संपत्ति की आसक्ति छूटने पर आप अनेक प्रकार के धर्मों की आराधना कर सकोगे । जीवन धर्ममय बन जायेगा ।

## धर्मे धनबुद्धि :

'मेरे लिये धर्म ही धन है !' बुद्धिमान पुरुष, दरिद्र अवस्था में भी कभी दीनता नहीं करता है कि 'मेरा पापकर्म का उदय है, क्या करूँ ? मेरी दरिद्रता कब दूर होगी ?' नहीं, ऐसा विचार बुद्धिमान व्यक्ति नहीं करेगा । 'मेरे पास धर्म है, श्रुतधर्म है, चारित्र धर्म है; बस, वही धन है, वही दौलत है !' ऐसा तात्त्विक विचार करते रहना चाहिए । ऐसे विचारों से 'संतोष' दृढ़ बनता जाता है ।

दो मित्र हैं । बचपन से मित्रता है । एक मित्र २५ लाख के फ्लेट में रहता है, दूसरा १० x १२ के कमरे में रहता है । एक दिन धनवान मित्र ने कहा : 'तू मेरे साथ धंधा कर । दो वर्ष में ५–१० लाख रुपये कमा लेगा !' संतोषी मित्र ने कहा : 'मुझे ५–१० लाख रुपये नहीं चाहिए । मैं महिने में दो हजार रुपये कमाता हूँ । दो हजार में जीवन–निर्वाह हो जाता है । कोई व्यसन नहीं है, सिनेमा–नाटक देखता नहीं हूँ । सादगी से रहता हूँ । पत्नी और बच्चों को भी ये ही

संस्कार दिये हैं ! और धर्म–आराधना शान्ति से होती रहती है । अब, तूँ ही बता कि मुझे ५–१० लाख रुपये किसलिए चाहिए ? इस कमरे में कोई तकलीफ नहीं है ।'

धनवान मित्र ने कहा : 'इतने छोटे कमरे में तकलीफ तो होती ही है, तूँ मानता नहीं तकलीफ को, यह बात दूसरी है ।'

संतोषी मित्र ने कहा : 'वैसे तो तुझे कितनी बड़ी तकलीफें हैं ? तेरा धंधा मैं जानता हूँ । कितना भय और कितनी चिंताएँ बनी रहती हैं ? मैंने तो धर्म को ही धन माना है । सच्चा धन धर्म ही है । ठीक है, परिवार का गुजारा करना अपना फर्ज है, इसलिए अर्थोपार्जन करना पड़ता है, परंतु मुझे दो हजार में संतोष है ।'

फ़ालतू खर्च बंद करोगे क्या ? केवल मौज–मजा में कितने खर्च करते हो ? खर्च बढ़ाओगे, तो ज्यादा पैसा कमाना पड़ेगा ! ज्यों ज्यों पैसा बढ़ेगा, त्यों त्यों खर्च बढ़ेगा; खर्च बढ़ेगा, तो पैसा ज्यादा कमाना पड़ेगा । यह विषचक्र चल रहा है । व्यसन भी कितने बढ़ा दिये हैं आपने ? पान–सिगरेट और मावा तो सामान्य बन गया है । हॉटलों में खाना फैशन बन गया है । ऐसी स्थिति में धर्म कैसे पसंद आयेगा ?

## सभी इच्छाओं की सिद्धि धर्म से :

'धर्मबिंदु' ग्रन्थ के टीकाकार आचार्यश्री कहते हैं : '**धर्मः सकलाभिलषिताविकलसिद्धिमूलम् ।**' सभी इच्छाओं की परिपूर्ण सिद्धि का मूल है धर्म ! समझे न ? मानोगे यह बात ? सहजता से आपकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो – वैसा आप चाहते हो क्या ? तो आपको धर्म की शरण लेनी ही पड़ेगी ।

धर्म की शरण लेनी यानी श्रुतधर्म और चारित्रधर्म की शरण लेनी होगी । सर्वप्रथम श्रुतधर्म की शरण लेनी चाहिए । श्रुत यानी ज्ञान । ज्ञान प्राप्त करना होगा । ज्ञानी सद्गुरु के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करना होगा । इसलिए ऐसे ज्ञानी पुरुष के संपर्क में आना पड़ेगा । ज्ञानी और चारित्री पुरुषों का संपर्क–परिचय ही महान उपकारक बन जायेगा ।

## 'परिचय पातक–घातक साधु शुं' :

सत्पुरुषों का परिचय मात्र, मनुष्य के पातकों का–पापों का नाश करनेवाला बनता है । अलबत्त, परिचय निष्कपट हृदय का होना चाहिए । हृदय निर्मल होना चाहिए । दृष्टि गुणग्राही होनी चाहिए । गुणग्राही दृष्टि से, सद्गुरु का विनय करते हुए, उनसे ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । सर्वप्रथम जीवतत्त्व को, आत्मतत्त्व को समझना चाहिए । बाद में पुण्य और पाप को समझना चाहिए ! आठ प्रकार के कर्मों के विषय में भी अच्छी जानकारी पानी चाहिए । ज्यों ज्यों आपको ज्ञान–प्रकाश प्राप्त होता जायेगा, आपका भीतरी आनन्द बढ़ता जायेगा ।

आगे बढ़ते हुए आपको ज्ञान का फल प्राप्त होगा ! विरतिधर्म का स्वीकार करने की भावना जागृत होगी । बहुत से पाप छूट जायेंगे । निष्पाप जीवन के प्रति अभिरुचि प्रगट होगी । 'श्रुतधर्म और चारित्रधर्म ही सच्चा धन है,' इस वचन की प्रतीति होगी । धनप्राप्ति से जो सुख मिलता है, उससे बहुत ही ज्यादा सुख धर्मप्राप्ति से मिलता है । यह अनुभव की बात है । आप प्रत्यक्ष देखते हो न कि धनवानों से ज्यादा सुखी धर्मशील पुरुष होते हैं ! इसलिए तो धनवान मनुष्य धर्मशील पुरुष के चरणों में झुकता है !

## ज्यादा सुखी कौन ? निर्णय करें :

गंभीरता से सोचने की यह बात है । सोचना तो पड़ेगा ही । ज्यादा सुखी कौन है ? धनवान या धर्मशील मनुष्य ? भगवान उमास्वातीजी ने 'प्रशमरति' ग्रंथ में कहा है कि 'जो सुख चक्रवर्ती राजा के पास नहीं होता है, वह सुख धर्मात्मा के पास होता है !'

एक बात समझ लेना कि सुख का संबंध मन और आत्मा के साथ होता है । सुख के, भौतिक सुख के अनेक साधन आपके पास होने मात्र से आप सुखी नहीं हो सकते । वैसे देखा जाय तो जिनके पास वैषयिक सुख के ज्यादा साधन हैं, वे ज्यादा दुःखी होते हैं ! फिर भी क्या पता, सुख के साधनों का मोह बढ़ता ही जा रहा है ! लगता है कि स्पर्धा चल रही है सुख के साधनों को घर में बसाने की ! व्यापारी विज्ञापनों के माध्यम से प्रजा को ललचाने का

भरसक प्रयत्न कर रहे हैं । भोले-भाले लोग आकर्षित हो जाते हैं । सुख के साधनों को सुख मान लेने की भूल हो रही है ।

साधनों के माध्यम से सुख-दुःख की कल्पना करना बड़ी भूल है । जिनके पास वैषयिक सुख के साधन नहींवत् होते हैं, फिर भी वे सदैव प्रसन्नचित्त, प्रसन्न नयन और प्रसन्न वदन रहते हैं । कभी उनके मुँह पर उदासी नहीं होती है । ऐसे लोग वर्तमान काल में भी हैं ! जैन हैं, अजैन भी हैं ।

महत्त्व की बात यह है कि आप निर्णय करें ! धनवान बनने में सुख है या धर्मशील बनने में ? हाँ, धर्मशील मनुष्य धनवान हो सकता है । परंतु ऐसे लोग धनपरस्त नहीं होते हैं, उनका लगाव धर्म से ही होता है । यदि धर्मशील मनुष्य धनवान नहीं होता है, तो भी उसको अफसोस नहीं होता है । वह धर्म को ही धन मानता है ! वह अपने आपको धर्म-धन का मालिक समझता है । वह कभी किसी के आगे दीनता नहीं करेगा । वह कभी धनवानों की ईर्ष्या नहीं करेगा !

हाँ, यह महत्त्वपूर्ण बात है । धर्मक्रिया करनेवाले, जो कि ज्ञानी नहीं होते हैं, वे धनवानों की अक्सर निंदा करते दिखाई देते हैं ! भले ही धनवान लोग धर्म से विमुख हों, फिर भी उनकी निंदा नहीं करनी चाहिए ।

**सभा में से :** धनवान लोग धार्मिक लोगों की निंदा कर सकते हैं क्या ?

**महाराजश्री :** नहीं करनी चाहिए निन्दा, फिर भी धार्मिक लोगों को निन्दा सुनकर, निन्दकों के प्रति रोष नहीं करना चाहिए, परंतु आत्मनिरीक्षण करना चाहिए ।

## धार्मिक लोग आत्मनिरीक्षण करें :

अपनी भूलों को खोजों और भूलों को सुधारने का प्रयत्न करो । भले ही स्वयं भूल करनेवाले लोग आपकी भूलों की आलोचना करते हों, करने दो आलोचना । आपको आत्मनिरीक्षण करने का अवसर मिलता है न ? आत्मनिरीक्षण करना बहुत ही आवश्यक बन गया है ।

धर्म करनेवाले लोग जब धन की लालसा में, धन की आसक्ति में डूबते हैं; तब उनका व्यवहार अशुद्ध बन जाता है । अशुद्ध आचार-व्यवहारवाला

मनुष्य निन्दा का पात्र बन ही जाता है ! जो लोग धर्म नहीं करते हैं, उनका अशुद्ध व्यवहार जितना निन्दापात्र नहीं होता है, उससे ज्यादा निन्दापात्र अशुद्ध व्यवहार धार्मिक व्यक्ति का होता हैं । चोर तो चोरी करता ही है, वह निन्दापात्र भी होता है, परंतु चोरी को रोकनेवाला पुलिस चोरी करता है, तो वह ज्यादा निंदापात्र बनता है ।

धर्मक्रिया करनेवाले आप लोग, क्या धर्म को ही धन मानकर, धर्म की आराधना करते हो ? नहीं न ? आप लोग समझते हैं कि धर्म धर्म की जगह है, धन धन की जगह है ! इससे, आपकी मनोवृत्ति धार्मिक नहीं बनी है । धन के उपर जितना प्यार है, उतना प्यार धर्म के उपर नहीं है । यदि आप श्रावक हैं, तो आपका लगाव धन से ज्यादा धर्म के प्रति होना चाहिए । आप धनवान होते हुए भी, आपके मन में महत्ता धर्म की ही होनी चाहिए ।

## धन का अवमूल्यन, धर्म का मूल्यांकन :

आपके मन में धन का मूल्यांकन नहीं होना चाहिए । श्रावक के मन में धन की महत्ता रहनी ही नहीं चाहिए । महत्ता रहनी चाहिए धर्म की । इस प्रकार का मानसिक परिवर्तन, श्रुतधर्म से आता है । बिना श्रुतधर्म, चारित्रधर्म इस प्रकार परिवर्तन नहीं ला सकता है । "**धर्मे धनबुद्धिः ।**" सामान्य बात नहीं है । बहुत ही कठिन बात है । धर्म के विषय में गहन ज्ञान प्राप्त किये बिना, बुद्धि निर्मल नहीं बनती और धर्म में आसक्त नहीं बनती । ज्यों ज्यों तत्त्वज्ञान बढ़ता जायेगा, तत्त्वचिंतन बढ़ता जायेगा, आत्मनिरीक्षण होता जायेगा, त्यों त्यों धन–संपत्ति की आसक्ति से मन मुक्त होता जायेगा । धन का अवमूल्यन होगा, धर्म का मूल्यांकन होगा । आपके मन में से धन की महत्ता साफ हो जायेगी ।

धन की महत्ता जब मन में नहीं रहेगी, तब संतोष आ जायेगा और धर्मशीलता आ जायेगी । '**धर्म ही सच्चा धन है, परलोक में साथ चलनेवाला है**' – यह बात हृदय में अंकित हो जायेगी ।

धन की महत्ता ही मन में नहीं रहेगी; तब हिंसा, झूठ, चोरी, वगैरह अनेक पापों से आप मुक्त हो जाओगे । क्रोध, अभिमान और माया के पापों से भी छूटकारा मिल जायेगा ।

'धर्म ही धन है' – यह बात मन स्वीकार लेता है, तब धर्म–पुरुषार्थ में अपार उत्साह और अपूर्व आनन्द उल्लसित होता है। श्रावक जीवन की तब सार्थकता प्रतीत होती है। आप लोग वैसी सार्थकता प्राप्त करें।

आज बस, इतना ही।

* * *

# प्रवचन : ४०

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में श्रावक जीवन के व्रतों के साथ–साथ दैनिक चर्या भी बताई है। इतनी अच्छी जीवनशैली बताई है कि यदि आप इस प्रकार जीने का प्रयत्न करें, तो अनेक आफतों से एवं क्लेशों से बच जाओ। इस प्रकार की जीवन–पद्धति का स्वीकार करने के लिए, सर्वप्रथम तो आपको गतानुगतिकता एवं अनुकरणशीलता का त्याग करना पड़ेगा। हालाँकि इस २०वीं शताब्दी में भी आप 'धर्मबिंदु' निर्दिष्ट जीवन–पद्धति से जी सकते हो। कोई तकलीफ की बात नहीं है। चाहिए श्रावक जीवन जीने की तमन्ना!

अर्थोपार्जन में संतोष रखने की बात कहने के बाद ग्रन्थकार ने धर्म को ही धन मानने की मार्मिक बात कही है। यानी एक असाधारण बुद्धिमत्ता की बात बतायी है। श्रुतधर्म को और चारित्रधर्म को धन मानकर चित्तसंतोष प्राप्त करने की बात, भौतिक संपत्ति की तीव्र स्पृहा से भरे हुए आपके दिमाग में प्रवेश भी पायेगी क्या? यदि यह बात आपके दिमाग में जँच गई, तो जीवन सुधर गया समझ लो! क्योंकि संसार में सबसे बड़ा आकर्षण धन–संपत्ति का होता है। प्रगाढ़ ममत्व और तीव्र आसक्ति होती है। यदि यह ममत्व टूट जाता है, तो बहुत से प्रश्न सुलझ जाते हैं। धन–संपत्ति चाहे स्थावर हो या जंगम। उस पर की अधिकार की भावना, ज्यादा से ज्यादा पाने की भावना खत्म हो जानी चाहिए। तब जाकर जीवन में मजा आयेगा।

## जीने का आनन्द अनासक्ति में है :

एक परिचित परिवार की बात है। दो भाई का संयुक्त परिवार था। माता–पिता स्वर्गवासी हो गये थे। छोटा भाई उस समय ५–६ साल का होगा। बड़े भाई और भाभी ने बहुत प्रेम से उसको बड़ा किया था, पढ़ाया था और शादी भी कर दी थी। शादी होने तक उस परिवार में कोई क्लेश नहीं था, कोई मतभेद नहीं था। शादी होने के बाद आंतरिक मतभेद शुरू हुए। छोटे भाई की पत्नी

का दिल–दिमाग द्रव्य की आसक्ति से, ममत्व से भरा हुआ था। उसने अपने पति को धन–संपत्ति का मूल्य समझाया ! आपस के प्रेम का अवमूल्यन करती चली। कुछ महिनों तक तो छोटा भाई अपने शुद्ध विचारों में दृढ़ रहा। अपने भाई–भाभी के प्रति उसका प्रेम और विश्वास दृढ़ रहा। परंतु पत्नी के 'हेमरींग' ने उसके विचारों को विकृत बना डाले। एक दिन उसने बड़े संकोच के साथ बड़े भाई को कहा : 'मुझे अलग रहना है !'

बड़े भाई ने प्रसन्नता से कहा : 'अलग रहने में यदि तूँ सुखी रहता है, तो मुझे कोई एतराज नहीं है। जब चाहे तब अलग हो सकता है। तुझे जो घर पसंद हो, ले ले ! तुझे जो दुकान पसंद हो, ले ले ! सोना, चाँदी, जेवर, बरतन वगैरह जो चाहिए तूँ ले ले।'

छोटा भाई रो पड़ा ! बड़े भाई ने उसको अपनी छाती से लगाकर कहा : 'क्यों रोता है ? यह तो संसार की नियति है। साथ होना और बिछड़ना–यह तो संसार का अनादिकालीन क्रम है। सब भाग्य के, कर्मों के आधीन है। रो मत। तूँ अलग रहेगा, इससे तूँ मेरा भाई मिट नहीं जायेगा। मेरा और तेरी भाभी का प्रेम उतना ही रहेगा, जितना आज है !'

रोते रोते छोटा भाई बोला : 'नहीं नहीं, मुझे आपसे अलग नहीं होना है। मैं आपके साथ ही रहूँगा। आप और भाभी के बिना मेरा जीना अशक्य है।'

छोटे भाई की पत्नी यह दृश्य देख रही थी, दोनों भाइयों का वार्तालाप सुन रही थी। आज सर्वप्रथम उसने बड़े भाई की अनासक्ति का दर्शन किया था। अपने छोटे भाई को सब कुछ देने के लिए उनकी तैयारी देखकर वह दिंग रह गई थी। उसने पितृगृह में छोटी छोटी वस्तु के लिए अपने भाइयों को लड़ते देखे थे। माता–पिता को झगड़ते देखे थे। यहाँ जो कुछ वह देख रही थी और सुन रही थी, वह उसकी कल्पना से बाहर का था। परिवार विभक्त नहीं हुआ। संयुक्त ही रहा।

## जिनशासन की उन्नति करें :

जब आपका जीवन श्रावक जीवन बनेगा, तब आप जिनशासन की उन्नति

कर पायेंगे । श्रावक–श्राविका, जिनशासन की उन्नति करने में तत्पर होते हैं। वे जिनशासन को यथार्थ रूप में समझते हैं और उन्नति के उपायों को भी जानते हैं । आप लोग 'जिनशासन' का अर्थ जानते हैं न ?

**सभा में से :** हम तो 'जिनशासन' की जय बुलाना जानते हैं, ज्यादा कुछ नहीं ।

**महाराजश्री :** इससे तो बड़ा अनर्थ हो रहा है । मनघड़ंत अर्थ करने से संघ और समाज को नुकसान हो रहा है । 'जिनशासन' का अर्थ, टीकाकार आचार्यदेव ने बहुत ही मार्मिक बताया है ।

**जिनस्य शासनम् = निखिलहेयोपादेयभावाविर्भावनभास्कर–कल्पस्यजिननिरूपितवचनम्** । जिनशासन यानी जिनवचन । सर्वज्ञ शासन यानी सर्वज्ञ के वचन । आप लोगों को जिनवचनों की उन्नति करने की है । यानी दुनिया के लोगों को जिनवचन श्रेष्ठ लगे, प्रिय लगे, वैसे उपाय करने के हैं। इसलिए सर्वप्रथम अपने स्वयं को सुधरना पड़ेगा ।

## जिनवचन की महानता :

ग्रन्थकार का यह कहना है कि जैसा जिनवचन है, उस जिनवचन के अनुसार अपना जीवन बनायें । जिनवचनानुसार आपका जीवन देखकर दुनिया के लोग आपसे प्रभावित होंगे । जिनवचन के प्रति आकर्षित होंगे । ऐसे ही जीवन जीने का है श्रावक–श्राविकाओं को ।

जिनवचन हेय और उपादेय का विवेक समझाते हैं । जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश, जो वस्तु जैसी होती है वैसी बताता है न ? वैसे जिनवचन हेय को हेय और उपादेय को उपादेय बताते हैं । छोड़ने योग्य जो होता है, वह हेय कहलाता है; स्वीकार–ग्रहण करने योग्य, जो होता है वह उपादेय कहलाता है । जिनागमों में ये सारी बातें बतायी गई हैं । आपको यदि जिनशासन की उन्नति करना है, तो ये सारी बातें जाननी पड़ेगी । इतना ही नहीं, जो छोड़ने योग्य है वह छोड़ना होगा ओर स्वीकार करने योग्य का स्वीकार करना होगा । आप अपनी शक्ति एवं भावना के अनुसार यह काम कर सकते हो ।

जिससे आपकी आत्मा पापकर्म बाँधती है, वह सभी छोड़ने योग्य होता है। जिससे आपकी आत्मा पुण्यकर्म बाँधती है, वह सभी स्वीकार करने योग्य होता है। जिससे कर्मों की निर्जरा होती है, वह सभी स्वीकार्य होता है।

## समझें, छोड़ें और स्वीकारें :

पहली बात है समझने की। जब तक जिनवचनों को समझोगे नहीं तब तक उल्टी बात चलती रहेगी! हेय का स्वीकार करते रहोगे और उपादेय का त्याग करते रहोगे। आज से करीबन् २५ साल पूर्व, गुजरात की सरदार युनिवर्सिटी में प्रवचन देने मैं गया था। एक कॉलेज में प्रवचन देते हुए मैंने कुछ हेय-उपादेय की बातें कहीं। प्रवचन के बाद कुछ छात्र-छात्राएँ मेरे पास आये और बोले : 'हम तो ये बात जानते ही नहीं थे। आज मालुम हुआ कि हमें क्या खाना चाहिए, क्या नहीं खाना चाहिए! कैसी कैसी प्रवृत्ति करनी चाहिए और कैसी कैसी प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए।' बाद में उन्होंने बहुत प्रश्न पूछे थे, मैंने उनका समाधान करने का प्रयत्न किया था। परिणामस्वरूप उन छात्र-छात्राओं ने कुछ गलत प्रवृत्तियाँ छोड़ दी थी।

जाने बिना कैसे छोड़ सकते हो? जाने बिना स्वीकार भी कैसे कर सकते हो? इसलिए कहता हूँ कि प्रतिदिन जिनवचन सुनते रहो। जहाँ जहाँ सुचारू रूप से जिनवचनों का अनुवाद होता हो, जिनवचनों का प्रवचन होता हो, वहाँ जाकर सुनते रहो। आप जिनवचनों को जानोगे और तदनुसार जीवन बनाओगे, तो अवश्य दुनिया जिनवचनों की प्रशंसा करेगी! यही है जिनशासन की उन्नति!

इस सूत्र की टीका में आचार्यश्री ने सात उपाय बताये हैं जिनशासन की उन्नति के। पहले मैं सात उपायों के नाम बताता हूँ, बाद में एक एक उपाय को स्पष्टता से समझाऊँगा।

१. सम्यग् न्यायपूर्ण व्यवहार,

२. लोगों का यथोचित विनय,

३. दीन और अनाथों का उद्धार,

४. सुविहित साधुपुरुषों का पुरस्कार,

५. परिशुद्ध शीलपालन,

६. जिनमंदिर का निर्माण और

७. विविध महोत्सवों का आयोजन ।

ये हैं सात उपाय । कितने अच्छे हैं ये उपाय ? क्रम भी कितना बढ़िया बताया है ? जिनशासन की उन्नति, जिनशासन की प्रभावना ऐसे उपायों से करनी चाहिए । सर्वप्रथम आप लोगों को अपना व्यवहार सुधारना होगा ।

## सम्यग् न्यायपूर्ण व्यवहार :

लोगों के साथ आपका व्यवहार न्यायपूर्ण होना चाहिए । पैसे के लेन–देन में, वस्तु की लेन–देन में बहुत ही अच्छा न्यायपूर्ण व्यवहार करना होगा । आपस के संबंधों में भी आपका व्यवहार सुचारु रहना चाहिए ।

व्यवहार मार्ग की उपेक्षा नहीं करना है । यदि उपेक्षा करोगे, अन्यायपूर्ण व्यवहार करोगे, तो जिनशासन की उन्नति की जगह अवगति करनेवाले बनोगे । जिनशासन की निन्दा में आप निमित्त बनोगे ।

लोग आपको 'जैन' 'श्रावक' के रूप में जानते–पहचानते हैं । आपका अन्यायपूर्ण व्यवहार 'जैन' का, 'श्रावक' का अन्यायपूर्ण व्यवहार बन जायेगा । दुनिया के लोग कहेंगे : 'जैनी लोग बेईमान होते हैं ।' आगे चलकर बोलेंगे : 'क्या जैन धर्म मात्र त्याग–तपश्चर्या का ही धर्म है ? न्याय–नीति और ईमानदारी का उपदेश जैन धर्म नहीं देता है ?'

**सभा में से :** ऐसी बातें तो होती रहती हैं ।

**महाराजश्री :** फिर भी आप जोर–जोर से चिल्लाते हो 'जैनं जयति शासनम् !' समझते कुछ नहीं और चिल्लाते रहते हो । आपका व्यवहार न्यायपूर्ण होना चाहिए । किसी के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार नहीं करना है ।

न्याय और अन्याय का भेद करने की आपमें बुद्धि चाहिए । यदि वैसी बुद्धि नहीं है, तो बुद्धिमान सत्पुरुषों की राय लेनी चाहिए । कुछ उदाहरणों से यह बात बताता हूँ :

## जिनशासन की उन्नति के कुछ उपाय :

एक श्रावक के घर में १०/१५ वर्ष से एक नौकर काम करता था। नौकर का परिवार था। पत्नी थी, तीन बच्चे थे। एक दिन अचानक नौकर की मृत्यु हो गई। शेठ के पास नौकर के ५ हजार रुपये जमा थे। नौकर की पत्नी को या बच्चों को मालुम नहीं था। शेठ भी जानते थे कि नौकर की पत्नी को मालुम नहीं है कि उसके पति के ५ हजार रुपये जमा हैं। शेठ, नौकर की मृत्यु के दूसरे ही दिन उसके घर गये और नौकर की पत्नी को एवं बच्चों को आश्वासन दिया। कहा : 'तुम्हारे पति के ५ हजार रुपये मेरे पास थे, लेकर आया हूँ।' पाकीट में से ५ हजार रुपये निकालकर नौकर की पत्नी के सामने रख दिये। नौकर-पत्नी भावविभोर हो गई। शेठ के चरणों में सर रख दिया और कहा : 'शेठ साब, हम जीवनपर्यंत आपकी ही नौकरी करेंगे, आपका एहसान कभी नहीं भूलेंगे।'

औरत ने यह बात अपने स्नेही-स्वजनों को कही, उन्होंने दूसरे लोगों को कही। शेठ की और जैन धर्म की प्रशंसा हुई। यह हुई जिनशासन की उन्नति।

दूसरी घटना है एक जैन डॉक्टर की। एक किराये के मकान में डॉक्टर का दवाखाना था, डिस्पेन्सरी थी। करीबन् ४० वर्ष तक डॉक्टर वहाँ ही कार्य करते रहे। उम्र ७० वर्ष की हो गई। उन्होंने डिस्पेन्सरी बंद कर दी। वे निवृत्त हो गयें।

दो दिन के बाद वे मकानमालिक के पास गये और मकान की चाबी सौंप दी। कहा : 'मैंने डिस्पेन्सरी बंद कर दी है इसलिए मकान आपको सौंप देना चाहिए।' मकानमालिक स्तब्ध रह गया। उसने कहा : 'लेकिन आप एक पैसा भी लिये बिना....' डॉक्टर हँसे और बोले : 'जब आपने मुझे मकान दिया था, तब एक पैसा भी नहीं लिया था; फिर मकान वापस करते समय मुझे भी पैसे नहीं लेने चाहिए। मेरा धर्म मुझे यह सिखाता है।'

जब वह मकान बिका, १८ लाख रुपये मिले ! डॉक्टर चाहते तो १२ लाख डॉक्टर को मिलते, ६ लाख मकानमालिक को मिलते ! बंबई है न ! परंतु डॉक्टर के विचार न्यायपुरस्सर थे। उनके न्यायपूर्ण व्यवहार से वे बहुत प्रशंसा पाये।

जैन धर्म की प्रशंसा हुई । यह हुई जिनशासन की उन्नति ।

तीसरी घटना है मेरे स्वयं की । गुजरात के एक छोटे शहर में हम ठहरे थे । एक दिन स्थानिक हाईस्कूल के हेडमास्तर अपने ५ साथी शिक्षकों के साथ मेरे पास आये और विनय से बोले : 'हमारी विनती है कि आप 'गीताजयंति' पर हमारी हाईस्कूल में पधारे और 'गीता' के उपर प्रवचन दें ।' मैने सहर्ष उनकी विनती का स्वीकार किया और गया हाईस्कूल में । 'गीता' के उपर अनेकान्त द्रष्टि से प्रवचन दिया । वहाँ के हेडमास्तर ने 'गीता' को लेकर एम. ए. किया हुआ था । वे तो इतने खुश हुये कि उस दिन रात में मेरे पास आये और 'गीता' के विषय में मेरे द्रष्टिबिंदुओं से बहुत हीं प्रभावित होकर गये । सारे गाँव में जैन धर्म की प्रशंसा फैल गई । 'जैन मुनि ने गीता पर प्रवचन दिया ! गीता के विषय में कई विचार करने योग्य बातें बताई !' जैन धर्म की, जिनशासन की उन्नति हुई ।

न्यायपूर्ण व्यवहार के पालन के लिए, आपके पास ज्ञानद्रष्टि चाहिए । उदार और उदात्त द्रष्टि चाहिए । मूलमार्ग और अपवाद मार्ग का ज्ञान चाहिए । यह ज्ञान नहीं होता है तो कभी व्यवहारमार्ग में क्षति हो जाती है । ऐसी एक घटना मुझे याद आती है । गुजरात के एक छोटे शहर में हमारा चातुर्मास था । एक दिन दोपहर में संघ के प्रमुख मेरे पास आये और कहने लगे : आज सुबह गाँव के प्रमुख नागरिकों की मीटिंग थी । अभी हाईस्कूल का जो मकान है वह छोटा पड़ रहा है, दूसरे आठ नये कमरे बनाने का निर्णय हुआ । निर्णय इस प्रकार हुआ कि दो कमरे जैनसमाज बनाये, दो कमरे ब्राह्मणसमाज बनाये, दो कमरे पटेलसमाज बनाये और शेष दो कमरे अन्य-अन्य जातिवाले बनायें । मैंने दुकान पर आकर अपने समाज के ५-७ आगेवानों को बुलाकर योजना बतायी, तो एक भाई बोला : 'हाईस्कूल में जो व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है, वो तो पापशिक्षा है, वहाँ अपने कमरे नहीं बनवा सकते हैं ।' हम सब विचार में पड़ गये । अब क्या करना ? गाँव में रहना है, हमारे बच्चों को भी वहाँ ही पढ़ने के लिए भेजते हैं । यदि कमरे नहीं बनवाते हैं, तो पटेल वगैरह जातिवालों के साथ संबंध बिगड़ते हैं, क्या करना चाहिए ? आपके पास इसलिए ही आया हूँ । आप मार्गदर्शन

देने की कृपा करें ।'

मैंने कहा : आप संघ की मीटिंग मेरे पास बुलवाइये । मीटिंग में ही मैं मार्गदर्शन दूँगा । जिसको जो कुछ पूछना होगा, पूछ सकेंगे । मैं जवाब दूँगा ।

संघप्रमुख ने मीटिंग बुलाई । मैंने कहा : भगवान की आज्ञा है कि लोगविरुद्ध कार्य नहीं करना चाहिए । जिससे बहुजन समाज नाराज होता हो, वैसा काम नहीं करना चाहिए । आप लोग गृहस्थ हैं, आपके बच्चों को व्यावहारिक शिक्षा देना अनिवार्य है । हाईस्कूल का काम पूरे नगर का है । आपको नगर के साथ रहना चाहिए । यदि आप अलिप्त रहे, नगर के लोगों ने मिलकर प्रस्ताव पारित कर दिया कि 'जैनसमाज के बच्चों को हाईस्कूल में प्रवेश नहीं दिया जाय ।' तो क्या करोगे ? इसलिए न्यायपूर्ण व्यवहार का अनुसरण करो । आप यदि दो कमरे या चार कमरे बनवा देते हो तो धर्मविरुद्ध काम नहीं है । ज्यादा कमरे बनवा कर दोगे तो जिनशासन की शान बढ़ेगी ।' वहाँ ही दो की बजाय चार कमरे बनवाने का निर्णय किया गया । हाईस्कूल के कार्यकर्ताओं को सूचित किया गया । वे लोग बहुत खुश हुए । नगर में जैनसंघ की प्रशंसा हुई । यह हुआ जिनशासन का जयजयकार ! चिल्लाने से जयजयकार नहीं होता है, न्यायपुरस्सर व्यवहारमार्ग का अनुसरण करने से जयजयकार होता है ।

धर्म के सिद्धान्तों को अनेकान्त द्रष्टि से समझने की आवश्यकता है । अपनी द्रष्टि को, समझदारी को सम्यग् बना ले और ज्ञानी पुरुषों का मार्गदर्शन लेते चलो, जिनशासन की उन्नति होती चलेगी । अपना सबका परम कर्तव्य है कि अपने जिनशासन की उन्नति में अपना योग–सहयोग प्रदान करें ।

## पारिवारिक जीवन में कैसा व्यवहार करते हो ? :

जिस प्रकार दूसरे लोगों के साथ, दूसरे समाजों के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करने का है; वैसे आपके घर में भी स्वजनों के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करने का है । मैंने कई जगह देखा है कि समाज में न्याय–अन्याय की बातें करनेवाले, न्याय मागनेवाले लोग अपने घर में स्वजनों के साथ अन्याय ही करते हैं, अन्यायपूर्ण व्यवहार करते हैं ।

– एक भाई से मेरी बात हुई थी । वे अपनी माता के भक्त थे । मातृभक्त होना अच्छा है, परंतु पत्नी को अन्याय करना गलत है । वे सदैव माता के पक्ष में न्याय करते थे । पत्नी मौन रहती थी । वह अन्याय को सहन करती जाती थी । परंतु कब तक वह सहन करती रहती ? पति, पत्नी की एक बात भी सुनने को तैयार नहीं था । एक दिन पत्नी ने जलकर आत्महत्या कर ली । अन्यायपूर्ण व्यवहार का यह दुष्परिणाम आया । आसपास के अन्यान्य समाज के लोगों में इस माता–पुत्र की घोर निन्दा हुई । जिनशासन की मलीनता हुई ।

– दूसरी घटना सुनाता हूँ : दो भाई साथ रहते थे । दोनों भाइयों की पत्नियाँ भी प्रेम से साथ रहती थी । अचानक छोटे भाई की मृत्यु हो गई । मृत्यु के कुछ दिनों के बाद, छोटे भाई की पत्नी के साथ दुर्व्यवहार शुरू हुआ । उसके उपर झूठे कलंक लगाने शुरू हुए । चार–छह महिनों के बाद उस विधवा औरत को घर से बाहर निकाल दिया । न दिया उसका हिस्सा, न दिये उसके जेवर और नहीं दी उसकी छोटी बच्ची । दूसरे मुहल्ले में एक छोटा–सा मिट्टी का कमरा दे दिया उस विधवा को ।

सारे गाँव में बड़े भाई और उसकी पत्नी की निंदा होने लगी । देरासर जानेवाले थे वे दोनों । 'ये जैनधर्म के हैं,' सारा गाँव जानता था । इसलिए धर्म की भी निन्दा होने लगी ।

**सभा में से :** उस विधवा का क्या हुआ ?

**महाराजश्री :** उसने अपूर्व समता रखी । न कभी जेठ की निन्दा की, नहीं जेठानी की भर्त्सना की । वो तो एक ही बात कहती : 'मैंने पूर्व जन्म में पाप किये होंगे, उसका फल मुझे मिला है । समता से भोग लूँगी, तो आनेवाले जन्म में ऐसे दुःख नहीं आयेंगे ।' ज्यादातर तपश्चर्यामय जीवन व्यतीत किया और युवावस्था में ही वह मर गई । लोगों ने उसके जेठ–जेठानी की घोर निन्दा की। जैनशासन की शान नहीं रही ।

याद रखना, आपके उपर दोहरी जिम्मेदारी है – आपके आत्मा की और आपके धर्म की । आत्मा पापकर्मों से बँधे नहीं और आपके निमित्त धर्म की निन्दा न हो – दो बातों की सावधानी रखने की है । ऐसा एक भी दुर्व्यवहार

नहीं होना चाहिए कि जिससे जिनशासन की निन्दा हो ।

इससे विपरीत, तीसरी घटना बताता हूँ । आजकल की ये सच्ची घटनाएँ इसलिए बताता हूँ कि आप लोगों के दिमाग सुधरे और आपका व्यवहार न्यायपूर्ण बनें ।

राजस्थान की यह बात है । अच्छे संस्कारी परिवार की एक लड़की थी । उसकी शादी ऐसे पुरुष के साथ हुई कि जिसकी पत्नी मर गई थी । मृतपत्नी के दो छोटे बच्चे थे । सगे-संबंधी आपस में बातें करते थे – बेचारे फूल जैसे दो बच्चे दुःखी हो जायेंगे । उनकी सौतेली माँ बहुत कष्ट देगी । क्या करें ? शादी नहीं करें तो बच्चों की देखभाल कौन करे ?' वगैरह बातें चलती रहती थी । घर के आसपास के लोग, दो बच्चों को अपने घर में बुलाकर पूछते रहते थे : 'तुम्हारी माँ तुम्हें अच्छा खाना तो खिलाती है न ? तुम्हारी माँ तुम्हें मारती तो नहीं है न ? तुम्हारी माँ तुम्हें अच्छे कपड़े तो देती है न ?' बच्चे एक ही उत्तर देते थे – 'हमारी माँ बहुत अच्छी है ! हम से बहुत प्यार करती है । हमारी बहुत अच्छी देखभाल करती है !'

बच्चों के पिता ने मुझे एक दिन कहा : 'महाराज सा., मेरे सर पर से हिमालय जितना भार उतर गया । दूसरी शादी तो कर ली, परंतु मुझे बच्चों की चिंता सताती थी । लेकिन इस औरत ने कमाल कर दिखाया, बच्चे अपनी जन्मदात्री माँ को भूल गये हैं, इतना प्यार उनको सौतेली माँ से मिलता है । क्या यह बच्चों का पुण्योदय है या मेरा पुण्योदय ?

मैंने कहा : 'आपकी दूसरी पत्नी की न्यायपूर्ण व्यावहारिकता का यह प्रभाव है । उसकी सच्ची धार्मिकता का यह फल है । आपका और बच्चों का पुण्योदय तो है ही, क्योंकि आपको ऐसी व्यवहारदक्ष पत्नी मिली और बच्चों को प्यारभरी माँ मिली ।'

उस पुरुष ने कहा : 'हमारे सगे-संबंधी और मित्रमंडल, आसपास रहनेवाले लोग – सभी इस औरत की प्रशंसा करते हैं । यह तो एक ही बात बोलती है : यह सब मेरे जिनधर्म का प्रताप है । मुझे यह धर्म नहीं मिला होता तो मैं भी दूसरी सौतेली माँ जैसी ही माँ होती !'

जिनशासन की प्रशंसा ऐसे होती है । लोगों के हृदय में जिनधर्म की स्थापना इस प्रकार होती है । न्यायपूर्ण व्यवहार का पालन बहुत ही आवश्यक है । इससे आपका यश, आपकी कीर्ति तो बढ़ेगी ही, जिनशासन की भी अपूर्व प्रशंसा होती रहेगी । हाँ, आपको स्वयं की यशःकीर्ति की चाह नहीं हो तो कोई बात नहीं, जिनशासन की कीर्ति बढ़ाने के लिए भी आपको न्यायपूर्ण व्यवहार करना आवश्यक है ।

इससे आपका पारिवारिक जीवन सुधर जायेगा । परिवार का आपस का प्रेम बढ़ेगा और धर्म–पुरुषार्थ में सभी की प्रगति होगी ।

## राज्य के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार :

जैसे आपको घर में रहना है, समाज में रहना है, वैसे राज्य में भी रहना है। व्यवहार सभी के साथ करना ही पड़ता है । राज्य के साथ भी व्यवहार करना पड़ता है । आपका व्यवहार न्यायपूर्ण होना चाहिए । राज्य के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार रखने से आप निर्भयता से, निश्चिंतता से जी सकते हो ।

अहमदाबाद में एक राजस्थानी व्यापारी पेढ़ी थी । आज भी शायद है । मैंने सुना था कि इन्कमटेक्सवाले उस पेढ़ी का हिसाब–किताब नहीं देखते थे । वह पेढ़ी न्यायपूर्वक टेक्स भर देती थी । कभी–कभी तो चार–पाँच लाख रुपये टेक्स के भरती थी । सरकार में उस पेढ़ी की इज्जत थी । आजकल क्या परिस्थिति है, मैं नहीं जानता ।

**सभा में से :** सरकार के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं कर सकते, क्योंकि सरकार ही प्रजा के साथ अन्याय कर रही है !

**महाराजश्री :** आपके साथ जो अन्याय करता है, उसके साथ आप अन्याय करना उचित समझेंगे, तो फिर आप किसी के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं कर सकेंगे । कोई आपके साथ अन्यायी व्यवहार करे, फिर भी आपको उसके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करना चाहिए, अथवा व्यवहार ही नहीं करना चाहिए ।

दूसरी बात यह है कि राज्य के पास सत्ता है, आपके पास सत्ता नहीं है। परिणाम का विचार करना । आप अन्याय करते पकड़े जाओगे, तो आपत्ति आयेगी,

कष्ट आयेगा । राज्यसत्ता अन्याय भी करेगी, उसको कुछ होनेवाला नहीं है । हाँ, अन्याय के सामने लड़ने की शक्ति हो, कष्ट सहन करने की तैयारी हो, तो राज्यसत्ता के सामने सत्याग्रह करना । परंतु अन्याय करने पर तो आपको कारावास में जाना ही पड़ेगा । आपके साथ साथ आपके परिवार को भी कष्ट सहन करना पड़ेगा । इसलिए राज्य के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार नहीं करें ।

## न्याय से व्यापार करें :

व्यापार में अन्याय नहीं करना चाहिए । अन्याय नहीं करना यानी :

- विश्वासघात नहीं करना ।
- मिलावट नहीं करना ।
- चोरी नहीं करना ।

व्यापार में आपस का व्यवहार करना ही पड़ता है । यदि दृढ़ विश्वास के साथ आप इन तीन बातों का पालन करेंगे, तो आपका व्यापार अच्छा चलेगा, आपकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी और आपका 'लाभांतराय' कर्म भी टूटेगा । अन्याय-अनीति करने से 'लाभांतराय कर्म' बँधता है । यह 'लाभांतराय कर्म' मनुष्य को बहुत सताता है । प्रबल पुरुषार्थ को भी सफल नहीं होने देता है । पुनःपुनः मनुष्य को निष्फल बनाता रहता है ।

व्यापार में न्यायपूर्ण व्यवहार करने से आपकी कीर्ति तो बढ़ेगी, साथ साथ जिनशासन की कीर्ति भी बढ़ेगी ।

ग्रंथकार, जिनशासन की उन्नति करने की बात बताते हैं । हर श्रावक को जिनशासन की उन्नति करने की है । जिनशासन की उन्नति करने से मनुष्य 'तीर्थंकर नामकर्म' बाँध लेता है । टीकाकार ने कहा है -

**कर्तव्या चोन्नतिः सत्यां शक्ताविह नियोगतः ।**
**अवन्ध्यं कारणं ह्येषा, तीर्थकृन्नामकर्मणः ॥**

'तीर्थंकर नामकर्म' बाँधने का यह अवंध्य कारण है ! अवंध्य यानी अवश्य तीर्थंकर नामकर्म बँधता है, जिनशासन की उन्नति करने से । इसलिए :

– जिनशासन की प्रशंसा हो, वैसा न्यायपूर्ण व्यवहार करते रहो ।

– जिनधर्म की कीर्ति बढ़े, वैसे क्रियाकलाप करते रहो ।

– जिनवचन सर्वत्र श्रद्धेय बने, वैसा प्रयत्न करते रहो ।

– जिनशासन का गौरव बढ़े, वैसे कार्य करते रहो ।

समग्र संसार को सुख और शान्ति देने की शक्ति जिनवचनों में है । जो कोई मनुष्य जिनवचनों को पायेगा, श्रद्धा से आत्मसात् करेगा, वह परम शांति अवश्य पायेगा । इसलिए लोगों को जिनवचन के प्रति आकर्षित करने का शुभ कार्य करना ही चाहिए ।

दूसरे उपाय आगे बताऊँगा ।

आज बस, इतना ही ।

* * *

# प्रवचन : ४१

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी, स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में श्रावक जीवन की दिनचर्या बता रहे हैं। श्रावक के दैनिक कर्तव्य बता रहे हैं। उन कर्तव्यों में एक प्रधान कर्तव्य बताया है – **शासनोन्नतिकरणम्**। जिनशासन की उन्नति करना। जिनशासन यानी जिनवचन। अपने जीवन में जिनवचनों का पालन करना, जिनाज्ञा का अनुसरण करना, उच्चकोटि के भावों से पालन करना।

पालन करते करते कभी उत्कृष्ट शुभ भाव आ जाय, तो 'तीर्थंकर नामकर्म' बँध सकता है। जो उत्कृष्ट शुभ भाव, 'तीर्थंकर नामकर्म' बाँधने के लिए चाहिए, वैसा शुभ भाव कभी ही आ सकता है। सभी जीवों को नहीं आ सकता। जिनकी आत्मा बहुत भारी कर्मों से मुक्त होती है और विशिष्ट योग्यता–संपन्न होती है, वैसी आत्मा ही तीर्थंकर नामकर्म बाँध सकती है।

महत्त्वपूर्ण बात है जीवन में जिनाज्ञाओं का यथोचित पालन करने की। सर्वप्रथम जिनाज्ञा, यहाँ सम्यग् न्यायपूर्ण व्यवहार की बताई है। समग्र जीवन–व्यवहार में परिवर्तन ! किसी भी जीव के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार करने का ही नहीं ! जीवन में से अन्याय को दूर खदेड़ देने का है। चाहे कितना भी भौतिक लाभ का प्रलोभन सामने आए, ललचाना नहीं है।

## उचित विनय करते रहो :

दूसरी जिनाज्ञा है विनय करने की। उचित विनय करने का है। अपने पूज्य व्यक्तियों का विनय करने का है। उचित समय में विनय करने का है। जिन–जिन व्यक्तियों के अपने पर छोटे–बड़े उपकार हैं, जो विशिष्ट गुणों के धनी हैं, जो परिवार में, समाज में, देश में विशिष्ट स्थान रखते हैं, उन सभी का विनय करना चाहिए।

सर्वप्रथम माता और पिता का विनय करना चाहिए। क्योंकि जीवन का प्रारंभ उनसे होता है। उनसे प्यार मिलता है, सुख और सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। वे

बच्चों की सारी जिम्मेदारी सँभालते हैं। शारीरिक और मानसिक विकास माता-पिता पर निर्भर होता है। माता-पिता जो खिलाते-पिलाते हैं, वही बच्चे खाते-पीते हैं। माता-पिता ही बच्चों के विचारों को घड़ते हैं। बच्चों के स्वास्थ्य का खयाल भी माता-पिता करते हैं। बच्चों की शिक्षा का प्रबंध भी माता-पिता करते हैं। जो माता-पिता यह सब करते हैं, उनका विनय बच्चों को करना ही चाहिए। विनय करने के संस्कार बचपन से मिलते हैं, तभी वे संस्कार पनपते रहते हैं।

अलबत्त, माता-पिताओं को भी वैसा जीवन-व्यवहार रखना चाहिए कि बच्चों को विनय करने की इच्छा जागृत हो। जो माता-पिता :

- अधिक क्रोधी होते हैं,
- पुनःपुनः गंदे शब्द बोलते हैं,
- बच्चों को मारते हैं,
- व्यसनों का सेवन करते हैं,
- दुराचारी जीवन जीते हैं,
- बच्चों के प्रति लापरवाह होते हैं,
- बुरी बातें करते हैं; बुरे संस्कार देते हैं,

ऐसे माता-पिताओं का विनय नहीं करना चाहिए।

टीकाकार आचार्यश्री ने इसलिए ही 'यथोचित' शब्द का प्रयोग किया है। 'यथोचित-जनविनयकरण' कहा है। अच्छी क्रिया में भी, औचित्य अपेक्षित होता है।

## औचित्य का बोध होना आवश्यक होता है :

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से औचित्य-बोध होना चाहिए। कुछ लोगों को सहज रूप से बोध होता है, कुछ लोगों को बोध कराना पड़ता है।

एक छोटे लड़के ने मुझसे कहा : मेरे पिताजी कहते हैं कि मुझे मेरे चरणों

में प्रणाम नहीं करना। मैंने प्रतिज्ञा ली है कि प्रतिदिन माता-पिता के चरणों में प्रणाम करना। अब में क्या करूँ ?

मैंने उस बच्चे को पूछा : तूँ जब तेरे पिताजी को प्रणाम करने गया, तब वे क्या करते थे ?

बच्चे ने कहा : वे सो रहे थे, जैसे ही मैंने पाँव छुए.... वे गुस्से से बोले - मेरे पैर छूना मत !

बच्चा इतना ही जानता था कि पिता के पैर छूने चाहिए ! परंतु कब छूने चाहिए, किस समय छूने चाहिए, यह बोध उसको नहीं था। पिता की निद्रा बिगड़ने से स्वभाव बिगड़ा और कह दिया : 'मेरे पाँव नहीं छूना !'

हमारे साथ भी कभी कभी अनुचित विनय करते हैं लोग ! जब हम चलते होते हैं, अचानक भोले भक्त लोग सामने आकर पैर पकड़ लेते हैं ! अचानक रूकना पड़ता है, इसलिए बेलेन्स नहीं रहता है, तो नीचे गिर जाने का डर रहता है।

- कई बार शोभायात्राओं में भी लोग ऐसा अविनय करते हैं। करने जाते हैं विनय, हो जाता है अविनय ! जब हम लोग चलते हैं, लोग पाँव पकड़कर दबाने लगते हैं ! अनुचित है इस प्रकार रास्ते में पाँव दबाना।

- कुछ लोग, प्रवचन पूर्ण होने पर हमारे पास झट् से आते हैं और दो हाथों से पाँव दबाने लग जाते हैं ! यह उचित विनय नहीं है। मात्र चरणस्पर्श करना चाहिए, वह विनय है।

- कभी हम लोग स्वाध्याय-ध्यान में निमग्न होते हैं, उस समय कुछ लोग आकर जोर-शोर से वंदन के सूत्र बोलते हुए वंदना करते हैं ! हमारी ध्यान की धारा टूट जाती है ! वंदन करना विनय है, परंतु अयोग्य समय में करना अविनय है।

औचित्य का बोध, बहुत कम लोगों में पाया जाता है। इसलिए वे सही रूप में विनय नहीं कर पाते हैं। हमारे यहाँ तो साधु-साध्वी को विनय की शिक्षा दी जाती है। श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अपनी अंतिम देशना में, सर्वप्रथम

'विनय' का ही उपदेश दिया था। 'उत्तराध्ययन–सूत्र' में पहला अध्याय 'विनय' का ही बताया है ! विनय में विवेक और नम्रता होना अति आवश्यक होता है।

## नम्रता के बिना विनय नहीं :

नम्रता, विनय की आधारशिला है। नम्रता होगी, तो ही विनय कर पाओगे और विनय ही शेष सभी गुणों का आधार है ! भगवान उमास्वाती ने कहा है :

'विनयायत्ताश्च गुणाः सर्वे, विनयश्च मार्दवायत्तः।'

इसलिए मृदुता–नम्रता आपके हृदय में अवश्य चाहिए। हृदय की मृदुता–कोमलता, पारिवारिक जीवन में भी आवश्यक है। आपका हृदय मृदु होगा, कोमल होगा तो आपमें दूसरों के प्रति सहानुभूति होगी, दूसरों के साथ आप प्रेम से बात करेंगे। दूसरों की अवसर पर सराहना करेंगे।

नम्रता कहें, मृदुता कहें या कोमलता कहें, हर मनुष्य के लिए आवश्यक गुण है। हर मनुष्य चाहता है कि उसके साथ लोग नम्रता से बात करें, मृदुता से व्यवहार करें और कोमलता उसके चेहरे पर उभरती रहे।

माता–पिता एवं बुझुर्गों को मैं आज कहूँगा कि आप अपना ऐसा व्यवहार बनाये रखो कि आपके संतान आपका सहजता से विनय करें। आप अपने व्यक्तित्व को ऐसा बनायें कि अपने आप बच्चे आपका आदर करें। बच्चों का प्रेम, आदर और समर्पितता पाना, आपके लिए बहुत ही आवश्यक है। आप यदि इस बात को गंभीरता से नहीं सोचेंगे, तो भविष्य में आपको कटु परिणाम देखना पड़ेगा। परिवार को संयुक्त रखना है, विभक्त नहीं होने देना है, तो आपको कुछ महत्त्वपूर्ण बातें सोचनी होंगी।

## परिवार को अटूट रखने के उपाय :

मोक्षमार्ग की आराधना में, धर्म का पुरुषार्थ करने में संयुक्त परिवार का महत्त्व है। मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए भी संयुक्त परिवार होना आवश्यक है। हालाँकि कुछ लोगों को संयुक्त परिवार में रहना पसंद नहीं आता है, परंतु अलग होने के बाद वे महसूस करते हैं कि हम संयुक्त परिवार में रहते तो अच्छा

होता ।

अमरिका जैसे देश में कि जहाँ संयुक्त परिवार की संस्कृति नहीं है, वहाँ पर भी अब इस विषय पर अनुसंधान होने लगे हैं । अध्ययन होने लगे हैं । अमरिका में अभी अभी एक संस्था अस्तित्व में आयी है – **"फेमिली स्ट्रेंथ्स रिसर्च प्रोजेक्ट"** यानी **'परिवार–दृढ़ता अनुसंधान परियोजना ।'** इस प्रोजेक्ट के संचालक **'निकस्टिनेट एवं जान डिफ्रेन'** ने अमरिका के २५ राज्यों के ४८ अखबारों में एक संक्षिप्त सूचना प्रकाशित करवाई – 'यदि आप अटूट (संयुक्त) परिवार में रहते हैं, तो कृपया हमसे संपर्क करें । परिवार क्यों टूटते हैं, इस बारे में तो हम बहुत कुछ जानते हैं, लेकिन हमें इस बारे में और अधिक जानने की आवश्यकता है कि परिवार अटूट कैसे बने रहे ।'

इस अध्ययन में ३००० से अधिक परिवारों ने भाग लिया । इस अध्ययन से एक आश्चर्यजनक तथ्य उभरकर सामने आया । बहुत सारे परिवारों ने छः महत्त्वपूर्ण रहस्यों का उल्लेख किया, जो किसी परिवार को अटूट और सुदृढ़ बनाते हैं ।

संक्षेप में वे छः रहस्य आपको बताता हूँ ।

१. पहली बात है परिवार के सभी सदस्य एक–दूसरे के कल्याण और सुख की भावनावाले होने चाहिए ! एक–दूसरे के प्रति समर्पित होने चाहिए । उसमें भी एक महत्त्वपूर्ण बात है यौनसंबंध की । यौनसंबंधों की एक–निष्ठता होनी चाहिए । विवाहेतर यौनसंबंध नहीं होना चाहिए । विवाहेतर यौनसंबंध से आपकी पत्नी के आत्मगौरव को भयंकर ठेस पहुँचती है । पति–पत्नी के संबंध में दरार पड़ती है ।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है काम की व्यस्तता । माता–पिता को चाहिए कि वे इतने ज्यादा व्यस्त नहीं रहें कि अपने बच्चों के साथ प्रेम से बात भी नहीं कर सकें । एक सुशिक्षित अमरिकी पिता ने कहा है : 'मैं अपने बेटों के लिए अच्छा पिता सिद्ध होता हूँ, तो इस बात की संभावना है कि वे भी अच्छे पिता बनेंगे । एक दिन जब मैं नहीं रहूँगा तब मेरे पौत्र अथवा प्रपौत्र के निकट एक अच्छा पिता होगा, इसलिए कि मैं एक अच्छा पिता था !'

ऐसे पिता का विनय करने के लिए क्या बच्चों को उपदेश देना पड़ता है ? नहीं, वे स्वयं ही पिता को समर्पित बने रहेंगे ।

२. दूसरा रहस्य है : परिवार के सभी सदस्य साथ साथ उठे–बैठें और साथ साथ सब कुछ करें ! कोई १५०० बच्चों से पूछा गया कि 'तुम्हारे विचार में सुखी परिवार का आधार क्या है ?' तो उन्होंने धन–संपत्ति, कार या शानदार बंगले का नाम नहीं लिया, उनका उत्तर था – 'साथ साथ सब कुछ करना ।'

अटूट परिवारों के सदस्यों में सहमति होती है । वे बहुत सारा समय साथ साथ बिताते हैं । साथ साथ काम करते हैं, साथ साथ खेलते हैं, धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेते हैं और साथ ही साथ खाना खाते हैं ।

साथ साथ जो समय बितायें, वह समय पर्याप्त होना चाहिए और अच्छा भी होना चाहिए । केवल कुछ मिनट साथ बिताने का कोई अर्थ नहीं रहता है और मुँह बिगाड़कर साथ रहना भी कोई महत्त्व नहीं रखता है ।

३. तीसरा रहस्य है : परस्पर की सराहना करना । दूसरों की सराहना पाने की अनुभूति, मानवीय आवश्यकताओं में से प्राथमिक आवश्यकता है । एक माँ ने लिखा है – 'हर रात हम पति–पत्नी, बच्चों के सोने के कमरों में जाते हैं और हरेक को गले लगाते हैं, चूमते हैं । फिर हम कहते हैं – तुम सचमुच अच्छे बच्चे हो । हम तुम्हें बहुत चाहते हैं ।'

कहिये, ऐसे माता–पिता का विनय बच्चे करेंगे या नहीं ? अवश्य करेंगे ।

एक दंपती ने बताया कि हम एक ऐसे जोड़े के परिचय में आये कि जो क्रूर व्यंग्य करने में आनन्द लेता था, विशेष कर आपस में । हमने महसूस ही नहीं किया था कि उनका एक–दूसरे के दोष निकालना और एक–दूसरे को नीचा दिखाना हमारे उपर कितना गलत प्रभाव डाल रहे थे । हमारा द्रष्टिकोण भी नकारात्मक हो चला था । हमने निश्चय किया कि हम उनके साथ उठना–बैठना बंद कर देंगे । पहले हमने नये दोस्त ढूँढे, फिर हमने सकारात्मक बातों पर जोर देना शुरू किया । अब जब मेरे पति घर आते हैं तो कहते हैं – 'आज तो देखता हूँ कि तुम दिनभर बच्चों के साथ ही लगी रही ! तुमने बाल भी

सँवार लिये हैं और खरीदारी भी कर ली है ।' वह मेरे पति, जो काम मैंने नहीं किया हो, उसकी बात ही नहीं उठाते हैं ! और, कभी मेरे पति, एक भी सौदा न कर पाने के कारण निराश होकर घर आते हैं, तो मैं उन्हें याद दिलाती हूँ कि पिछले सप्ताह उन्होंने तीन तीन बढ़ियाँ सौदे निपटाने में सफलता पाई थी !' अब हम, जो कुछ हमारे पास नहीं है उसकी ओर न देख कर वह सब देखते हैं, जो हमारे पास है ।

४. चौथा रहस्य है : स्वस्थ और सहज संवाद । स्वस्थ और सहज संवाद से परस्पर अपनेपन की भावना पनपती है । कुंठाओं तथा संकटों के तनाव शिथिल हो जाते हैं । परंतु उत्तम संवाद यों ही स्थापित नहीं हो जाते हैं । इस स्थिति तक पहुँचने में काफी समय और अभ्यास की आवश्यकता होती है ।

एक पिता ने कहा : हम साधारण बातचीत में बहुत सारा समय बिता देते हैं । कभी कभी हमें ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रकरण, भावनाओं अथवा मूल्यों का पता लगता है, जिन्हें प्रोत्साहित करने की आवश्यकता होती है । मेरा बेटा अगर मुझसे कार, टेनिस या क्रिकेट के बारे में बात नहीं कर सकता है, तो मैं उससे यह आशा कैसे कर सकता हूँ कि वह स्कूल में फैली नशाखोरी के बारे में मुझसे बात कर पायेगा ?

अच्छे संवाद का अर्थ है गलतफहमियों को दूर करना । अखंड परिवार, एक–दूसरे की बातों का ठीक ठीक अर्थ निकालने में सतर्क होना चाहिए ।

५. पाँचवा रहस्य है : शुभ कामना । शुभ कामना यानी दूसरों के लिए सहभागिता, प्रेम और समवेदना ।

घर के कुछ सदस्यों की आंतरिक अभिलाषा धर्मस्थानों की सदस्यता के रूप में अभिव्यक्त होती हैं, कुछ सदस्यों की आत्मीयता अपने आपको आसपास के लोगों के प्रति सेवा अथवा चिंता के रूप में प्रगट होती है । ऐसी स्थिति में एक–दूसरे की कटु आलोचना नहीं करते हुए, एक–दूसरे के प्रति शुभ कामना व्यक्त करनी चाहिए । परंतु परिवार के कुछ मूल्य होने चाहिए, जैसे – ईमानदारी, उत्तरदायित्व, सहिष्णुता वगैरह । हमें नित्य प्रति व्यावहारिक जीवन में भी इनका पालन करना होता है । यह नहीं हो सकता कि मैं बात तो ईमानदारी की करूँ

और आयकर (इन्कमटेक्स) देने के मामले में धोखेबाजी करूँ। यह नहीं हो सकता कि में उत्तरदायित्व का प्रलाप तो करता रहूँ और अपने जरूरतमंद पडोसी की ओर से मुँह फेर लूँ !

६. अंतिम और छट्ठा रहस्य है : संकट से संघर्ष करना। यह बात नहीं कि अखंड परिवारों के सामने कभी कोई समस्या ही नहीं आती। आती हैं समस्याएँ। जीवन की अपरिहार्य चुनौतियों के उठ खड़े होने पर उनसे जूझने की और उन पर काबू पाने की क्षमता होनी चाहिए। संकट से निपटने के लिए आपको सकारात्मकता पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। संवाद–कौशल प्राप्त करना होगा और अपने आपको परिस्थिति के अनुरूप ढालना होगा।

एक ४० वर्षीय प्रोफेसर के पास लगभग वह सब कुछ था, जो वह जीवन में चाहता था। उसके तीन बच्चे थे, पत्नी थी, प्रोफेसर का पूरा अधिकार प्राप्त था और वह एक सफल लेखक भी था। उसका जीवन पूरी गति से आगे बढ़ रहा था। लेकिन अचानक एक दिन संकट आया। बिना कारण उसकी पत्नी बोरिया बिस्तर बाँधकर उसे छोड़ गई। प्रोफेसर के भाई को, अत्यधिक धूम्रपान करने के कारण गले का कैंसर हो गया। डॉक्टर ने ऑपरेशन कर उसका स्वर–यंत्र निकाल दिया। प्रोफेसर रो पड़ा – इस करुण घटना को देखकर।

परंतु वह हिंमत नहीं हारा। उसने बच्चों को सँभालने का समय निश्चिय कर दिया और पत्नी के पास जाकर, उसको समझाया कि वह मनोचिकित्सक को बताकर चिकित्सा करें। पत्नी सहमत हो गई। पत्नी ने अनुभव किया कि उसका पति ईमानदारी से जीना चाहता है।

## विनय में औचित्य होना आवश्यक :

जिस परिवार में माता–पिता, बच्चों के प्रति सजग होते हैं – 'हमारे बच्चे विनीत होने चाहिए,' उस परिवार में बचपन से विनय के संस्कार होते हैं। एक संभ्रान्त परिवार के साथ हमें १५ दिन रहने का प्रसंग आया था। तीन लड़के कॉलेज में पढ़ते थे। उनके पिताजी बंबई के जैन संघ में प्रसिद्ध श्रीमंत थे।

एक दिन दो लड़के मेरे पास बैठे थे, शाम का समय था। मैं लड़कों को कुछ समझा रहा था, इतने में उनके पिताजी आये और मेरे पास बैठे। एक

मिनट में ही दोनों लड़के खड़े होकर रवाना हो गये ! दूसरे दिन मैंने उनसे पूछा : 'पिताजी के आने पर तुम दोनों भाई उठकर क्यों चले गये ?' उन्होंने कहा : 'जहाँ पिताजी बैठे हों, वहाँ हमें निष्प्रयोजन नहीं बैठना चाहिए। हमारे सामने पिताजी को जो बातें आपसे करनी हो, शायद नहीं कर पायें, इसलिए हम चले गये थे।'

यह था उचित विनय। यदि लड़कों में यह विनय नहीं होता, तो पिता को कहना पड़ता – "अभी तुम जाओ, मुझे महाराज साब से बात करनी है।" परंतु ऐसा कहने की नौबत ही नहीं आयी।

बोलने में, बैठने–उठने में, चलने में, सर्वत्र विनय होना आवश्यक होता है। यदि आप नौकरी करते हैं, तो शेठ के साथ बात करने में विनय चाहिए। कहाँ बैठकर बात करना शेठ से और कहाँ खड़े–खड़े बात करना शेठ से – विवेक चाहिए।

एक युवक को नौकरी करनी थी। वह एक सरकारी ऑफिस में गया। जिस ऑफिसर से बात करनी थी, उसके टेबल के पास जाकर उसने टेबल पर अपनी बैग रख दी और धब्ब–सा कुरसी पर बैठ गया। ऑफिसर देखता रह गया। तूर्त पूछा : 'कौन हो तुम ? क्यों आये हो ?' लड़के ने कहा : 'मैं नौकरी के लिए आया हूँ।' ऑफिसर ने कहा : 'तुम चले जाओ, तुम्हें नौकरी नहीं रखना है।' लड़का निराश होकर लौट गया। उसके पास डिग्री थी, परंतु विनय नहीं था। विनय होता तो ऑफिसर के पास जाकर प्रणाम करता और तब तक खड़ा रहता, जब तक ऑफिसर उसको बैठने के लिए नहीं कहता।

यदि आप श्रावक हैं, तो आप जहाँ भी जायें अथवा आपके पास कोई आये, आप उसका उचित विनय करोगे। उसके साथ विवेक और नम्रता से बात करोगे। छोटा हो या बड़ा, श्रीमंत हो या गरीब–आप नम्रता से पेश आओगे। किसी का तिरस्कार नहीं करोगे। कटु शब्दों का प्रयोग नहीं करोगे। सद्भावपूर्वक हर व्यक्ति के साथ व्यवहार करोगे। दूसरों का अभिप्राय आपके बारे में ऐसा बने कि 'यह श्रावक कितना विवेकी है ! जैनधर्म में विनय–विवेक का उच्च स्थान है।'

## मंदिरों में और धर्मस्थानों में विनय :

घरों में, स्कूलों में, बाजार में विनय नहीं रहा, धर्मस्थानों में भी विनय नहीं रहा है। इससे धर्मस्थानों का गौरव खंडित होता चला है। कुछ उदाहरण बताता हूँ।

– कोई साधुपुरुष प्रवचन दे रहे हैं। आप लोगों को चाहिए कि प्रारंभ में ही वंदना कर, विनय से बैठकर प्रवचन सुनें। कुछ लोग देरी से आते हैं और 'इच्छामि खमासमणो' बोलते हुए वंदन करते हैं। सभी श्रोताओं की दृष्टि उस व्यक्ति की ओर चली जाती है। प्रवचन में विक्षेप होता है। यह हुआ अविनय। देरी से आनेवालों को चुपचाप पीछे बैठ जाना चाहिए।

– कुछ लोगों को आदत होती है कि वे देरी से आयेंगे और सबसे आगे आकर बैठेंगे। प्रवचन में विक्षेप होता है। अविनय होता है।

– कुछ लोग प्रवचन सुनने बैठते हैं, पैर लंबे करके बैठते हैं, प्रमाद की मुद्रा में बैठते हैं। इधर-उधर देखते रहते हैं – यह अविनय है।

– कुछ लोग चालू प्रवचन में प्रश्न पूछते हैं! न आज्ञा लेते हैं, न हाथ जोड़ते हैं, न शब्दों की मर्यादा समझते हैं। यह अविनय है। प्रश्न भी विषय के अनुरूप पूछना चाहिए। जिस विषय पर प्रवचन चल रहा हो, उस विषय में ही प्रश्न पूछना चाहिए।

– कुछ लोग हमारे पास आते हैं, उनको कोई प्रश्न पूछना होता है, उस समय हम स्वाध्याय-ध्यान वगैरह में लीन हों अथवा किसी व्यक्ति के साथ वार्तालाप चलता हो, तो भी वे बिना इजाजत लिए प्रश्न पूछते हैं। स्वाध्याय में खलल होती है, वार्तालाप में विक्षेप होता है – यह अविनय है। कोई अजैन विद्वान बैठा होता है, अधिकारी बैठा होता है, उस पर आपका गलत असर होता है! 'जैनों में विनय-विवेक नहीं होता है क्या?' हालाँकि वे मौन रहते हैं, परंतु बुरी असर लेकर जाते हैं।

– किसी-किसी व्यक्तियों को बुरी आदत होती है कि हम किसी से बात करते होते हैं, तो बिना पूछे वे बीच में टपक पड़ते हैं, अपना अभिप्राय देने

लगते हैं । जिस बात में आपको कुछ लेना–देना नहीं होता है, आपको नहीं बोलना चाहिए ।

– आप हमारे पास बैठे हो, एक व्यक्ति आकर मुझसे कुछ पूछता है, मैं जवाब दूँ, उसके पहले आप ही जवाब देने लगते हो ! वह पूछता है मुझसे, जवाब आप देते हो ! अविनय है यह । प्रश्न पूछनेवाला नाराज हो जाता है। कभी–कभी तो अपमान कर देता है – "मैं आपसे प्रश्न नहीं पूछता हूँ, आप मत बोलिए.... महाराज सा. को जवाब देने दें ।" अविनय का परिणाम कभी अपमान में भी आता है !

मंदिरों में तो इससे भी ज्यादा अविनय करते हो आप लोग ।

– मूल गंभारे में परमात्मा की पूजा करते करते आपस में बातें करते हो न ? अभिषेक करते समय, अंग लूँछना करते समय दुनियाभर की बातें चलती है न ? यह परमात्मा का अविनय है ।

– मूल गंभारे में झगड़ा भी करते हो न ? मंदिर के किसी भी भाग में लड़ना–झगड़ना अविनय है ।

– जब एक व्यक्ति एक प्रतिमा की पूजा करता हो, उस समय दूसरे व्यक्ति को उसी प्रतिमा की पूजा नहीं करनी चाहिए । क्रमशः पूजा करनी चाहिए ।

कोई साधुपुरुष परमात्मा के सामने दर्शन–चैत्यवंदन करते हों, उस समय बीच में से नहीं जाना चाहिए और जोर–शोर से बोलना नहीं चाहिए । आप लोगों में प्रायः यह विनय दिखता नहीं है । कई महिलाओं को तो साधुपुरुष दिखते ही नहीं है !

– कुछ पूजक लोग गंभारे में परमात्मा के सामने ऐसे खड़े रहते हैं कि दर्शन करनेवालों को दर्शन ही नहीं होते हैं ! अविनय है यह । इसमें भी 'डबल बोडी' स्त्री–पुरुष होते हैं गंभारे में, जो भगवान् के दर्शन होने देते ही नहीं !

– कई बार मंदिर में बड़ी पूजा होती है तब प्रभावना दी जाती है । प्रभावना कैसे दी जाती है और ली जाती है – आपने देखा है न ? पुरुष और महिलाओं का वहाँ संयुक्त नृत्य होता है ! न लाईन में खड़े रहते हैं, न शान्ति से, विनय

से प्रभावना लेते हैं । दूसरी कोम्युनिटी के लोग हसते हैं, मजाक उड़ाते हैं । जिनशासन की निन्दा होती है । कभी–कभी लड़ाई–झगड़ा भी हो जाता है न ? क्यों ऐसा अविवेक करते हो ? जहाँ लोग विनय–विवेक से प्रभावना नहीं लेते हों, वहाँ प्रभावना देने पर प्रतिबंध लगा देना चाहिए ।

– कुछ वर्षों से अपने समाज में भी पुरुष लूंगी पहनने लगे हैं । पहले तो मुसलमान ही पहनते थे अथवा दक्षिण प्रदेश के लोग पहनते थे । लूंगी पहनकर मंदिर में जाते हैं ! अविनय है यह । जिस स्थान में जाना हो, वहाँ की जो उचित वेषभूषा हो, वही वस्त्र पहनने चाहिए । लूंगी पहनकर मंदिर में नहीं जाना चाहिए । वैसा सुबह–सुबह टेनिस खेलने जाते हैं वे लोग छोटी–सी चड्डी पहनकर जाते हैं, अच्छा है कि हनुमान के वेश में नहीं जाते (लंगोट पहनकर) । वे लोग मंदिर में भी वैसी चड्डी पहनकर चले जाते हैं ।

अपने मंदिरों में कोई नीति–नियम जैसा रहा ही नहीं है । अविनय और अविवेक बढ़ता रहा है । महिलाओं की वेशभूषा के विषय में यहाँ बात करना मैं पसंद नहीं करता । परंतु लज्जास्पद है यह सब ।

## विनय धर्म त्रैकालिक है :

विनय धर्म, सभी धर्मसंप्रदायों में मान्य धर्म है । सभी समाजों में भी विनय स्वीकार्य है । भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमानकाल – तीनों काल में विनयधर्म स्वीकृत है । आदिवासी लोगों में भी विनय पाया जाता है । विनय से ही मनुष्य की योग्यता देखी जाती है ।

लौकिक व्यवहार में भी विनय की महत्ता मानी गई है, तो फिर लोकोत्तर शासन में विनय की महत्ता कितनी है, यह बात बताने की होती है क्या ? खाने–पीने में यानी स्वामिवात्सल्य, नवकारशी भोजन जैसे प्रसंगों में क्या आप विनय धर्म का पालन करते हो ? मौन रहते हुए, विनय से भोजन करते हो क्या ? जगह छोटी हो और आप लोग ज्यादा हो – वहाँ विनय–विवेक रहता है क्या ? धक्का–मुक्की और कोलाहल नहीं करते हो न ?

सुधरना पड़ेगा । मात्र फैशनेबल कपड़े पहनने से आप सज्जन–श्रावक नहीं

बन जाते । आपमें विनय होना आवश्यक है । सर्वत्र, सभी क्षेत्रों में विनयमर्यादा का पालन अनिवार्य है । आपकी शोभा विनय से है, धर्म की शोभा भी विनय से होती है । आप धार्मिक हैं, आप श्रावक हैं, तो आपको उचित विनय सीखना ही पड़ेगा । विनय धर्म का पालन करना ही होगा ।

कहाँ पर, किस व्यक्ति का, कितना और कैसा विनय करना, आपको समझना होगा । हालाँकि यह स्वयं सूझ की बात है । सिखाये तो कितना सिखाये ?

जिनशासन की उन्नति करने के लिए, यह दूसरा उपाय बताया गया है ।

आज बस, इतना ही ।

* * *

# प्रवचन : ४२

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में श्रावक जीवन के व्रत बताये हैं और दैनिक जीवनचर्या बताई है । दैनिक जीवनचर्या में एक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य बताया है –

'शासनोन्नतिकरणम् ।'

जिनशासन की उन्नति करना । यानी जिनवचनों का अपने जीवन में इस प्रकार पालन करना चाहिए कि दूसरे लोग भी जिनशासन के अनुरागी बनें । जिनशासन का गौरव बढ़ता चले । जिनशासन की उन्नति की सात बातें ग्रंथ में बताई गई हैं, इसमें से १. सम्यग् न्यायपूर्ण व्यवहार और २. यथोचित विनय – ये दो बातें आपको बता दी, आज तीसरी बात बताने की है । बहुत महत्त्वपूर्ण बात है तीसरी –

'दीनानाथभ्युद्धरणम् ।'

दीन और अनाथ जीवों का अभ्युद्धरण करना है । अभ्युद्धरण यानी उद्धार करना । सही रूप से उद्धार करना अभ्युद्धरण है । जो दीन हैं, जो अनाथ हैं, उनका उद्धार करना है । दीनता से मुक्त करना है, अनाथता का बोध मिटा देना है ।

एक बात ध्यान से सुनना । दीन और अनाथों को पाँच–पचीस या १००/२०० रुपये देकर 'उद्धार' करने का मिथ्या प्रयास नहीं करना है । पैसे देकर ही आप लोग उद्धार करने का आश्वासन ले लेते हो, यह गलत है । सर्वप्रथम आपको सोचना होगा कि – यह मनुष्य किस बात की दीनता करता है । किस बात को लेकर निराशा में डूबा है । क्यों पुरुषार्थ छोड़कर एकान्त भाग में जाकर बैठा है । कौन–सी दुर्घटना उसके साथ घटी है । यह सब सोचना होगा । तभी आप उस दीन व्यक्ति का उद्धार–समुद्धार कर सकोगे ।

## दीनता के अनेक कारण :

दीनता का कोई एक ही कारण नहीं होता है, अनेक कारण होते हैं । उन

कारणों में से प्रमुख कारण इस प्रकार हैं :-

- अनेक औषधोपचार करने पर भी रोग दूर नहीं होता है ।
- बहुत पुरुषार्थ करने पर भी अर्थोपार्जन में सफलता नहीं मिलती है ।
- किसी निकट के व्यक्ति ने विश्वासघात किया होता है ।
- प्रिय व्यक्ति की मौत हो जाती है ।
- कोई प्रबल इच्छा सफल नहीं होती है.....।

ये हैं प्रमुख कारण दीनता के । दीन व्यक्ति के साथ आप कैसा व्यवहार करते हो ? पहली बात तो यह है कि उसके साथ अभद्र और निर्मम व्यवहार नहीं करें । क्योंकि आप उसकी सहायता करना चाहते हो और उसके दुःख में भागीदार बनना चाहते हो । आप उस दीन व्यक्ति को सहृदयता ने पूछो – "मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ ?" जब वह आपको अपनी निराशा की बात कहे तब आप अपने जीवन की वैसी ही घटना कहना शुरू नहीं करना। आपकी बात सुनने में उसको रस नहीं है, तब आप उस दीन–पीड़ित व्यक्ति की भावनाओं पर ध्यान केन्द्रित करिये । सद्भाव के साथ आपकी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करिये । हाँ, आप इतना कह सकते हैं कि 'मैं भी इसी तरह की स्थिति भुगत चुका हूँ, सो महसूस कर सकता हूँ कि ऐसे में तुम्हें कैसा लगता होगा ।' परंतु उसके सामने आप अपना रोना रोने मत बैठ जाइये ।

आप उस दीन व्यक्ति की बातें ध्यान से सुनें । उसको ऐसा नहीं लगना चाहिए कि उसकी बात से आपका मनोरंजन हो रहा है । आपके मुँह पर सहानुभूति के ही भाव रहने चाहिए ।

कुछ शोकाकुल व्यक्ति अपनी वेदना शब्दों में अभिव्यक्त नही करना चाहते, उनकी पीड़ा भी समझनी चाहिए । उसको स्वास्थ्य के विषय में एवं दिनचर्या के विषय में पुनःपुनः पूछकर परेशान नहीं करना चाहिए । बस, उसको इतना ही कहो कि 'मैं तुम्हारे स्वास्थ्य के विषय में चिंतित हूँ और परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि तुम शीघ्र निरोगी बन जाओ ।'

आप किसी असाध्य रोगी को देखने जाओ, वहाँ यह बताने का प्रयास करें

कि आप उसका कितना ध्यान रखते हैं और आवश्यकता पड़े तो मौजूद होंगे। स्पर्श करने से डरो नहीं । हाथों पर थपकी देना या सिर पर हाथ फेरना, उसके लिए शब्दों से कहीं ज्यादा राहत देनेवाला होगा ।

यदि आपके किसी आत्मीय जन का शोक असामान्य रूप से प्रबल और लंबी अवधि तक व्यापता दिखाई पड़े, तो उसको बताइए कि आप इससे चिंतित हैं । आप कह सकते हैं –'जो पीड़ा तुम्हें झेलनी पड़ रही है, वह निश्चय ही बड़ी कठिन है, पर यह मत समझो कि तुम अकेले हो, मैं भी तुम्हारे साथ हूँ ।'

सभा में से : हम लोगों को ऐसा नहीं आता है ।

महाराजश्री : ठीक है, बहुत–से लोग नहीं जानते कि किसी भी विपदा या शोक के अवसर पर क्या कहा जाए अथवा कैसा आचरण किया जाय, परंतु यदि इसका आरंभ सामान्य सहृदयता से करें और सहारा बनने की भावना रखें, तो आपको शीघ्र ही सहज आचरण की राह सूझ जायेगी ।

भावात्मक रूप से पीड़ित व्यक्ति को सहारा चाहिए । आप बन सके तो सहारा दीजिए । उसका कोई अधूरा काम पूरा करवा दीजिए । इससे उस व्यक्ति को बड़ी राहत मिलेगी ।

मृत्यु–शोक से पीड़ित व्यक्ति को मातम मनाने की एवं दुःख की सामान्य अवस्था से गुजरने की और अपनी भावनाओं और स्मृतियों को कहने की आवश्यकता होती है । यदि आप उनकी इन बातों को पसंद करेंगे, ध्यान से सुनेंगे, तो उनको राहत होगी । कहीं वह अटकें, तो उनसे पूछ भी लीजिए, हामी भरिये ।

भावात्मक रूप से दीन बने व्यक्ति को, और कुछ आश्वासन देना नहीं आता हो, तो इतना ही कहिये – 'चिंता मत करो, सब ठीक हो जायेगा ।' यद्यपि यह सत्य नहीं भी हो, फिर भी दीन–दुःखी व्यक्ति को ये शब्द आश्वासन देते हैं ।

– अर्थोपार्जन के पुरुषार्थ में निष्फल बने हुए दीन व्यक्ति को, यदि आप कोई सही दिशा का पुरुषार्थ बता सकते हो, तो बताइये । यदि आप वह नहीं बता सकते, तो कहिये – 'लाभान्तराय कर्म टूटे बिना अर्थोपार्जन में सफलता

नहीं मिलती है। निराश मत हो, क्षेत्रान्तर कर लो। धंधा बदल दो, धर्म–पुरुषार्थ करते रहो, एक दिन तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी।

– प्रबल इच्छा पूर्ण नहीं होने से दीन–हीन बने मनुष्य को गंभीरता से समझाइये कि 'मनुष्य की सभी इच्छाएँ पूर्ण नहीं हो सकती, फिर भी तुम धैर्य धारण करो.... कुछ समय के बाद तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो सकती है! मोरारजी देसाई की 'प्राइम मिनिस्टर' बनने की इच्छा ८२ वर्ष की आयु में पूर्ण हुई थी न?

– निकट के मित्र अथवा स्वजन के विश्वासघात से दीन बने व्यक्ति को कहो कि संसार में ऐसा होता ही रहता है। तीर्थंकरों की आत्मा के साथ, चक्रवर्तियों के साथ और बड़े–बड़े राजा–महाराजाओं के साथ विश्वासघात होता है। ठीक है, तुम किसी के साथ विश्वासघात नहीं करना!

– प्रिय व्यक्ति की मृत्यु से दीन–दुःखी बने व्यक्ति को बहुत ही सहानुभूति जताते हुए जन्म–मृत्यु का तत्त्वज्ञान संक्षेप में सुनाना। मृत्यु की अनिवार्यता समझाना। आत्मा की अजरता–अमरता की बात करना।

दीन व्यक्ति की दीनता को मिटाना, दीनजनों का समुद्धार है। दीनता दूर कर, उसमें उत्साह–उमंग भर देना, अभ्युद्धरण है। आता है आपको यह समुद्धार करना? सीखना पड़ेगा न? घर में भी जब स्वजन दीन बनते हों, तब उनकी दीनता दूर करने की कला आपके पास होनी चाहिए। उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। ऐसा नहीं सोचना कि 'उसकी आदत है छोटी–छोटी बात में रोने की, दीनता करने की, शोक करने की। करने दो रुदन, मरने दो.... मैं क्या करूँ?' आप श्रावक हैं, ऐसा नहीं सोच सकते।

## आप स्वयं दीन नहीं बनें:

आप श्रावक हैं, आप सम्यग् दृष्टि हैं, आपमें दीनता हो ही नहीं सकती! दीनता तो भवाभिनन्दी जीवों में होती है! जो संसारप्रिय लोग होते हैं, जो विषयासक्त जीव होते हैं, वे दीन, क्षुद्र, मत्सरी, भयभीत होते हैं। शठ और अज्ञ होते हैं। आय–व्यय में राग–द्वेष करनेवाले होते हैं। आप श्रावक हैं, आपमें

ये दोष–दुर्गुण नहीं हो सकते हैं । जब जिनेश्वरदेव मिले हैं और जिनशासन मिला है, तब दीनता किस बात की ?

एक महात्मा पुरुष ने भगवंत की स्तवना करते हुए कहा है ·

**'गई दीनता सब ही हमारी, प्रभु ! तुज समकित दान में !'**

'हे भगवंत, आपने मुझे समकित का दान दिया और मेरी सारी दीनता चली गई !' 'समकित' 'सम्यग् दर्शन' मिलने पर मनुष्य दीन नहीं रह सकता । कैसे भी संयोग पैदा हों, वह दीनता नहीं करेगा । कैसे भी संकट आयें, वह भयभीत नहीं होगा । कैसे भी प्रलोभन आयें, वह क्षुद्र नहीं बनेगा । समकित प्रगट होने पर उस महानुभाव में विशिष्ट गुण पैदा होते हैं । उनकी द्रष्टि आध्यात्मिक बन जाती है । आध्यात्मिक द्रष्टिवाला मनुष्य कभी दीन नहीं बनता है ।

आप स्वयं दीन नहीं बनेंगे, तो ही दूसरे दीनजनों का उद्धार कर सकोगे । दीनजनों की दीनता को दूर कर सकोगे ।

## ठग लोगों से सावधान रहें :

– कुछ अनुभवी और चालाक वयस्क लोग, दीनता का दिखावा कर, आपका भावात्मक शोषण नहीं करें, इसलिए सावधान रहना ।

– मुझे ऐसे कुछ चालाक ढोंगी लोग मिले हैं । एक युवक अक्सर मेरे पास आकर दीनता से कहता था : 'मैं मुसीबत में हूँ, मुझे सहायता करें ।' वह व्यक्ति मेरी भावनाओं से खेल रहा था । वह जान गया था कि मैं दुःखी के प्रति करुणा जताता हूँ । बड़ा तिकड़मबाज था वह । मेरे परिचित दूसरे एक साधु को भी उसने अपने फंदे में जकड़ लिया था । जब मुझे मालुम हुआ कि उसकी दीनता मात्र दिखावे की थी । 'आँसू' ऐसे लोगों का एक प्रिय शस्त्र होता है । आवश्यकता पड़ने पर वे फौरन रो सकते हैं ! बस, वहाँ हम कमजोर हो जाते हैं । दो–तीन बार तो मैंने उसकी सहायता की, बाद में उसको मेरे पास आने का रास्ता भुला दिया !

– कुछ चालाक लोग दीनता के साथ साथ चाटुकारिता भी करते हैं । चाटुकारिता प्रायः मनुष्य के विवेक को विकृत कर देती है । चाटुकार को प्रसन्न

करने के लिए विवश कर देती है । इसलिए चाटुकारों से दूर रहो ।

– कुछ तिकड़मबाज लोग दीनताभरे स्वर में अनुचित अथवा अनावश्यक मांग करते हैं । जब अपने इन्कार कर देते हैं, तब वे लोग अपने उपर आरोप लगाते हैं – 'आप मुझे पसंद नहीं करते, मैं आपको अच्छा नहीं लगता !' ऐसी बातें करनेवालों के सामने कमजोर व्यक्ति झुक जाता है । परंतु हमें कमजोर नहीं होना चाहिए । चालबाज व्यक्ति का व्यवहार बड़ा ही औपचारिक होता है । उसकी चाल का सामना करने के लिए उससे बातचीत नहीं करें । अपने काम में उलझे रहिये । चालबाज व्यक्ति पर दबाव डालकर उसकी चाल को व्यर्थ कर दीजिए !

लोग आपकी भावनाओं का गलत फायदा नहीं उठायें, इसलिए सतर्क रहना होगा । ठगे जाने से बचने के लिए आप जो भी उचित और सही समझें, वही कीजिये ।

## अनाथों का उद्धार करना है :

एक बात भूलना नहीं कि दीन और अनाथजनों का उद्धार करना, जिनशासन की उन्नति के लिए है । हमने जीर्ण जिनमंदिर का उद्धार करना, जीर्ण उपाश्रय का उद्धार करना आवश्यक और धर्मकार्य माना है और करते भी हैं जीर्णोद्धार । परंतु दीन एवं अनाथजनों का उद्धार करना इतना आवश्यक नहीं माना है । यदि हम मानते आवश्यक, तो हमारे संघ में उस कार्य को संपन्न करने की योजना होती । जगह–जगह अनाथों के आश्रयस्थान होते । नहीं हैं अनाथों के आश्रयस्थान । जिनशासन की उन्नति के इस उपाय को उपेक्षित कर दिया गया है ।

धर्म और जाति का भेद किये बिना, यह दीन–अनाथों के उद्धार का कार्य आप लोगों को (श्रावकों को) करने का है । आप लोगों ने मंदिर बनाये, उपाश्रय बनाये, आयंबिल भवन और धर्मशालाएँ बनायी, पशुओं के लिए पांजरापोल भी बनायी, परंतु अनाथजनों के लिए क्या किया ?

अनाथ–असहाय लोगों की पीड़ा जानते हो ? कभी ऐसे लोगों के पास जाकर

उनकी व्यथा–वेदना को समझने का प्रयत्न किया है क्या ? अनाथ बच्चों की वेदना देखें, अनाथ वृद्धजनों की वेदना देखें, अनाथ वयस्क स्त्री–पुरुषों की वेदना देखें । आपमें यदि दया और करुणा के भाव होंगे, तो आपकी आँखें बरसने लगेंगी ।

बाजारों में 'जैनं जयति शासनम्' के नारे लगाने मात्र से जिनशासन की उन्नति नहीं होगी । उन्नति ऐसे कार्यों से होगी । नारे लगाना बंद करो, तुम्हारा और हमारा उपहास होता है । लोग हँसते हैं ।

## अनाथों का उद्धार कैसे करोगे ? :

वास्तव में जिनशासन का जय–जयकार करना है, तो अनाथों के लिए आश्रयस्थान बनाना चाहिए । उनको भोजन और वस्त्र मिलना चाहिए । उनको उचित व्यवसाय मिलना चाहिए । उनको लगना चाहिए कि इस दुनिया में हमारा कोई है । हमारा दुःख समझनेवाले हैं, हमें सहारा देनेवाले हैं । उनको जीवन जीने की सुविधाएँ मिलेंगी, तो वे परमात्मा जिनेश्वरदेव के और जैन संघ के गुण गायेंगे, गौरव करेंगे और जिनशासन का अनुशासन मानेंगे ।

## अनाथों का उद्धार महान धर्म :

अनाथों का उद्धार करने की, समुद्धार करने की बात, जिनशासन के एक महान आचार्यदेव कर रहे हैं । सैंकड़ों वर्ष पूर्व वे लिख गये हैं । उनकी बात पर गंभीरता से सोचना चाहिए । इस कार्य की क्यों उपेक्षा हुई, यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही है !

यह कार्य ईसाई धर्मवाले कई वर्षों से कर रहे हैं । दूसरे धर्मवालों ने भी अनाथाश्रमों की स्थापना की है । परिणाम आप देख रहे हो, दुनिया में सबसे ज्यादा ईसाई धर्म के अनुयायी हैं । वे लोग रोड़ पर जुलूस निकालकर नारा नहीं लगाते हैं कि 'हमारा ईसाई धर्म महान है ।' वे लोग गाँव–नगरों में जाकर काम करते हैं । दुःखी मनुष्यों की सेवा करते हैं । दीन–अनाथों का उद्धार करते हैं, तभी उनकी संख्या बढ़ती जा रही है !

आप लोग तो इतने स्वार्थी बने हो कि आपके अनाथ साधर्मिकों का भी

खयाल नहीं करते ! आप आपके रंग–राग में और मौज–मजा में मस्त हो ।

**सभा में से :** बड़े पर्व के दिनों में कभी–कभी अनाथाश्रमों में भोजन देते हैं, अथवा मिठाई भेज देते हैं ।

**महाराजश्री :** इसको उद्धार–समुद्धार नहीं कहते, यह तो तत्कालीन सहायता होती है । प्रासंगिक कर्तव्य होता है । समुद्धार उसको कहते हैं कि अनाथ की अनाथता दूर हो जाय !

यह कार्य यदि आप समूह रूप से भले न करें, व्यक्तिगत रूप से कर सकते हैं ! एक–एक सुखी श्रावक, संपन्न श्रावक, एक–एक अनाथ का उद्धार करने का कार्य करने लग जाय, तो आपके गाँव में एक भी अनाथ नहीं रह सकता। सभी सनाथ हो जायेंगे और वे सनाथ बने हुए लोग, आपका तो जय–जयकार करेंगे ही, जिनशासन का भी जय–जयकार करेंगे ।

ऐसे कार्यों में राज्यसरकार भी सहायता करती है, यदि आप लोग इस दिशा में ठोस कार्य करें तो । ऐसे कुछ अनाथाश्रम सरकार चलाती है । कुछ संस्थाएँ (सामाजिक) भी अनाथाश्रम चलाती हैं । जैन संघों की तरफ से भी अनाथाश्रम चलने चाहिए । बच्चों के लिए, वृद्धों के लिए, अपंग–अपाहिजों के लिए । इससे जिनशासन की उन्नति होगी । जैनधर्म की कीर्ति बढ़ेगी ।

इस कार्य में आप अपनी संपत्ति का सदुपयोग करें । आज कई नये श्रीमंतों को ऐसे कार्य पसंद होते हैं । मार्गदर्शन मिलना चाहिए और कर्मठ निष्ठावान कार्यकर्ता मिलने चाहिए । संस्था, निष्ठावान कार्यकर्ताओं से ही सही रास्ते पर चल सकती है ! मिलते हैं वैसे निष्ठावान कार्यकर्ता । चाहिए तीव्र तमन्ना और जिनशासन के प्रति अगाध प्रेम ।

## चौथा उपाय – सुविहित साधुओं का पुरस्करण :

अपनी बात चल रही है जिनशासन की उन्नति करने की । इस दृष्टि से यह चौथा उपाय बताया गया है ।

आपका गाँव में सभी के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार होगा, लोगों का उचित विनय करते होंगे, दीन–अनाथ लोगों के उद्धार का कार्य करते होंगे, तो इससे आपके

गाँव–नगर में आपकी कीर्ति फैली होगी । नगरवासी प्रजा का आपके प्रति स्नेह बना होगा । ऐसी स्थिति में आप विशिष्ट ज्ञानी, तपस्वी, प्रभावक आचार्य या मुनिराज का भव्य स्वागत करते हैं, नगर–प्रवेश करवाते हैं, तो जिनशासन की शान बढ़ती है । लोग बात करेंगे कि 'ये जैनाचार्य कितने अच्छे हैं ? परोपकार के कार्य करने की प्रेरणा देते हैं । लोगों को सन्मार्ग का उपदेश देते हैं ।'

आपका व्यवहार अच्छा होगा, आप परोपकार के कार्य करते होंगे, तो दूसरे समाज के लोग हमारी प्रशंसा करेंगे, यानी जिनशासन के प्रति सद्‌भाववाले बनेंगे । परंतु यदि आप लोगों का व्यवहार अच्छा नहीं होगा, परोपकार के कार्य नहीं करते होंगे, तो लोग हमारी प्रशंसा नहीं करेंगे । संभव है कि निन्दा करें ! 'ये साधु अपने धर्मवालों को अच्छा उपदेश नहीं देते होंगे । केवल अपनी वाह–वाह करवाते फिरते हैं.....' वगैरह ।

## साधुओं का नगरप्रवेश और सामैया :

आप लोगों को सामैया करना आता है क्या ? ध्यान रखना, सामैया साधुपुरुषों के लिये नहीं करना है, साधुओं को आपके स्वागत की आवश्यकता नहीं है, सामैया जिनशासन की उन्नति के लिए करने का होता है । यदि सामैया करना ही हो तो इस प्रकार करें कि गाँव के सभी जाति के लोग प्रभावित हों । जैन धर्म के साधुओं के प्रति श्रद्धावान बनें । सामैया करते समय, आचार्य या साधु की प्रभावकता देखी जानी चाहिए और लक्ष्य जिनशासन की प्रभावना का रहना चाहिए । सामैया करें, उसमें समाज के सभी स्त्री–पुरुषों को सम्मिलित होना चाहिए । ऐसा नहीं हो कि बेंडवाले ११ व्यक्ति हों और आप लोग ५–७ की संख्या में हो ! अहमदाबाद में कुछ वर्ष पूर्व मैंने एक आचार्यश्री का सामैया देखा था । मेरे परिचित थे वे आचार्यश्री, इसलिए मुझे जाना पड़ा था ! वहाँ के संघ के मात्र ५ पुरुष थे और एक महिला थी ! बेंडवाले १०/१२ लोग थे ! कितना हास्यास्पद वह दृश्य होता है ?

साधुपुरुषों के स्वागत में यदि आपके संघ को रुचि नहीं हो तो स्वागतयात्रा नहीं निकालनी चाहिए, बेंड नहीं बजवाने चाहिए । दो–चार भाई–बहन साधुओं के सामने चले जाओ और शान्ति से ले आओ साधुओं को ।

**सभा में से :** कई बार, सामैया नहीं करने से आचार्य महाराजों को बुरा लगता है !

**महाराजश्री :** लगने दो बुरा ! शासन का गौरव अखंड रहना चाहिए। जो सन्मान के अभिलाषी होते हैं, उनका स्वागत क्यों करना चाहिए ? जिनशासन के गौरव को जो समझते नहीं हों, उनका स्वागत करने की जरूरत नहीं है ।

स्वागतयात्रा निकालनी है तो भव्यता से निकालो। अच्छी तादाद में जनसमूह इकट्ठा होना चाहिए ।

दूसरी बात है नारेबाजी की। पचास साल पूर्व जो नारे लगाये जाते थे, आज भी वही नारे लगाये जाते हैं ! वही एक-दो-तीन-चारवाले नारे लगते हैं। क्यों ऐसे नारे लगाते हो ? क्यों हल्ला मचाते हो ? यह कोई चुनावप्रचार का जुलूस तो है नहीं ! नारे लगाने के बजाय समूहगीत गाओ ! लोकगीत के राग में गाओ। फिल्मी-गीत की तर्ज में मत गाओ। गीत प्रभुभक्ति का अथवा गुरुभक्ति का होना चाहिए। नारे लगाने हों तो कुछ अच्छे नारे लगाइये। लोगों को, सुननेवालों को कुछ बोध प्राप्त हो, वैसे नारे लगाइये ।

बेंड में भी अच्छी सुरावली, शास्त्रीय रागों की सुरावली बजनी चाहिए । अच्छे लोकगीतों की तर्ज बजनी चाहिए। फिल्मी गंदे गीतों की तर्ज नहीं बजनी चाहिए । गुरुजनों का स्वागत, उनके व्यक्तित्व के अनुरूप होना चाहिए ।

## अविवेक बढ़ता जा रहा है :

एक शहर में हमें जाना था। हम शहर के बाहर पहुँचे कि संघ की पेढ़ी के मुनिम हमें मिले। वंदना कर निवेदन किया : 'हमें सामैया करना है, इसलिए कुछ समय आप यहाँ ठहरेंगे। संघ के लोग आ ही रहे हैं।' हम वहाँ तक एक मकान में ठहर गये। १० मिनट के बाद बेंड आया और संघ के एक कार्यकर्ता आये। और १० मिनट बीत गई। उस कार्यकर्ता ने कहा : 'महाराज सा.। अपने चलें, रास्ते में लोग इकट्ठे होते जायेंगे !' मैंने कहा : 'आप पहले बेंड को भेज दो। हमें बेंड की जरूरत नहीं है। हम वैसे ही गाँव में चले चलेंगे।' वो भाई माने ही नहीं ! फिर मैंने जरा अकड़ कर कहा : 'यदि आपको बैंड बजवाना

ही है, तो आप बजवाइये, हम गाँव में नहीं आयेंगे । यहाँ ही बैठे रहेंगे । आप क्या जैनधर्म की निन्दा करवाना चाहते हो ? जितने बैंडवाले हैं, उतने भी पुरुष नहीं हैं और आपको सामैया करना है ? किसने कहा था आपको सामैया करने का ? हम सामैया पसंद नहीं करते ।' इतना कहा तब जाकर उस भाई ने बैंड को बिदा कर दिया और बाद में हम मंदिर पहुँचे ।

आप लोग सामान्य बुद्धि से भी नहीं सोचते हो । क्या करने से जिनशासन की प्रभावना होगी, क्या करने से गौरव–हनन होगा, सोचना चाहिए । विवेकदृष्टि से सोचना चाहिए । जैसे–तैसे स्वागतयात्रा, शोभायात्रा, रथयात्रा निकालने से जिनशासन की शोभा नहीं बढ़ती है । भले वर्ष में एक–दो ही स्वागतयात्रा या रथयात्रा निकालो, परंतु भव्यता से निकालो, सभी जैन मिलकर निकालो ।

## ऐतिहासिक स्वागतयात्राओं का वर्णन पढ़ो :

गुरुदेवों के स्वागत कैसे किये जाते हैं, नगरप्रवेश कैसे कराये जाते हैं–उसका भी इतिहास है ! अपने प्राचीन चरित्रग्रंथों में स्वागतयात्राओं के वर्णन मिलते हैं । कुछ नामनिर्देश ही आज करता हूँ –

जब श्रमण भगवान महावीर चंपानगरी पधारे, उस समय मगधसम्राट कोणिक की राजधानी चंपा में थी । उसको मालुम हुआ कि श्रमण भगवान महावीर पूर्णभद्र चैत्य में ठहरे हैं, भगवान को वंदन करने कोणिक बड़ी सज–धज से गया था ।

प्राचीनकाल में जब आचार्यादि नगर के बाहर उद्यानों में ठहरते थे, उस समय आचार्यादिक का नगरप्रवेश नहीं कराया जाता था । परंतु राजा, श्रेष्ठी वगैरह जनसमुदाय के साथ, हाथी, घोड़े, रथ के साथ, गुरुदेव को वंदन करने जाते थे । दर्शनयात्रा निकलती थी ।

'औपपातिक–सूत्र' में कूणिक राजा के भगवान की वंदना करने जाने का बड़ा विस्तृत वर्णन आता है । कूणिक भगवान महावीर के प्रति अति भक्तिभाव रखता था ।

– राजा विक्रमादित्य ने आचार्य सिद्धसेन दिवाकर का भव्य स्वागत कर, जैनशासन की उन्नति की थी ।

– राजा कुमारपाल ने कलिकाल सर्वज्ञ आचार्यश्री हेमचन्द्रसूरिजी का पाटण में भव्य नगरप्रवेश करवाया था। अपने मित्र राजाओं को और आज्ञांकित राजाओं को भी उस स्वागतयात्रा में सम्मिलित किये थे ।

– मांडवगढ़ के महामंत्री पेथड़ शाह ने गुरुदेवश्री धर्मघोषसूरिजी का अति भव्य नगरप्रवेश करवाया था ।

– आचार्यपद प्राप्त कर जब पहली बार हीरविजयसूरिजी पाटण पधारे थे, तब समरथ भंसाली नाम के श्रावक ने भव्य स्वागतयात्रा निकाली थी । ऐसे अनेक प्रसंग जैन इतिहास में पढ़ने को मिलते हैं । वर्तमानकाल में भी कभी कभी, बडे नगरों में प्रभावक आचार्यों के भव्य स्वागत होते हैं । हजारों स्त्री–पुरुष स्वागतयात्रा में शामिल होते हैं ।

## जाहिर प्रवचनों का आयोजन :

यह तो हुई स्वागत की बात । दूसरी बात है ज्ञानी–प्रभावक आचार्यादि साधुपुरुषों का जाहिर स्थानों में प्रवचनों का आयोजन करना । जहाँ पर जैन–अजैन हजारों लोग प्रवचन सुनने आयें और प्रवचन सुनकर, प्रभावित होकर जायें ।

साधुपुरुषों का यह श्रेष्ठ पुरस्करण है । उनकी ज्ञान–प्रतिभा से प्रजा को लाभान्वित करना, जिनशासन की उन्नति का श्रेष्ठ उपाय है । मुझे वर्षों से अनुभव है कि जाहिर में प्रवचन करने से जैन–अजैन प्रजा पर कैसा अद्‌भुत प्रभाव पड़ता है ।

इस विषय में मेरा श्रेष्ठ अनुभव है आणंद (गुजरात) चातुर्मास का । वि. सं. २०२२ में हमारा चातुर्मास आणंद में हुआ । आणंद के पास वल्लभ–विद्यानगर है, वहाँ सरदार युनिवर्सिटी है । करिबन वहाँ ९ कॉलेज थी उस समय । आर्ट्‌स कॉलेज, कॉमर्स कॉलेज, सायन्स कॉलेज, एम. एड. कॉलेज वगैरह । आणंद संघ के प्रमुख कार्यकर्ताओं ने वहाँ ९ कॉलेज में ९ प्रवचनों की श्रेणी का आयोजन किया था । आर्ट्‌स कॉलेज में तो "उत्तराध्ययन–सूत्र" पर प्रवचन हुए थे । विद्यार्थियों ने ही यह विषय पसंद किया था । अलग–अलग विषयों पर कॉलेजों में प्रवचन हुए थे । जैनधर्म की बहुत ही अच्छी सराहना हुई थी वहाँ । आणंद

की भी सभी कॉलेजों में, हाईस्कूलों में प्रवचन आयोजित हुए थे। फार्मसी कॉलेज में २५० डॉक्टरों के सामने बहुत ही मार्मिक प्रवचन हुआ था। सभी डॉक्टर्स बहुत ही आनन्दित हुए थे। मैंने वहाँ प्रवचन में पूछा था – 'हमारे देश में सभी फेकल्टीज हैं – आर्ट्स, कॉमर्स, सायन्स, लॉ, फार्मसी, मेडिकल वगैरह, परंतु साधु बनने की कोई फेकल्टी क्यों नहीं है ? आपको डॉक्टर चाहिए, वकील चाहिए, वैज्ञानिक चाहिए, साहित्यकार चाहिए, साधु नहीं चाहिए क्या ? तो फिर मुझे यहाँ क्यों बुलाया ?' सभी डॉक्टर्स ने तालियाँ बजाकर आनन्द अभिव्यक्त किया था।

जिनशासन की उन्नति हो, उस प्रकार साधुपुरुषों का पुरस्करण करना चाहिए।

आज बस, इतना ही।

* * *

# प्रवचन : ४३

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में श्रावक जीवन के कर्तव्यों का निर्देश किया है। जिस प्रकार अपने जीवन में व्रतों का पालन करना है वैसे दूसरों के प्रति अपने कर्तव्यों को निभाना है एवं जिनशासन की उन्नति भी करना है। जिनशासन का अपने उपर महान उपकार है। जिनशासन सुखदायी है, कल्याणकारी है। संसार के सभी जीव जिनशासन को प्राप्त कर सुखी बनें, सद्गतिगामी बनें - उस भावना से आपको

- सम्यग् न्यायपूर्ण व्यवहार करना है।
- यथोचित विनय करना है।
- दीन और अनाथ जीवों का समुद्धार करना है।
- सुविहित साधुपुरुषों का पुरस्करण करना है और
- परिशुद्ध शील का पालन करना है!

## परिशुद्ध शील का पालन :

जिनशासन की उन्नति का पाँचवा उपाय है परिशुद्ध शील का पालन। यदि आपने पाँच अणुव्रत अथवा बारह व्रत ग्रहण किये हैं, तो फिर आपके जीवन में शीलधर्म का पालन होगा ही। परिशुद्ध का अर्थ है अतिचार-रहित पालन। शीलव्रत का पालन दोष लगाये बिना करने का है।

याद रखना, आपकी ओर लोगों की निगाह होती है। क्योंकि आप श्रावक हैं, 'आप उच्च कोटि का जीवन जीनेवाले हैं,' लोग इस रूप में आपको देखते हैं। जो दुराचारी-व्यभिचारी लोग होते हैं वे भी आपको सदाचारी के रूप में देखना चाहते हैं। शीलवान के रूप में आपकी इज्जत करते हैं। 'ये महानुभाव जैनधर्म के पक्के अनुयायी हैं। वे कभी परस्त्री के सामने आँख उठाकर भी देखते नहीं हैं। परस्त्री को बहन अथवा माता के समान देखते हैं, वैसा ही पवित्र

व्यवहार करते हैं । कितनी भी रूपवती कन्या हो, उसको अपनी बेटी के समान देखते हैं ।'

आपके लिए लोग ऐसी बातें करते हों, तब समझना कि आप परिशुद्ध शील का पालन करते हो । परंतु दंभ नहीं करना । दिखावा मात्र नहीं होना चाहिए । दंभ का पर्दा एक दिन फटता है । तब आपकी निन्दा तो होगी, जिनशासन की भी निंदा होगी । इसलिए आप आत्मसाक्षी से शीलधर्म का पालन करते रहें ।

## शीलपालन की सावधानियाँ :

परिशुद्ध शीलपालन सरल नहीं है । बहुत ही मुश्किल काम है । परंतु यदि दो बातें आपमें होंगी, तो आप सहजता से शीलपालन कर सकते हैं । पहली बात है पति को अपनी पत्नी में तृप्ति और पत्नी को अपने पति में तृप्ति । दूसरी बात है पति-पत्नी के बीच अंतरंगता । ये दो बातें होगी जीवन में तो पति दूसरी स्त्री से शारीरिक संबंध नहीं बाँधेगा, पत्नी दूसरे पुरुष से प्रेम नहीं करेगी ।

यदि पति-पत्नी की आपस में तृप्ति नहीं होगी, अंतरंग प्रेम नहीं होगा, तो सदाचारी बना रहना मुश्किल है । वैवाहिक जीवन में, एक-दूसरे के सारे गुण-दोषों से परे अगाध विश्वास से देखना होगा । विश्वास गुलाबी काँच है ! उससे सब कुछ गुलाबी ही गुलाबी दिखाई देता है ।

सदाचारी जीवन जीनेवाले एक पुरुष ने मुझे बताया था कि 'हम पति-पत्नी सर्वांगीण अंतरंगता के साथ रहते हैं । हम एक-दूसरे में अंशतः समाहित हो जाते हैं । एक-दूसरे में इस प्रकार घुलमिल गये हैं कि जिसकी कल्पना असंभव है ।'

## सदाचारी जीवन जीने के कुछ उपाय :

- पति-पत्नी के संबंध में एक-दूसरे के प्रति पूरी ईमानदारी चाहिए, पूर्ण बोध चाहिए और गहन आत्मीयता चाहिए ।

- दोनों जीवनसाथी आपस में निस्संकोच अपनी दुर्बलताओं की चर्चा इस विश्वास के साथ करें कि उसके गुणों के साथ उसकी कमियों को भी स्वीकारा

जायेगा। यही स्वीकृति निकटता की पूर्व शर्त है। इससे ही विश्वास और आस्था का उदय होता है।

– आपके मन में जीवनसाथी के प्रति यह विश्वास होना चाहिए कि आपको आपके गुणों और दोषों सहित स्वीकारा है और वह आपकी आस्था को आघात नहीं पहुँचायेगा।

– दाम्पत्य जीवन में अंतरंगता की अनुभूति इस बात पर निर्भर होती है कि दोनों एक–दूसरे को अपने लिये कितना अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। यदि दंपती एक–दूसरे को अपने जीवन का विशिष्ट अंग नहीं मानते हैं, तो दाम्पत्य जीवन में अलगाव आता जाता है।

– २५ वर्ष का दाम्पत्य जीवन बितानेवाले एक व्यक्ति ने कहा : 'मुझे एक अनुभूति कुछ वर्षों से होती है कि दुनिया में ऐसा कोई भी नहीं है जिसके लिए मैं सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हूँ। मेरी चिंता करनेवाला, मेरी प्रतीक्षा करनेवाला कोई भी तो नहीं है। मैं अपने आपका निपट अकेला महसूस करता हूँ।'

मैंने पूछा : आपकी पत्नी है न ?

उसने कहा : है, परंतु नहीं है आत्मीयता, नहीं है अंतरंगता। जब मैं रात में ९ बजे घर पहुँचता हूँ, वह निद्राधीन होती है! मैं स्वयं रसोईघर में जाकर, मेरे लिए जो कुछ उसने रखा होता है, खा लेता हूँ और फिर घर से बाहर जाकर मित्रों के साथ बातें करता हूँ।

– जीवनसाथी एक–दूसरे के जितना अधिक निकट होंगे, उनके रहस्य उतने ही अधिक सुरक्षित रहते हैं। न पति पत्नी के रहस्यों का उद्घाटन करेगा, न पत्नी पति के रहस्यों का प्रकाशन करेगी। ऐसी अंतरंगता होने पर, दंपती में क्या कभी दुराचार का, दुःशील का प्रवेश हो सकता है ?

## कभी भावों का परिवर्तन भी होता है :

ऐसे लोग कि जिनके विवाह को कई वर्ष बीत चुके हैं, इस बात को स्वीकार करते हैं कि कुछ समय तक निकटता रहने के बाद दूरी का अंतराल भी आता है और कुछ समय बीतने के बाद निकटता फिर से लौट आती है। एक व्यक्ति

ने बताया कि 'कुछ समय के लिए जब वैवाहिक जीवन कड़वाहट से भर जाता है तो मन कई प्रकार के भावों से गुजरता है ।'

उसकी पत्नी ने पति से कहा : 'आपको यह तो लगता है कि कहीं कुछ गड़बड़ है, पर आप किसी दूसरे से संबंध जोड़ने या सब कुछ छोड़कर कहीं और भाग जाने की बात कभी नहीं सोचते ! बस, जैसे तैसे गाड़ी खींचते ही रहते हैं । आप जानते हैं कि स्थिति में निश्चित रूप से सुधार आयेगा । सब कुछ फिर से ठीक हो जायेगा ।'

परिशुद्ध शील का पालन करने के लिये, दाम्पत्य जीवन अच्छा होना, बहुत ही आवश्यक है । दाम्पत्य जीवन में वफादारी – वही शील है । वही सदाचार है । वफादारी तभी रहती है जब दोनों में अंतरंगता आती है । अंतरंगता के लिए महत्त्वपूर्ण बात है एक–दूसरे को समझना । साथ–साथ समय बिताना, बातें करना और एक–दूसरे की अनुभूतियों को सुनना । इसका परिणाम यह आयेगा कि एक–दूसरे की जरूरत के प्रति संवेदनशीलता का विकास होगा ।

पति–पत्नी के बीच संवादिता बनी रहनी चाहिए । विसंवादिता नहीं आनी चाहिए । विसंवादिता आ भी जाय, तो उसको शीघ्र दूर करने का प्रयास करना चाहिए । पति–पत्नी दोनों को ही निरंतर एक–दूसरे की अनुभूतियों और आकांक्षाओं को समझते रहना चाहिए । यही वैवाहिक अंतरंगता है ।

'**मैरिड़ पीपल स्टेयिंग टुगेथर इन ध ऐज ऑफ डायवोर्स**' नाम की किताब में लेखिका '**फ्रांसीन क्लाग्सब्रून**' लिखती है : मैं अपनी सास के विवाह को याद करती हूँ । उस जमाने में विवाह कोई मध्यस्थ तय कराता था । द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले 'बेल्जियम' के परंपरावादी यहूदियों में यही रीति थी और एक आज्ञाकारी बेटी की तरह उन्होंने इस रीति का विरोध नहीं किया था । फिर भी यह विवाह–संबंध उनकी मृत्यु तक–लगभग ५० वर्ष तक चला । जीवनभर मेरे सास–ससुर अनेक कठिनाइयाँ–विश्वयुद्ध, व्यापार में असफलता, ससुर का घातक हृदय रोग आदि झेलते रहे । कभी उनमें झगड़े हुए तो कभी मनमुटाव भी रहा । लेकिन उनके जीवन में निष्ठा और समर्पण अपने चरमोत्कर्ष पर था ! जहाँ प्रेमविवाह करनेवाले युगल भी उनसे पिछड़ जाते थे ।

एक बार बीमार होने के बाद मेरी सास ने एक दिन मुझसे कहा : 'तुम्हारे पापा मेरे लिए कितना कुछ करते हैं, किस तरह मेरा ध्यान रखते हैं, इसे कोई नहीं जान पायेगा ! अपनी पत्नियों का इतना खयाल रखनेवाले लोग सचमुच विरले होंगे ।'

मैंने पूछा : तो क्या आपने उनके लिए उतना नहीं किया ?

वह गंभीरता से बोली : 'हाँ, मैंने भी किया, लेकिन क्या यह विचित्र नहीं लगता ? अगर तुम्हारी तरह मैं भी अपनी पसंद के व्यक्ति से विवाह करने को स्वतंत्र होती तो कह नहीं सकती कि मैंने इन्हें ही चुना होता । लेकिन मैं दूसरे किसी पुरुष के प्रति इतनी निकटता की तो कल्पना ही नहीं कर सकती। पता नहीं, तुम मेरी यह बात समझ सकोगी या नहीं ! क्योंकि आज जमाना कितना बदल गया है । कैसे बताऊँ हम दोनों एक-दूसरे के साथ सदा सहज और सुरक्षित अनुभव करते थे !'

## जमाना बदल गया है :

एक बिदेशी शीलवती महिला को भी लगता है कि आज जमाना बदल गया है ! सही बात है । आज शील-सदाचार की बात मनुष्य भुलाता जा रहा है। 'मुक्त जीवन' के नाम पर व्यभिचार को बढ़ावा मिल रहा है । इससे स्वयं की पसंद के विवाह जीवन भी टूटते जा रहे हैं । पुरुष, पत्नी के अलावा प्रेयसी भी रखने लगा है और स्त्री भी पति के अलावा प्रेमी के वहाँ जाया करती है । दोनों में नहीं रही है निष्ठा, नहीं रही है समर्पितता, नहीं रही है अंतरंगता । आप लोगों का गृहस्थ जीवन इसीलिए क्लेश, संताप और कलह से विकृत हो गया है ।

आप लोग श्रावक-श्राविका हैं । अपना एक श्रेष्ठ धर्म है, अपनी श्रेष्ठ संस्कृति है । बहुत गंभीरता से सोचना आवश्यक बन गया है । जनप्रवाह में बह जाने से तो मानव जीवन व्यर्थ बन जायेगा । परलोक अंधकारमय बन जायेगा । आत्मा दुर्गति में भटक जायेगी ।

भले ही आप दो-चार धर्मक्रिया करते हो, परंतु यदि परिशुद्ध शील का पालन

नहीं करोगे, तो आपकी अपकीर्ति होगी । आप निन्दापात्र बनोगे और जिनशासन की भी अवहेलना होगी । इसलिए कहता हूँ कि भले जमाना बदल गया हो, आप नहीं बदलेंगे । यदि जीवन में दुराचार का प्रवेश हो गया हो, तो शीघ्र उस मार्ग से वापस लौट जाओ । मन दृढ़ करके, विवाहेतर संबंध को तोड़ दो । याद रखो कि आप श्रावक हैं । जिनशासन के सभ्य हैं, आपको भवसागर में डूबना नहीं है, भवसागर तैर जाना है ।

## शील–खंडन के कुछ महत्त्वपूर्ण कारण :

यह तो मैंने दाम्पत्य–वैवाहिक जीवन की बात कही । वैवाहिक जीवन के पूर्व यदि युवक–युवतियाँ जातीय संबंध बाँध लेते हैं, शारीरिक संबंध कर लेते हैं, तो फिर उनके जीवन में शील का पालन प्रायः असंभव होता है । कॉलेजों में ९० प्रतिशत युवक–युवतियाँ शीलभ्रष्ट हो जाते हैं । उनका रहन–सहन, वेशभूषा और आपस का परिचय, शीलपालन करने ही नहीं देगा । व्यभिचार जैसे कि पाप ही नहीं है, इस प्रकार युवावर्ग व्यभिचार का सेवन कर रहा है। शारीरिक और मानसिक रूप से युवक खोखला हो गया है । शारीरिक स्वास्थ्य बिगडा है और बुद्धिप्रतिभा क्षीण होती चली है ।

राज्य और समाजों को शीलपालन की कोई महत्ता महसूस नहीं हो रही है । धर्मगुरुओं का उपदेश युवावर्ग प्रायः सुनता ही नहीं है । जो सुनते हैं, वे पालन नहीं कर रहे हैं । उपदेश का असर हो भी कैसे सकता है ? सामाजिक और पारिवारिक वातावरण ही शीलधर्म के प्रतिकूल है ।

– घर घर में कामोत्तेजक वेशभूषा हो गई है ।

– घर घर में T.V. और विडियों आ गये हैं ।

– जगह–जगह 'ब्ल्यू फिल्में' दिखायी जा रही है ।

– व्यभिचार सेवन करने के स्थान बढ़ गये हैं ।

– परपुरुषों के साथ स्त्रियों का संसर्ग–परिचय बढ़ गया है और परस्त्रियों के साथ पुरुषों की मैत्री बढ़ गई है ।

महिलायें ऑफिसों में नौकरी करती हैं, शेठ को खुश रखने के लिये अपना

शरीर समर्पित कर देती है ! अथवा अपने साथ नौकरी करनेवाले किसी पुरुष से प्रेम कर लेती है । सर्विस करनेवाली महिलाओं में कितनी महिलायें अपने शील को सुरक्षित रख सकती हैं ? कोई स्पष्ट वक्ता महिला को पूछना । मैंने तो पूछा है !

– जिस घर में स्त्री–पुरुष दोनों नौकरी करते हैं, दोनों व्यापार करते हैं, उस परिवार में दाम्पत्य जीवन प्रायः क्लेशमय, अशान्तिमय बन जाता है । एक–दूसरे के साथ प्रतिबद्धता नहीं रहती है । फिर, घर में रहना पसंद नहीं आता है और बाहर भटकने लगते हैं । ऐसे लोग शीलपालन कैसे करेंगे ?

एक भाई ने मुझसे कहा : 'शीलपालन की द्रष्टि से हम गिर गये हैं । शील के माध्यम से न तो हमारा आत्मकल्याण कर सकते हैं, न ही जिनशासन की उन्नति कर सकते हैं । हमारी निर्बलता कहें, निर्लज्जता कहें या मजबूरी कहें...., कुछ भी कहें, इस दूषित वातावरण में शील का पालन असंभव–सा लगता है । फिर भी जो शील का पालन करते हैं वे वंदनीय हैं, पूजनीय हैं !'

उस भाई की बात बहुत ही स्पष्ट थी । दंभ करने का कोई प्रयोजन नहीं था हमारे पास । मैंने सुन ली उसकी बात । सामाजिक परिवर्तन सामने दिखाई देता है । धर्मस्थानों में भी विकृतियाँ प्रविष्ट हुई है । रोग के किटाणु जहाँ पर भी फैलेंगे, रोग पैदा करेंगे । आप लोग जहाँ पर भी जाओगे, विकृतियाँ फैलनेवाली हैं ! ठीक है, इस विषय मैं वैसे भी मैं ज्यादा चर्चा नहीं करता हूँ । चर्चा करने का कोई अर्थ नहीं है । जैसे कोई बड़ी झील टूट जाय और पासवाले गाँवों को डूबो दे, वैसे यह दुःशीलता की झील टूट गयी है, उसमें देश और दुनिया डूब रही है । बचने का कोई उपाय नहीं दिखता है । वर्तमान काल में परिशुद्ध शीलपालन से शासनोन्नति प्रायः संभव नहीं है ।

## छट्ठा उपाय है जिनमंदिरों का निर्माण :

अब अपने आगे बढ़ते हैं । जिनशासन की उन्नति के सात उपायों में से छट्ठा उपाय है जिनमंदिर का निर्माण करना । यानी जिनमंदिरों को देखकर दूसरे लोग जिनशासन की प्रशंसा करें ! ऐसी प्रशंसा तभी हो सकती है, जब कि अन्य–अन्य धर्मवालों के मंदिरों से बढ़कर जिनमंदिर हो ! कला की द्रष्टि से,

शिल्पस्थापत्य की दृष्टि से, भव्यता और विशालता की दृष्टि से जिनमंदिर अद्वितीय होगा तभी उसकी सर्वत्र प्रशंसा होगी ।

देश-विदेश के लोग आबू-देलवाड़ा जाते हैं, वहाँ के कलात्मक भव्य जिनमंदिरों को देखते हैं; कला, शिल्प वगैरह देखते हैं और श्रद्धा से, प्रेम से अभिभूत हो जाते हैं । 'दुनिया में कहीं पर भी ऐसे मंदिर नहीं देखे !' बोलते हैं लोग । ऐसे जिनमंदिरों को ८०० वर्ष पूर्व गुजरात के महामंत्री विमल शाह ने, महामंत्री वस्तुपाल-तेजपाल ने बनवाये थे । अनुपमादेवी ने वहाँ स्वयं रहकर मंदिर का निर्माण करवाया था ! ८०० साल से ये मंदिर लाखों लोगों को जिनशासन के प्रति आकर्षित करते हुए खड़े हैं !

क्या आप जानते हैं अनुपमादेवी को, जो कि तेजपाल की पत्नी थी । उसने देलवाड़ा में जमीन कैसे ली थी ? वहाँ के राजा ने कहा था - 'जितनी जमीन चाहिए उतनी जमीन पर चाँदी के सिक्के बिछा दो; जमीन आपकी, सिक्के हमारे !' अनुपमादेवी ने गोल सिक्के नहीं, चौरस सिक्के बनवाकर जमीन पर बिछवा दिये थे और परमार राजा से जमीन ली थी ! राजा भी दंग रह गया था ! जिनशासन से प्रभावित हुआ था ।

जिनमंदिर का निर्माण भी कितनी उदारता से किया ? पढ़ा है इतिहास ? नहीं पढ़ा हो तो अवश्य पढ़ना । मालुम होगा कि जिनमंदिर कैसे बनाया जाता है ? अपने स्वयं के लाखों-करोड़ो रुपये खर्च कर, भव्य और रमणीय जिनालय बनाने चाहिए । आपके जीवन का श्रेष्ठ सुकृत होगा, जिनशासन की प्रभावना होगी । यदि पुण्योदय से पैसे मिले हैं, तो सदुपयोग कर लो ।

## श्रीमंत लोग भी मंदिर के लिए चंदा इकट्ठा करते हैं !

आज के समय में आप लोगों के पास कैसे पैसे आये हैं ? पैसों का सदुपयोग करने की भावना भी पैदा नहीं होती ! सभी शुभ कार्यों में, जिनमंदिर का निर्माण करना श्रेष्ठ शुभ कार्य है । परमात्मा के प्रति आपके हृदय में उत्कृष्ट भक्ति होगी, तो आप परमात्मा के मंदिर के निर्माण में कोई कसर नहीं छोड़ेंगे । एक लड़की की शादी में उसके श्रीमंत पिता ने दो करोड़ रुपये का खर्च किया । हमने पूछा : 'इतना सारा खर्च क्यों किया ?' उन्होंने कहा : 'मुझे मेरी लड़की

बहुत प्यारी है, उससे बढ़कर कोई नहीं ! इसलिए उसकी शादी भव्यता से की !

बात कितनी तर्कयुक्त है ! मनोवैज्ञानिक बात है । अपनी प्रिय व्यक्ति के लिए जो कुछ करना चाहे मनुष्य, करने के लिए स्वतंत्र है । वह किसी से बँधा हुआ नहीं है । कोई मनुष्य को परमात्मा प्रिय हैं, तो उनके नाम पर, उनकी प्रतिमा पर, उनके मंदिर पर करोड़ों रुपये खर्च कर सकता है ।

## भगवान कृष्ण के नाम पर २५ करोड़ का दान ! :

अभी-अभी मैंने एक प्रसिद्ध अखबार में पढ़ा कि एक श्रीमंत महिला ने एक हॉस्पिटल बाँधने के लिए २५ करोड़ रुपयों का दान दिया । उसने शर्त रखी है कि हॉस्पिटल में उसका नाम नहीं रहेगा, फोटो नहीं रहेगा ! नाम रहेगा भगवान श्रीकृष्ण का ! मूर्ति (स्टेच्यू) रहेगी भगवान श्रीकृष्ण की ! इस कलियुग में भी ऐसी उदार और गुप्त दान करनेवाली महिलायें है न ! इस देश की धरती कभी कम, कभी ज्यादा ऐसी उत्तम व्यक्तियों को जन्म देती रहती है !

## राणकपुर का जैनमंदिर ९९ करोड़ में बना था ! :

करिबन ५०० वर्ष पूर्व राजस्थान में सादड़ी गाँव के पास जंगल में, पहाड़ों के बीच बना हुआ भव्य जिनमंदिर देखा है क्या ? अवश्य यात्रा करना । धनाशा पोरवाड़ ने, एक ही नरवीर ने यह मंदिर बनवाया था । ९९ करोड़ रुपये लगे थे उस मंदिर के निर्माण में ! ५०० वर्ष पूर्व ९९ करोड़ रुपये लगे थे ! आज के हिसाब से कितने रुपये लगे होंगे ?

राणकपुर में प्रतिवर्ष हजारों विदेशी पर्यटक आते हैं, हजारों यात्रिक आते हैं और मंदिर देखकर धन्य-धन्य हो जाते हैं । वहाँ का अद्‌भुत शिल्प और स्थापत्य देखकर दिमाग चकराने लगता है । अति विशाल मंदिर होते हुए भी Air & Light - हवा और प्रकाश की व्यवस्था देखना ! मंदिर के किसी भी भाग में जाकर खड़े रहो, वहाँ आपको प्रकाश मिलेगा, हवा मिलेगी ! और करिबन १४४४ खंभे हैं उस मंदिर में ।

रमणीय प्रदेश है । सुविधापूर्ण धर्मशाला है ! भव्य देरासर है । नयनरम्य जिनप्रतिमा है ! दर्शन-पूजन और स्तवन कर पुण्य के भंडार भरते रहो !

आजकल लोग छोटा–सा मंदिर बाँधने के लिए भी चंदा इकट्ठा करते हैं। स्वयं श्रीमंत होते हैं, खुद के बंगले लाखों रुपये के होते हैं; परंतु मंदिर बनाने के लिए गाँव में चंदा करते हैं, बाहर गाँव जाकर चंदा करते हैं !

गुजरात के एक गाँव के लोग हमारे पास आये। उन्होंने कहा : 'हमारे गाँव में २५ लाख रुपये खर्च कर हम देरासर बाँधने जा रहे हैं। इसलिए हम चंदा करने निकले हैं।' मैंने कहा : 'आपके गाँव में आपको मंदिर बाँधना है, तो गाँववालों को ही पैसे देने चाहिए। यदि २५ लाख रुपये गाँववाले इकट्ठे नहीं कर सकते, तो १० लाख का बाँधो, ५ लाख का बाँधो ! हालाँकि आपके गाँववाले तो बहुत सुखी हैं, २५ लाख इकट्ठे कर सकते हो !'

कितनी गलत परंपरा शुरू हो गई है ? बाहर गाँव के पैसे लाकर अपने गाँव में मंदिर बाँधना कितना गलत है ? हाँ, गाँव के लोग श्रीमंत नहीं हो, गाँव में मंदिर नहीं हो, अथवा मंदिर का जीर्णोद्धार करना आवश्यक हो, तो बाहर गाँव जाकर पैसे ला सकते हो और मंदिर का निर्माण कर सकते हो।

परंतु अपनी बात वह नहीं है। सामान्य कोटि के मंदिर से शासन प्रभावना नहीं होती है। विशिष्ट कोटि के मंदिर से शासन की उन्नति होती है। शत्रुंजय के पहाड़ पर जो लोग जाते हैं, गिरनार के पहाड़ पर जो जाते हैं; वहाँ के मंदिरों की दुनिया को देखकर प्रशंसा के फूल बिखेरते हैं। पावापुरी का जलमंदिर और जैसलमेर–लौद्रवाजी के भव्य मंदिर, लोगों के चित्त को आकर्षित करते हैं। तारंगाजी (गुजरात) का गगनस्पर्शी भव्य मंदिर और विराटकाय प्रतिमा, किसके मन को मोहित नहीं करते ? राजा कुमारपाल का ८०० वर्ष पूर्व बनवाया हुआ यह मंदिर, जिनशासन का गौरव है।

वर्तमान काल में भी कई जगह सुंदर कलात्मक मंदिर बन रहे हैं। मेहसाना (गुजरात) का सीमंधरस्वामी का मंदिर और पालिताना–सोनगढ़ रोड़ पर बना हुआ कीर्तिधाम – दर्शनीय मंदिर बने हैं।

जिनमंदिर का निर्माण विधिपूर्वक, शास्त्रीय विधिपूर्वक किया जाता है। खान में पत्थर निकालने से लेकर, प्रतिमा का सर्जन करने तक सब कुछ विधिपूर्वक किया जाता है। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि मंदिर बनानेवाले गृहस्थ के उत्कृष्ट

भाव और पत्थर घड़नेवाले शिल्पी के शुभ भाव होने चाहिए । उत्कृष्ट शुभ भाव से जो मंदिर बनता है, उस मंदिर में जानेवालों को चित्त की प्रसन्नता प्राप्त होती है । शुभ भावों से प्रभावित क्षेत्र की महिमा होती है ।

इसलिए तो आबू–देलवाड़ा पर अनुपमादेवी जब मंदिर बनवा रही थी, तब शिल्पियों का पूरा खयाल रखती थी । अत्यंत शीत लहर जब चलती थी, तब हर शिल्पी के पास सिगड़ी रहती थी । कोई शिल्पी–कारीगर बीमार होता, तो उसका औषधोपचार होता था । यह शास्त्रीय विधान है कि मंदिर बनानेवाले सभी के चित्त प्रसन्न और संतुष्ट रहने चाहिए । किसी का भी मन उद्विग्न या असंतुष्ट नहीं रहना चाहिए ।

## मंदिरों की देखभाल आवश्यक :

मंदिर बन जाता है, प्रतिष्ठा महोत्सव भी हो जाता है । लाखों–करोड़ों रुपये खर्च हो जाते हैं । धूमधाम मचती है । परंतु बाद में जब पूजारी का पगार नक्की करने की बात आती है, तब कम–से–कम पगार देने की भावना रहती है ! पुजारी का मन संतुष्ट नहीं रहता है । घर चलाने के लिए हजार रुपये चाहिए, उसको पगार मिलता है ७०० या ८०० रुपये !

**सभा में से :** हम लोग तो ५०० रु. ही देते हैं !

**महाराजश्री :** फिर मंदिर में चोरी करने का विचार आयेगा न ? बहुत सोचने की बात है । २५ या ३० लाख का मंदिर बनाया, करोड़–५० लाख रुपये प्रतिष्ठा में खर्च किये, उस समय क्या निभाव–फंड करते हो ? जो संघ २५–५० लाख की बोलियाँ बोल सकता है, वह संघ ४/५ लाख का निभाव–फंड नहीं कर सकता है क्या ? अच्छा निभाव–फंड होगा तो पुजारी को पगार भी पूरा दिया जा सकेगा । यदि संघ समृद्ध नहीं है, ज्यादा पगार नहीं दे सकता है, तो देव द्रव्य में से पगार दिया जा सकता है । परंतु पुजारी का मन प्रसन्न रहना चाहिए। उसका गुज़ारा अच्छी तरह होता रहेगा, तो वह मंदिर को अच्छी तरह सँभालेगा। कभी चोरी नहीं करेगा !

मांडवगढ़ के महामंत्री पेथड़ शाह ने देवगिरि में भव्य मंदिर बनवाया था।

प्रतिष्ठा के दिन पुजारी को स्थावर–जंगम इतनी संपत्ति दी कि उसकी सात पीढ़ी तक चलती रहे ! कहिये, वह पुजारी मंदिर को किस तरह सँभालेगा ?

एक तीर्थस्थान में नया विशाल मंदिर बना, एक करोड़ रुपये का बना होगा। उस मंदिर का वहीवट करने के लिए मुनिम की आवश्यकता थी। एक श्रावक को बुलाया गया। श्रावक ने कहा : मुझे हर महिने एक हजार का पगार मिलना चाहिए। साधारण खाते में से पगार मिलना चाहिए। मंदिर के ट्रस्टियों ने कहा – हमारे पास साधारण खाते के पैसे ज्यादा नहीं हैं ! हम आपको हर महिने ६०० रुपये दे सकते हैं ! श्रावक ने मना कर दिया। उस श्रावक ने मुझसे कहा – क्या मेरे परिवार का गुजारा ६०० रुपये में हो सकता है ? ट्रस्टी लोग इतना विचार भी नहीं करते !

मंदिर बनाने के साथ–साथ उसका निभाव–फंड करना ही चाहिए। नौकरी करनेवालों को पर्याप्त सुविधा देनी चाहिए और पर्याप्त पगार देना चाहिए। वहाँ संकोच नहीं करना चाहिए। नौकरों को खुश रखो। वे लोग तन–मन से भगवान की सेवा करेंगे। मंदिर को किसी प्रकार का नुकसान नहीं होने देंगे।

सभा में से : मुनिमों को पूरा वेतन नहीं मिलता है तो वे मंदिर की पेढ़ी में गोटाला करते हैं। यात्रिकों से रिश्वत लेते हैं।

महाराजश्री : इसलिए तो यह बात समझाता हूँ। लाखों–करोड़ों की लागत से मंदिर बनाते हो, बाद में मंदिर की चाबी जिसको सौंप देते हो, उस मुनिम या पुजारी को पर्याप्त वेतन देना ही चाहिए।

## लक्ष्य जिनशासन की उन्नति का रहना चाहिए :

यह तो प्रासंगिक बात कह दी है। प्रस्तुत में बात है जिनशासन की उन्नति करने की। हर श्रावक–श्राविका के मन में जिनशासन के प्रति गाढ़ लगाव होना चाहिए। सबसे ज्यादा प्रिय जिनशासन होना चाहिए। तब उस शासन की उन्नति करने के ये सारे उपाय सहजता से किये जायेंगे। अपनी–अपनी संपत्ति के अनुसार आप लोग उपाय करते रहें। अपने मन में निर्णय करें कि 'मेरे संयोग अनुकूल होंगे, मेरे पास संपत्ति आयेगी तब सर्वप्रथम जिनमंदिर बनाऊँगा।' करोगे निर्णय ?

जिनशासन की उन्नति करने का महान फल क्या है, जानते हो न ? श्रेष्ठ पुण्यकर्म बँधता है। तीर्थंकर नामकर्म बँधता है।

जिनशासन की उन्नति करने में प्रवृत्तिशील बने रहो, यही मंगल कामना।

आज बस, इतना ही।

* * *

# प्रवचन : ४४

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में श्रावक जीवन के विषय में विशद मार्गदर्शन दिया है । यदि आप लोग उस मार्गदर्शन के अनुसार अपना जीवन बनाने का दृढ़ता से पुरुषार्थ करें, तो आपका जीवन धन्य हो जाय । इतना ही नहीं, जिनशासन की भी भव्य उन्नति होने लगे ।

परंतु सबसे ज्यादा मुश्किल काम है जीवन–परिवर्तन का । भोजन का परिवर्तन, वस्त्र का परिवर्तन, घर का परिवर्तन सुलभ है, जीवन–परिवर्तन करना दुर्लभ है । परन्तु यह किये बिना मोक्षमार्ग की आराधना संभवित नहीं है ।

– आपको अपने विचारों में परिवर्तन लाना होगा ।

– आपको अपने पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवहारों में परिवर्तन लाना होगा ।

– आपको दर्शन, श्रवण और वचन में परिवर्तन लाना होगा ।

ये सारे परिवर्तन जिनवचन के अनुसार लाने होंगे । जीवन हर दृष्टि से श्रेष्ठ बन जायेगा । महान पुण्य के उदय से जब मनुष्य जीवन मिला है, तो फिर श्रेष्ठ जीवन क्यों न जीना ?

एक बात समझ लेना कि मात्र पैसे से, वैभव–संपत्ति से श्रेष्ठ जीवन नहीं जीया जा सकता है । तुम्हारे पास कितना वैभव है, उस पर श्रेष्ठ जीवन का प्रमाणपत्र नहीं दिया जाता है । आपको कितनी शान्ति है, समता है, प्रसन्नता है – उस पर श्रेष्ठ जीवन निर्भर है ।

इस ग्रन्थ में श्रेष्ठ जीवन जीने की जो रीत बताई गई है, आप यदि पसंद करें और वैसा जीवन जीने का पुरुषार्थ करें, तो इसी जीवन में आप शान्ति, समता और प्रसन्नता का मधुर अनुभव कर सकते हैं । आपके पास पैसे कम हो या ज्यादा हो, आपका घर छोटा हो या बड़ा हो, आपका व्यवसाय छोटा हो या बड़ा हो – इन बातों का कोई महत्त्व नहीं है । आप यदि सही अर्थ में

श्रावक बनते हैं, तो आप सदैव प्रसन्नता का अनुभव करेंगे । शान्ति–समता और पवित्रता आपके मुखमंडल पर छायी रहेगी ।

श्रीमंत बनने की दुनिया की दौड़ में मत दौड़ते रहो । बाहर हो जाओ इस दौड़ में से । भाग्य पर भरोसा करो । जितना अर्थ–पुरुषार्थ आवश्यक हो, उतना ही करो । जीवन–परिवर्तन के प्रति अपना ध्यान केन्द्रित करो ।

## जिनशासन की उन्नति के लिए यात्रासंघ :

श्रावक जीवन में जिनशासन की उन्नति का एक विशिष्ट कर्तव्य बताया गया है । जिनशासन की उन्नति के लक्ष्य से

- सम्यग् न्यायपूर्ण व्यवहार करना है ।
- लोगों का यथोचित विनय करना है ।
- दीन–अनाथ लोगों का समुद्धार करना है ।
- सुविहित साधुपुरुषों का पुरस्करण करना है ।
- परिशुद्ध शील का पालन करना है ।
- जिनमंदिरों का निर्माण करना है और
- तीर्थयात्रा, जिनजन्माभिषेक वगैरह विविध उत्सवों का आयोजन करना है ।

आज मैं सातवाँ उपाय समझाऊँगा । उसमें भी सर्वप्रथम तीर्थयात्रा के विषय में समझाऊँगा । तीर्थयात्रा में दो शब्द हैं तीर्थ और यात्रा । तीर्थ का अर्थ और उसका महत्त्व समझना होगा । यात्रा किस प्रकार करनी चाहिए, यह भी अच्छी तरह समझना होगा । यात्रा के विषय में महान ज्ञानी आचार्यों ने परिपूर्ण मार्गदर्शन दिया है । उसी के आधार पर मैं आज आपको मार्गदर्शन दूँगा ।

## 'तीर्थ' शब्द की परिभाषा :

पहले तीर्थ के विषय में समझाता हूँ । संस्कृत में 'तीर्थ' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गयी है – 'तीर्यते अनेन इति तीर्थम् ।' जिसके सहारे जीवात्मा भवसागर तैर जाय, उसको तीर्थ कहते हैं । ऐसे तीर्थ दो प्रकार के होते हैं : स्थावर और जंगम । स्थावर यानी स्थिर, जंगम यानी चलते–फिरते – 'मोबाईल' तीर्थ !

शत्रुंजय, गिरनार, सम्मेतशिखर, आबू वगैरह स्थावर तीर्थ कहे जाते हैं। तीर्थंकरों की कल्याणक भूमियों को भी तीर्थ कहते हैं। कोई प्रभावशाली जिनप्रतिमा से महिमाशाली बने हुए मंदिर को भी तीर्थ कहते हैं। ये सारे स्थावर तीर्थ हैं। साधु–साध्वी जंगम तीर्थ हैं। चलते–फिरते तीर्थ।

जो तारे उसका नाम तीर्थ ! तीर्थ तारता है, परंतु जिसको तैरना होता है, तैरने की प्रबल इच्छा होती है, उसको तारता है। तैरने का प्रयत्न करता है, उसको वह तारता है। मैं आपसे पूछता हूँ : क्या आपको भवसागर तैरना है ? आपको पापसागर तैरना है ? सामने किनारे पर जाना है ? भवसागर के उस पार क्या है, जानते हो ? ज्ञानदृष्टि से वह किनारा देखा है ? वह मोक्ष है, मुक्ति है ! जाना है उधर ? तीर्थयात्रा तभी सफल होगी।

लगभग सभी धर्मों के अपने–अपने तीर्थ हैं। जैन के हैं, हिन्दुओं के हैं, शीखों के हैं, बौद्धों के हैं और मुसलमानों के भी हैं। भारत में तीर्थ हैं वैसे दूसरे देशों में भी तीर्थ हैं। तीर्थ की संस्कृति भगवान आदिनाथ जितनी पुरानी है।

वैसे, शाश्वत तीर्थ और अशाश्वत तीर्थ – दो प्रकार के तीर्थ हैं। शत्रुंजय तीर्थ शाश्वत कहा जाता है। शत्रुंजय का पहाड़ अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहेगा। कुछ तीर्थ बनते हैं और नष्ट होते हैं – वे अशाश्वत तीर्थ कहलाते हैं।

## यात्रा करने की रीत :

ऐसे कल्याणकारी पवित्र तीर्थों की यात्रा किस प्रकार करनी चाहिए, पहले वह रीत बताता हूँ, बाद में आप लोग कैसी–कैसी गलतियाँ करते हो, वह बताऊँगा। क्योंकि आप लोग तीर्थयात्रा मात्र आपके लिए ही करते हो, जिनशासन की उन्नति का लक्ष्य चूक गये हो, ऐसा बन गया है।

पहली बात है पदयात्रा की। तीर्थ में पैदल चलकर जाना चाहिए। किसी वाहन में बैठकर नहीं जाना चाहिए। शारीरिक अस्वस्थता के कारण वाहन का उपयोग करना पड़े, वह अपवादमार्ग है। चतुर्विध संघ मिलकर साथ में यात्रा

करें । साधु–साध्वी, श्रावक और श्राविका – यह चतुर्विध संघ है । सभी को चलकर तीर्थ में जाना है ।

जहाँ से संघ प्रयाण करें वहाँ से निम्न नियमों का पालन करना होता है :

- प्रतिदिन एक बार ही भोजन करना होता है, यानी एकासन अथवा आयंबिल ।
- ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना होता है ।
- वनस्पति वगैरह सचित्त वस्तु को खाना नहीं है ।
- पलंग–गद्दी पर शयन करना नहीं है और
- सर्वज्ञ परमात्मा, वीतराग शासन के साधुपुरुष और सर्वज्ञ के धर्म पर पूर्ण श्रद्धा–विश्वास धारण करने का होता है ।

जब तक यात्रा पूर्ण न हो, तब तक इन नियमों का दृढ़ता से पालन करना होता है । भोजन के विषय में इतना सख्त नियम नहीं है । शारीरिक कारण से दो बार भोजन करना पड़ता हो, तो दो बार करें; परंतु गुरुदेव को पूछकर, उनकी अनुमति लेकर करें ।

## संघयात्रा से जनता प्रभावित होनी चाहिए :

संघ निकालनेवाला संघपति उदार प्रकृति का होना चाहिए । जिस–जिस गाँव–नगरों से संघ गुजरे, उस–उस गाँव में :

- दुःखी साधर्मिकों का उद्धार करना चाहिए ।
- गरीब प्रजा को अनुकम्पा–दान देना चाहिए । वस्त्र, भोजन वगैरह देना चाहिए ।
- हॉस्पिटल में, शाला में, पांजरापोल में यथोचित अर्थदान देना चाहिए ।
- आयंबिल शाला, पाठशाला वगैरह जैन संस्थाओं में भी दान देना चाहिए ।

दान से ही सामान्य जनता प्रभावित होती है और प्रशंसक बनती है । इसलिए संघपति को पहले से ही मार्गदर्शन दे देना चाहिए । रास्ते के गाँवों में कोई सार्वजनिक परोपकार का काम आये तो संघपति अच्छा अर्थदान देकर, जनता को आनन्दित कर दे ! संघपति जैसे उदार होना चाहिए, वैसे शान्त स्वभाव

का होना चाहिए। प्रसन्नचित्त एवं प्रसन्नवदन होना चाहिए। संघ के सभी लोगों का खयाल करनेवाला होना चाहिए।

जिस-जिस गाँव में संघ जाय, उस गाँव में जिनमंदिर हो तो जिनमंदिर में पूजा वगैरह का आयोजन करना चाहिए। दूसरे अजैन मंदिरों में भी श्रीफल वगैरह पूजापा भेज देना चाहिए। अन्य देवी-देवताओं का भी अनादर नहीं करना चाहिए। आशातना नहीं करनी चाहिए।

## तीर्थ में पहुँचने के बाद :

तीर्थ में बड़े आडंबर के साथ यात्रासंघ का प्रवेशमहोत्सव होना चाहिए। तीर्थमाला पहनने का आयोजन होना चाहिए। स्वामिवात्सल्य होना चाहिए। गरीबों को अनुकंपा-दान देना चाहिए। तीर्थक्षेत्र में, जिस-जिस क्षेत्र में पैसे की कमी हो, उस-उस क्षेत्र को समृद्ध करना चाहिए।

तीर्थपति परमात्मा की भक्ति का, पूजन का भव्य कार्यक्रम आयोजित होना चाहिए। दर्शन-पूजन-स्तवन और गीत-नृत्य करते हुए भक्तिभाव में विभोर हो जाना चाहिए।

तीर्थक्षेत्र में अजैन प्रजा रहती हो, उनकी भी उचित सहायता करनी चाहिए। दुःखी परिवारों का दुःख दूर करने का प्रयास करना चाहिए। यह सब करने से ही जिनशासन की उन्नति होती है। अपने हृदय में भी जिनशासन के प्रति अपूर्व भक्तिभाव उभरता है।

## पूर्व महापुरुषों को याद करें :

जब जब तीर्थयात्रा के, यात्रासंघ के आयोजन हो, तब जैन इतिहास में सुवर्णाक्षरों से लिखे गये महान संघपतियों के नाम और काम का वर्णन पढ़ लेना चाहिए, अथवा गुरुमुख से सुन लेना चाहिए। इससे आपके हृदय में भी अच्छे मनोरथ पैदा होंगे। "मैं भी इस-इस प्रकार भव्य यात्रासंघ निकालूँगा।' ऐसी भावनाएँ पैदा होंगी।

– राजा विक्रमादित्य ने सिद्धसेन दिवाकरसूरि की निश्रा में पाँच हजार जितने जैनाचार्यों के साथ, लाखों स्त्री-पुरुषों का संघ निकाला था।

– राजा सिद्धराज ने और राजा कुमारपाल ने कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरिजी की निश्रा में भव्य संघ निकाले थे ।

– महामंत्री वस्तुपाल–तेजपाल ने भी गिरिराज का संघ निकाला था ।

– मांडवगढ़ के महामंत्री झांझण शाह ने भी गिरिराज का संघ निकाला था। वैसे आभू संघवी वगैरह की संघयात्राएँ जिनशासन की अपूर्व उन्नति करनेवाली बनी थी । जिनशासन की उन्नति के लक्ष्य से ही संघ निकलते थे और होती भी थी उन्नति और प्रभावना ।

## अजैन प्रजा को धर्मोपदेश :

संघयात्रा के दौरान एक महत्त्व का कार्य करना चाहिए, वह है अजैन प्रजा को धर्मोपदेश सुनाने का । दिन में या रात्रि में, सारा गाँव इकट्ठा किया जाय और प्रवचन करनेवाले आचार्यादि मुनिवर, ऐसा धर्मोपदेश सुनाये कि जिससे जिनशासन के प्रति प्रजा के मन में सद्भाव–प्रेमभाव बढ़े ।

अजैन प्रजा के सामने प्रवचन देते समय प्रवचनकार को चाहिए कि वे अजैन प्रजा के देव–देवियों की निन्दा नहीं करें। जिनशासन की श्रेष्ठ आचार–मर्यादाओं का विवेचन करें, परंतु इतर धर्मों पर प्रहार नहीं करें । प्रजा का दिल दुःखे वैसी बातें, भले सही बातें हो, नहीं करनी चाहिए । सब प्रकार का सत्य सभी जगह बोलने का नहीं होता है । अजैन प्रजा को खास कर, व्यसनों से मुक्त होने का एवं हिंसाचार छोड़ने का उपदेश देना चाहिए। दान और शील का उपदेश देना चाहिए। जैनदर्शन, जैनधर्म की विशाल द्रष्टि का बोध कराना चाहिए। जैनशासन मात्र जैनों का ही नहीं हैं, जीवमात्र का कल्याण चाहनेवाला धर्मशासन है । चार वर्ण के सभी लोग जैनधर्म स्वीकार कर सकते हैं । 'जैन' **शब्द जातिवाचक नहीं है, धर्मवाचक है** । भगवान महावीर क्षत्रिय थे और उनके ११ प्रमुख शिष्य ब्राह्मण थे ! जैनधर्म सभी का है । सभी के लिए जैनधर्म के द्वार खुल्ले हैं ।

इस प्रकार का उपदेश देने से एवं गीता, उपनिषद्, भागवत, वेद वगैरह ग्रन्थों में से उद्धरण देने से, अजैन प्रजा बहुत ही प्रभावित होती है । इस प्रकार के प्रवचन हर गाँव में होने चाहिए। प्रवचनों से जिनशासन की अपूर्व उन्नति होती

है । आप दान दें, हम प्रवचन दें । आप द्रव्य का दान दें, हम भावों का दान दें ! उदारता से दें ! थके बिना दें, देते रहें ! जिनशासन के प्रति हजारों लोगों का आकर्षण जगेगा ।

## व्यक्तिगत तीर्थयात्रा :

यह तो मैंने संघयात्रा के विषय में बताया कि जो जिनशासन की उन्नति का एक प्रमुख कारण है । प्रासंगिक रूप से, व्यक्तिगत तीर्थयात्रा के विषय में भी मार्गदर्शन देता हूँ ।

तीर्थयात्रा करने आप संघ के साथ नहीं जा रहे हैं, अकेले अथवा परिवार के साथ जा रहे हैं, आप पैदल जा सकते हैं । साथ में कार वगैरह वाहन रख सकते हैं । आपका सामान, नौकर वगैरह वाहन में जा सकता है, आप लोग पैदल जायँ । आपको सोना–चाँदी के आभूषण नहीं पहनने चाहिए । ज्यादा रुपये भी जेब में नहीं रखने चाहिए । निर्भयता से आप चले जा सकते हो । कम–से–कम दो–चार व्यक्ति होने चाहिए । कुछ साहसिक पुरुष अकेले भी जाते हैं ! उपर जो नियम बताये, उन नियमों का पालन अवश्य करना चाहिए ।

## कुछ सावधानियाँ :

- रास्ते चलते हुए रेड़ियों नहीं सुनना चाहिए ।
- रास्ते चलते हुए आपस में फालतू बातें नहीं करनी चाहिए, किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए, गप्पे नहीं मारने चाहिए ।
- किसी के साथ लड़ाई–झगड़ा नहीं करना चाहिए ।
- कोई कष्ट आये, कोई असुविधा हो, तो समताभाव रखना चाहिए ।
- साथी यात्रियों के साथ मैत्रीभाव रखना चाहिए ।
- कोई बीमार हो जाय तो उसकी सेवा करनी चाहिए ।
- जाते समय जहाँ–जहाँ मुकाम करें, वहाँ प्रतिक्रमण, सामायिक, स्वाध्याय, प्रभुभक्ति, श्री नवकार मंत्र का जाप, जिस तीर्थपति के पास जाते हों, उनके नाम की माला का जाप करना चाहिए ।
- जुआ नहीं खेलना चाहिए ।

तीर्थस्थान में पहुँचने के बाद भावोल्लास के साथ एवं विधिपूर्वक यात्रा करनी चाहिए। शक्ति के अनुसार दान देना चाहिए एवं अनुकंपा–दान देना चाहिए।

जीवन में कुछ परिवर्तन करने का तीर्थ में संकल्प करना चाहिए। जैसे कि :

– अब मैं क्रोध नहीं करूँगा।

– अब मैं घर में या बाहर, जमीनकंद नहीं खाऊँगा।

– अब मैं रात्रिभोजन नहीं करूँगा।

– अब मैं बिना प्रयोजन हॉटल में भोजन नहीं करूँगा।

– अब मैं रोजाना परमात्मा की पूजा करूँगा।

– अब मैं रोजाना कम–से–कम नवकारशी का पच्चक्खाण करूँगा।

– अब मैं व्यापार में बेईमानी नहीं करूँगा।

– अब मैं बीड़ी–सिगरेट नहीं पीऊँगा (यदि पीते हों तो)।

– अब मैं तंबाकू का पान–मावा नहीं खाऊँगा।

– प्रति वर्ष एक तीर्थयात्रा करूँगा।

ऐसा कोई न कोई संकल्प करना चाहिए। इससे तीर्थयात्रा की सफलता प्राप्त होती है। दूसरे लोग भी आपकी प्रशंसा करेंगे। यात्रा करना है तो इस प्रकार करो। तीर्थभूमि में जाकर, कम–से–कम पाप–प्रवृत्तियाँ तो करना ही नहीं।

## तीर्थक्षेत्रों में पाप–प्रवृत्ति नहीं करें :

यदि तीर्थस्थानों में जाकर पाप किये, तो उसके भयंकर परिणाम इस जन्म में और परलोक में भोगने पड़ेंगे। तीर्थक्षेत्र पाप करने के लिए है ही नहीं। जिनको पाप करने हैं, उनको तीर्थक्षेत्रों में जाना ही नहीं चाहिए। क्यों जायँ तीर्थक्षेत्र में ?

सभा में से : दूसरी जगह जायँ तो खर्च ज्यादा होता है, तीर्थ की धर्मशाला में कमरा ५/१० रुपयों में मिल जाता है ! और, वहाँ कोई पूछनेवाला भी नहीं होता है !

महाराजश्री : पूछनेवाला भले ही न हो, देखनेवाले तो होते हैं ! एक नहीं, अनंत विशुद्ध आत्माएँ देखती हैं ! अनंत सिद्ध भगवंत देखते हैं। महाविदेह–

क्षेत्र के दो करोड़ केवलज्ञानी देखते हैं। पाप करनेवाले उनको नहीं देखते, वे तो चराचर विश्व को देखते हैं! कमरा बंद करके पाप करो या भूगर्भ में जाकर पाप करो – अनंत सिद्धात्माएँ देखती ही हैं।

तीर्थस्थानों की धर्मशालाएँ क्या धर्म करने की शालाएँ रही हैं? नहीं न? ज्यादातर लोग धर्मशाला में रात्रिभोजन करते हैं, जमीनकंद खाते हैं, जुआ भी खेलते हैं!

एक तीर्थस्थान के ट्रस्टी ने मुझे बताया था कि रात को बारह बजे धर्मशाला का चौकीदार मेरे पास आया और मुझे जगा कर बोला : 'धर्मशाला के एक कमरे में कुछ लोग जुआ खेल रहे हैं।' मैं चौकीदार के साथ गया उस कमरे के पास। दरवाजा खटखटाया। दरवाजा नहीं खुला। मैंने कहा : 'मैं इस तीर्थ का मेनेजिंग ट्रस्टी हूँ, मेरा नाम..... है। दरवाजा खोलिए, अन्यथा पुलिस स्टेशन पर फोन करता हूँ।' पुलिस का नाम सुनकर भीतर के लोग गभराये। झटपट बाजी समेटकर, जो छिपाना था वह छिपाकर दरवाजा खोला! मैंने देखा तो बड़े शहर के अच्छे व्यापारी थे वे लोग! मुझे देखकर उनको शर्म आ गयी। वे मौन खड़े रहे। मैंने कहा : 'आप अभी इसी समय धर्मशाला छोड़कर चले जाइये। यह तीर्थ है, यहाँ जुआ खेलना महापाप है। अपराध है।'

रात को एक बजे वे लोग अपनी–अपनी गाड़ी में बैठकर चले गये।

यह तो ट्रस्टी जाग्रत थे, जो रात को १२ बजे धर्मशाला में गये। लेकिन ऐसे जाग्रत ट्रस्टी कितने? धर्मशालाएँ ज्यादातर मुनीम लोग सँभालते हैं। मुनीमों को खुश करके, आप जो चाहो धर्मशाला में करते रहो। बड़े–बड़े तीर्थों की धर्मशालाओं में कितना भ्रष्टाचार चल रहा है?

धर्मशाला बनानेवाले इस भावना से धर्मशाला बनाते हैं कि तीर्थयात्रा करनेवाले यात्रिक उसमें ठहरे और धर्म–आराधना करें। लोग लाखों रुपये इस भावना से खर्च करते हैं। धर्मशाला बनानेवालों की शुभ भावना का मूल्यांकन क्या आप लोग करते हो? भावना से विपरीत व्यवहार करके आप कितना बड़ा पाप करते हो? कब छूटोगे ऐसे पापों से?

जिनशासन की उन्नति नहीं करेंगे आप लोग तो चलेगा, परंतु जिनशासन की बदनामी तो नहीं करनी चाहिए न ? दुराचारी लोग धर्म की निन्दा करवाते हैं। स्वयं का अहित तो करते ही हैं। कौन समझाये उनको ? जो मात्र नाम के जैन होते हैं, तीर्थस्थानों में जाकर वहाँ की पवित्रता को खंडित करते हैं।

## ट्रेनों और बसों के संघ :

कुछ वर्षों से ट्रेनों में संघ निकलते हैं, बसों में संघ निकलते हैं। वे लोग तीर्थयात्रा कम, मौज–मजा ही ज्यादा करते हैं।

- कुछ लोग तीर्थ में जाकर, न तो परमात्मा का दर्शन–पूजन करते हैं, न सामायिक करते हैं।
- रात्रिभोजन करते हैं।
- जमीनकंद भी खाते हैं।
- हॉटलों में चले जाते हैं।
- रेड़ियों बजाते रहते हैं ! जुआ खेलते हैं, ताश खेलते हैं। संघपति किसी को कुछ कह सकता नहीं है ! जैसे कि लोग संघपति की बरात में आये हों, वैसा व्यवहार करते हैं ! एकासन–आयंबिल की बात जाने दो, दिन में तीन–चार बार खाना खाते हैं, रोज नई–नई मिठाइयाँ बनती हैं, शरबत पिलाये जाते हैं !

न तप, न त्याग, न परमात्मभक्ति और कहते हैं कि हम संघयात्रा कर आये ! न रोजाना धर्मोपदेश सुनने मिलता है। गुरुमहाराज साथ होते नहीं हैं !

एक दिन में दो–तीन–चार तीर्थों में चले जाते हैं। व्यवस्थापक चिल्लाता है : 'जल्दी–जल्दी दर्शन कर लो, बस चलनेवाली है।' न शान्ति से दर्शन होते हैं परमात्मा के, न स्तवन–चैत्यवंदन होता है। पूजन की तो बात ही कहाँ ?

ठीक है, दस प्रतिशत या २५ प्रतिशत लोग व्यवस्थित ढंग से यात्रा करते होंगे। शेष लोग यात्रा कम, मौज–मजा ही ज्यादा करते हैं ! लड़के–लड़कियों की धमालें अलग चलती रहती हैं !

ट्रेनों में संघ बहुत निकलते हैं। लाखों रुपये खर्च होते हैं। परंतु इतना तन-मन-धन का व्यय होने पर भी फलश्रुति क्या होती है ? जीवन में कितना सुधार होता है ?

**सभा में से :** जीवन सुधारने की भावना से हम तीर्थयात्रा नहीं करते, पुण्य बाँधने के लिए करते हैं तीर्थयात्रा !

**महाराजश्री :** क्या ज्यादा बँधता है ? पुण्य या पाप ? कोई विचार ही नहीं है। यात्रा की यात्रा और घूमने को मिल जाता है मुफ्त में। इसमें भी पूर्व के देशों के तीर्थों की यात्रा में तो अनेक नगर देखने को मिल जाते हैं। कोई संघ तो कश्मीर भी जाता है !

ऐसी अनेक हरकतें तीर्थयात्राओं में चल रही है। नाम तीर्थयात्रा का, काम भवयात्रा का हो रहा है !

## तीर्थस्थानों में क्या करना चाहिए ? :

घर और दुकान, व्यापार और व्यवसाय छोड़कर जब तीर्थों में जाते ही हो, समय निकाला ही है, तो उस समय का सदुपयोग करना चाहिए।

– तीर्थ में जाकर विशेष रूप से परमात्मा की पूजा एवं भक्ति करनी चाहिए। डेढ़-दो घंटे मंदिर में बीताने चाहिए। दोपहर में जब मंदिर में भीड़ नहीं होती है तब वहाँ जाकर, शान्ति से बैठकर, परमात्मा का ध्यान करना चाहिए। आँखें मूँदकर, परमात्मा की मूर्ति के साथ मन को जोड़ना चाहिए। मात्र मूर्ति ही देखते रहना, कल्पना से। दूसरे सभी विचारों से मुक्त होकर, यदि आप परमात्मा का ध्यान करेंगे, तो अपूर्व आनन्द का आपको अनुभव होगा।

– यदि ध्यान में मन नहीं लगता हो, तो चार-पाँच भक्तिगीत-स्तवन गाना। स्तवना में मन को जोड़ना !

– हो सके उतना समय 'मौन' धारण करना !

– रात्रि के समय भी परमात्मा के साथ मन को जोड़ने का प्रयत्न करना। तीर्थक्षेत्र में, रात्रि के समय ही दिव्य अनुभव हो सकते हैं। अलबत्त, कुछ वर्षों से महिलाओं ने बड़ी आशातना करना शुरू कर दिया है। एम.सी.(मासिक)

के समय में भी कुछ अज्ञानी लड़कियाँ और औरतें मंदिर में चली जाती हैं। मंदिर में होती हैं तब एम.सी.(मासिक) में आ जाती हैं। यह बहुत बड़ी आशातना है ! ऐसा होने से तीर्थ की दिव्यता, प्रभाव, महिमा क्षीण हो जाता है !

– कुछ अज्ञानी लोग मुँह में पान या सुपारी चबाते-चबाते मंदिर में चले जाते हैं। पानी से मुँह साफ करके मंदिर में जाना चाहिए – इतना भी विवेक समझते नहीं।

३०/४० वर्ष पूर्व, भले कम लोग तीर्थयात्रा करते थे, परंतु आशातना प्रायः नहीं करते थे। वे लोग पाप से डरते थे। नियमों का पालन करते थे। उस समय तीर्थ के दिव्य प्रभाव महसूस होते थे।

## लक्ष्य रखना है शासन की उन्नति का :

यहाँ प्रस्तुत में अपनी बात है शासन की उन्नति की। जिनशासन की उन्नति के अनेक उपायों में एक उपाय है संघयात्रा। चतुर्विध संघ के साथ पैदल संघयात्रा करने की है। भव्यता से करने की है। दूसरी प्रजा आपकी संघयात्रा देखकर जैनधर्म की प्रशंसा करें। आपके हृदय में भी जिनशासन की भक्ति के भाव बढ़ते चलें।

संघयात्रा का श्रेष्ठ आयोजन करना चाहिए। जब भी अवसर प्राप्त हो, अनुकूल संयोग हो, तब ऐसा आयोजन करने के मनोरथ करते रहना।

आज बस, इतना ही।

* * *

# प्रवचन : ४५

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में श्रावक जीवन की आचारसंहिता प्रस्तुत की है। यदि आपको श्रावक जीवन जीना है, सही रूप में श्रावक जीवन जीना है, तो आपको इस ग्रंथ में से मार्गदर्शन मिल सकता है। सुचारु मार्गदर्शन मिल सकता है।

जिनशासन की उन्नति करने के सात उपाय बताये हैं। किसी न किसी उपाय से जिनशासन की उन्नति करते रहना है। जिनवचनों के प्रति स्वयं के हृदय में और दूसरों के हृदय में उच्च कोटि का भाव, अहोभाव प्रगट होना चाहिए।

सातवाँ उपाय है विविध प्रकार के उत्सवों का आयोजन करने का। ऐसा आयोजन करना चाहिए कि अजैन प्रजा उन उत्सवों में हिस्सा ले और आनंद का अनुभव करें। अजैन प्रजा के लिए ही खास कर, ये महोत्सव किये जाने चाहिए। उनके हृदय में जिनवचनों के प्रति आदरभाव पैदा करने का है। उस प्रजा के साथ आपका उचित व्यवहार होना चाहिए। किसी का भी तिरस्कार नहीं करना चाहिए। किसी का भी अपमान नहीं करना चाहिए।

## मंदिर–उपाश्रय में प्रभावना :

मंदिर में महोत्सव का आयोजन होता है; पूजाएँ, महापूजन होते हैं। जब पूजा पूर्ण होती है, लोगों को प्रभावना दी जाती है, मिठाई बाँटी जाती है अथवा फल दिये जाते हैं अथवा श्रीफल वगैरह दिया जाता है, तब कैसे दिया जाता है? न कोई शिस्त, न कोई व्यवस्था! और यदि कोई अजैन लड़का या औरत लेने के लिए आ जाती है, तो मिठाई बाँटनेवाला उसको कैसे धूत्कारता है, आपने देखा है?

'प्रभावना' करते हैं, परंतु 'प्रभावना' शब्द का अर्थ ही नहीं जानते! खास तौर से अजैन लोगों के लिए प्रभावना होती है। जिससे कि वे लोग जैनधर्म के प्रति आदरवाले बनें। परंतु उनको तो देते ही नहीं! आप लोग ही बाँट

लेते हो !

हालाँकि वर्तमान समय में प्रभावना की यह पद्धति उतनी प्रभावशाली नहीं रही है। प्रभावना लेकर घर चले जाते हैं। न भगवान को याद करते हैं, न एक शब्द प्रशंसा का बोलते हैं। जो लोगों में, आम जनता में जैनधर्म का प्रभाव उत्पन्न करे, उसको प्रभावना कहते हैं। वर्तमान काल में, इस काल के अनुरूप प्रभावना करनी चाहिए।

## जिन-जन्माभिषेक महोत्सव :

जिस प्रकार तीर्थयात्रा के माध्यम से जिनशासन की प्रभावना करने की है, वैसे विविध महोत्सवों के माध्यम से भी जिनशासन की प्रभावना करना चाहिए। अनेक महोत्सव अपने धर्मशासन में बताये गये हैं, उनमें 'जिन-जन्माभिषेक' बहुत ही आकर्षक महोत्सव है।

तीर्थंकर की आत्मा माता के उदर में आती है और माता १४ स्वप्न देखती है, वहाँ से इस महोत्सव का प्रारंभ होता है। एक प्रकार का ड्रामा-नाटक ही होता है। कोई महिला तीर्थंकर की माता बनती है। उस महिला का पति तीर्थंकर का पिता बनता है। १४ स्वप्न दिखाये जाते हैं। यह 'स्टेज-प्रोग्राम' होता है। पहले के जमाने में स्टेज-प्रोग्राम नहीं होता था, लोगों के बीच जमीन पर ही कार्यक्रम होता था। कुछ वर्षों से स्टेज-प्रोग्राम होने लगा है।

तीर्थंकर परमात्मा का जन्म होता है तब देवलोक की ५६ दिक्कुमारिकायें तीर्थंकर की माता के पास आती है और 'सुति-कर्म' करती हैं। आठ-आठ के ग्रूप में और चार-चार के ग्रूप में वे आती हैं। देवकुमारिका जैसी वेशभूषा में आती हैं, उस समय गीत-संगीत बजता रहता है।

इसके पूर्व, जब माता को १४ स्वप्न आते हैं, उन विशिष्ट स्वप्नों का फल सुनने के लिए स्वप्न-पाठकों को राजसभा में बुलाये जाते हैं और उनसे एक-एक स्वप्न का फल सुना जाता है। राजा उन पंडितों को स्वर्णमुद्राओं का प्रीति-दान देता है। यह दृश्य भी बड़ा आकर्षक होता है !

भगवान का जन्म होता है तब देवलोक में इन्द्र का सिंहासन काँपता है।

इन्द्र अवधिज्ञान से देखता है। 'मेरा इन्द्रासन किसने हिलाया ?' व्याकुलता से वह देखता है। जब उसको मालुम होता है कि पृथ्वी पर तीर्थंकर का जन्म हुआ है, वह सिंहासन पर से उतर जाता है, पैर में से उपानह निकाल देता है और जिस दिशा में तीर्थंकर का जन्म हुआ होता है, उस दिशा में विशिष्ट आसनमुद्रा से बैठकर 'नमुत्थुणं–सूत्र' बोलता है। हर्ष से पुलकित होता हुआ बोलता है और बाद में सेनापति को बुलवा कर, उनसे 'सुघोषा' घंटा बजवाता है। लाखों देव इकट्ठे हो जाते हैं। देवों के साथ इन्द्र, नवजात तीर्थंकर को लेकर 'मेरूपर्वत' के उपर जाते हैं। ६४ इन्द्र इकट्ठे होते हैं। वहाँ पर तीर्थंकर पर अभिषेक किये जाते हैं। अभिषेक के पश्चात् इन्द्र, बैल का रूप धर कर, तीर्थंकर के सामने नृत्य करता है। जैसे कि वह कहता है – 'हे भगवंत, मैं आपके सामने इन्द्र नहीं हूँ, बैल जैसा बुद्धिहीन हूँ !'

बाद में जाकर माता के पास भगवान को रख देते हैं। माता का भी इन्द्र आदर करते हैं। तीर्थंकर को जन्म देनेवाली माता भी उतनी ही पुण्यशालिनी और महान होती है।

मेरूपर्वत की रचना की जाती है। उसके उपर ६४ इन्द्र–इन्द्राणी वगैरह जाते हैं, अभिषेक करते हैं – यह दृश्य प्रभावोत्पादक होता है। 'देव–देवेन्द्र भी तीर्थंकर के भक्त होते हैं,' यह बात अजैन लोगों को बहुत ही प्रभावित करती है। जब स्टेज के उपर यह कार्यक्रम चलता होता है, उस समय या तो मुनिराज अथवा कोई गृहस्थ, प्रसंग को समझाते जाते हैं। रनिंग कोमेंट्री चलती रहती है।

करीबन चार घंटे का यह कार्यक्रम–महोत्सव होता है। इसमें जैन–अजैन सभी लोगों को निमंत्रित करने चाहिए।

जिनशासन की इस प्रकार उन्नति करनी चाहिए।

## यह कोई धर्मान्तर की बात नहीं है :

आप लोग ऐसा मत सोचना कि हम दूसरे लोगों को 'जैन' बनाकर अपनी जैनों की संख्या बढ़ाने का प्रयास करते हैं। जैनधर्म, संख्या से बढ़कर गुणवत्ता को ज्यादा महत्त्व देता है। भले ही जैन थोड़े हों, परंतु 'क्वालिटी' होनी चाहिए।

गुणवत्ता श्रेष्ठ होनी चाहिए ।

'जैनधर्म सभी लोग पाये,' ऐसी भावना हम सबकी होनी चाहिए । क्योंकि जैनधर्म, अपने सिद्धान्तों से सभी धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है । जैनधर्म का अनेकान्तवाद किसी धर्म में नहीं है । जैनधर्म का 'कर्मवाद' अद्भुत वैज्ञानिक सिद्धान्त है । जैनधर्म की 'अहिंसा' कितनी सूक्ष्म और व्यापक है ! यदि दुनिया के लोग इस धर्म का स्वीकार करें, तो दुनिया के बहुत–से झगड़े, बहुत–से युद्ध समाप्त हो जायँ ।

जैनधर्म का प्रभाव फैलाना हमारा कर्तव्य है । सहजता से कोई धर्म का स्वीकार करता है, तो उसका कल्याण होनेवाला है । यहाँ कोई लालच दी जाती नहीं है । करुणा से, दया से, दुःखी मनुष्यों के दुःख दूर करने की प्रवृत्ति, लालच नहीं कही जाती है ।

न किसी मनुष्य को हम भय बताते हैं कि 'तुम यदि जैनधर्म का स्वीकार नहीं करोगे, तो तुम नरक में जाओगे' । हाँ, हम यह कहते हैं कि तुम हिंसा वगैरह पाप करोगे, तो दुःखी हो जाओगे । जो मनुष्य दूसरे जीवों को दुःख देता है, वह स्वयं दुःखी होता ही है । यह बात तो सभी धर्म कहते हैं ।

अच्छी बात की ओर दूसरों को आकर्षित करना, कोई बुरी बात नहीं है । आज तो बुरी बातों की ओर लोगों को आकर्षित करने के लिए कितने विज्ञापन छपते हैं ? T.V. के उपर, रेड़ियों के उपर कैसे–कैसे विज्ञापन दिये जाते हैं ? कोई उसका विरोध नहीं करता है, जो कि करना चाहिए । विज्ञापनों में महिलाओं को जिस प्रकार बिभत्सता से दिखाई जाती हैं, बहुत ही निर्लज्ज बात है । नारीजगत का घोर अपमान है ।

## दान – सुपात्र को और विधिपूर्वक :

'जिनशासन की उन्नति' के सात उपाय बताने के बाद, दानधर्म के विषय में मार्गदर्शन देते हैं :

– विभवोचितं विधिना क्षेत्रदानम् ॥६८॥

– सत्कारादिर्विधिः निःसंगता च ॥६९॥

– वीतरागधर्मसाधवः क्षेत्रम् ॥७०॥

– यहाँ धन–संपत्ति के दान की बात नहीं है, सोना–चाँदी के दान की भी बात नहीं है, रुपये–पैसे के दान की भी बात नहीं है ! यहाँ तो अन्न, पानी, वस्त्र, औषध, पात्र, पुस्तक आदि वस्तुओं के दान की बात है !

– यह दान हर किसी मनुष्य को देने की बात नहीं है, वीतराग–सर्वज्ञशासन के साधु–साध्वी को देने की बात है ! जो संपूर्णतया समाज पर आधारित जीवन जीते हैं । न स्वयं कमाते हैं, न संग्रह करते हैं ।

– यह दान आपको अपनी शक्ति के अनुसार देना है । कर्जा करके दान नहीं देना है । न्याय–नीति और ईमानदारी से जो अर्थोपार्जन किया हो, उसमें से दान देना है । 'विभवोचितम्' का यह अर्थ है ।

– यह दान विधिपूर्वक देने का है । साधु–मुनिराज जब आपके घर पधारें, तब आप खड़े होकर 'मत्थएण वंदामि' बोलें और सत्कार करें । उचित आसन प्रदान करें, मुनिराज आसन पर बैठे, उसके बाद वंदन करें । वंदन करने के बाद विनती करें । आपके पास जो भी आहार, पानी, वस्त्र, औषध, पुस्तक आदि हो, उनके सामने रख दें और कहें – 'आपको जो भी उपयोगी हो, कृपा कर ग्रहण करें । आप ग्रहण करेंगे तो मेरे पर उपकार होगा ।' इस प्रकार आप आपकी विशुद्ध श्रद्धा को प्रगट करें ।

– और अंतिम बात है निःसंगता की । बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है यह । आपको जो दान देना है निःस्पृह भाव से देना है । इहलौकिक या पारलौकिक कोई फल की अपेक्षा रखे बिना देना है । न इहलौकिक फल की अपेक्षा रखनी चाहिए, न पारलौकिक फल की अपेक्षा रखनी चाहिए । एक मात्र मुक्ति की, मोक्ष की भावना से दान देना है । यह बात गंभीरता से समझना जरूरी है । निराशंस भाव से दान देना है ।

– यह दान सुपात्र साधुपुरुष मिलने पर, रोजाना देना है । शक्ति–अनुसार देना है । शक्ति से कम नहीं, शक्ति से ज्यादा नहीं ।

## दान विधिपूर्वक देना चाहिए :

यहाँ विधिपूर्वक दान देने की जो बात कही गई है, उसका अर्थ है विनय और विवेक। साधु–साध्वी आपके घर में प्रवेश करें, तब आप बैठे हो अथवा भोजन करते हो, आपको खड़े हो जाना चाहिए, यह पहली विधि है। यह विवेक है। दो हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर 'मत्थएण वंदामि' बोलना चाहिए। चाहें साधु–साध्वी दिन में एक बार आयें या दो बार आयें। 'मत्थएण वंदामि' बोलकर, खड़े होकर स्वागत करना, बैठने के लिए आसन देना। हाँ, मुनिराज खड़े हों तब तक वंदन (पंचांग प्रणिपात) नहीं करना चाहिए।

यह विधि जैसे कि आप भूल गये हो। साधु–मुनिराज खड़े हों, बैठे नहीं हो और आप लोग वंदना करते हो। मुनिराज बैठे, उसके बाद वंदन करना चाहिए। वंदन करने के बाद, आपके पास जो अन्न, वस्त्र वगैरह हो, उन वस्तुओं को प्रस्तुत करना चाहिए और विनती करनी चाहिए – 'आपके उपयोग में आये वो वस्तु ग्रहण करने की कृपा करें।'

ऐसा नहीं पूछना चाहिए कि 'महाराज सा. आपको क्या चाहिए ?' ऐसा पूछने पर, मुनिराज को विचार आता है कि "मुझे जो चाहिए वो इस घर में नहीं होगा, तो उनको संकोच होगा। शक्ति होगी तो लाने के लिए दौड़–धूप करेंगे, शक्ति नहीं होगी खरीद कर लाने की, तो शर्म आयेगी।" इसीलिए मुनिराज कुछ माँगे बिना चले जायेंगे !

वर्तमान काल की परिस्थिति मैं जानता हूँ। साधु–मुनिराज आपकी शक्ति और भक्ति देखकर बोल देते हैं, जो चाहिए वह मँगवा लेते हैं। यह परिस्थिति इसलिए पैदा हुई, आपने विधिपूर्वक उनको पूछने की पद्धति छोड़ दी। कभी कोई गाँव–नगर में कुछ परिवारों में यह पद्धति चल रही है, परंतु पाँच प्रतिशत परिवारों में !

हमारी साधु–साध्वी की प्राचीन आचार–मर्यादा यह थी कि हमें जो कुछ आहार, पानी, वस्त्र, पात्र, पुस्तक आदि चाहिए, गृहस्थों के घर जाकर ले आते थे। आजकल आहार–पानी लेने (पानी नहीं, आपके घर में आप गरम पानी पीते नहीं, इसलिए बनाते नहीं !) आते हैं ! वस्त्र, पात्र, पुस्तक आदि आप लोग

हमारे पास आकर देते हो ।

दान देने में भाव की प्रधानता होनी चाहिए । द्रव्य तो शक्ति–अनुसार आप दे सकते हैं, भाव तो श्रेष्ठ ही चाहिए । दान देते समय आप मुनिराज के गुणों की ओर ही देखना । जिस प्रकार दूध पीनेवाले दूध की ओर देखते हैं, भैंस की काली चमड़ी की ओर नहीं देखते । वैसे ज्ञानी–चारित्री पुरुष के गुण ही देखें, उनके दुर्गुण की ओर नहीं देखें । दोष देखेंगे तो श्रद्धा, भक्ति और स्नेह नष्ट हो जायेगा । द्वेष हो जायेगा । गुण देखेंगे तो श्रद्धा वगैरह बना रहेगा ।

इस युग में, इस काल में साधु–साध्वी दोषरहित, अतिचार–रहित साधु जीवन का पालन नहीं कर सकते हैं, फिर भी जिस प्रकार पाँच महाव्रतों का पालन करते हैं, वह कम महत्त्व का नहीं है । वे पैदल चलते हैं, रात्रिभोजन नहीं करते हैं, अनेकविध कष्टों को सहते हैं । अजैन लोग इसका जितना मूल्यांकन करते हैं, अपने लोग नहीं कर सकते ।

## सुपात्रदान, निःस्पृहभाव से दें :

दान देने की विधि के अन्तर्गत टीकाकार आचार्यश्री ने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कह दी है ! उन्होंने कहा : दान देते समय या दान देने के बाद 'मुझे इस दान से इस जीवन में ऐसा–ऐसा फल मिले, परलोक में स्वर्गीय सुख मिले,' ऐसी अभिलाषा नहीं रखनी चाहिए । कुछ अभिलाषाओं के उदाहरण बताता हूँ :

– 'मैं मुनिराज को वस्त्र, पात्र, पुस्तक वगैरह दूँगा, तो मुनिराज अपने ज्ञान और प्रभाव के बल पर मुझे कोई मंत्र–यंत्र देंगे, जिससे मैं बहुत पैसे कमाऊँगा !'

– 'मैं मुनिराज को बढ़िया भिक्षा दूँगा, वस्त्र वगैरह दूँगा, उनकी भक्ति करूँगा, तो उनके आशीर्वाद से मुझे पुत्र की प्राप्ति होगी !'

– 'मैं मुनिराज को जो चाहिए, सब लाकर दूँगा, उनकी भक्ति करने से कोर्ट के मुकद्दमे मैं जीत जाऊँगा ! मेरे २५ लाख रुपये मिल जायेंगे ।'

– 'मैं मुनिराज की श्रेष्ठ वस्तुओं से भक्ति करूँगा, तो वे मेरे पर प्रसन्न होकर मुझे आपत्ति से बचा लेंगे !'

ये तो हुई मुनिराज से फल की अपेक्षा की बातें । कोई मनुष्य मुनिराज से

फल की अपेक्षा नहीं रखता है, परंतु साधारणतया फल की अपेक्षा करता है। जैसे कि :

– 'अपने मुनिवरों की, साधु–साध्वी की सेवा–भक्ति करेंगे, तो समाज में अपना नाम होगा, अपनी प्रशंसा होगी ।'

– 'अपने साधु–साध्वी की सेवा–भक्ति करेंगे, इससे अपने दुःख दूर होंगे, पुण्यकर्म उदय में आयेगा, सुखी होंगे ।'

– पारलौकिक सुखों की अपेक्षा भी मनुष्य करता है । जैसे कि उस ग्वाले के लड़के ने मुनिराज को खीर का दान दिया था, तो दूसरे जन्म में वह शालिभद्र बना और उसको प्रतिदिन देवलोक से भोजन–वस्त्र–स्वर्णालंकारों की ९९ पेटियाँ आती थी । दानधर्म प्रभावशाली है । अपने भी दान दें, जिससे परलोक में अपने को भी विपुल धन–संपत्ति मिलेगी !

इस प्रकार इहलौकिक और पारलौकिक फल की अभिलाषा नहीं रखने की है । दानधर्म का जो वास्तविक फल मिलता है, वह सामान्य मनुष्य की कल्पना के बाहर की बात है । फल माँगनेवाला सामान्य फल माँग लेता है, इससे वह महान श्रेष्ठ फल से वंचित रह जाता है ।

**सभा में से :** कुछ न कुछ फल की इच्छा जागृत हो ही जाती है !

**महाराजश्री :** आध्यात्मिक फल माँग सकते हो ! जैसे कि 'मुनिराज की भक्ति करने से मेरा चारित्रमोहनीय कर्म टूट जाय, तो मुझे चारित्र–धर्म की प्राप्ति हो जाय ! मुनिराज को दान देने से मेरा ज्ञानावरणीय कर्म टूट जाय, तो मुझे सम्यग् ज्ञान की प्राप्ति हो जाय ! मुनिराज को दान देने से, उनकी भक्ति करने से मेरा वीर्यान्तराय कर्म टूट जाय, तो धर्म–पुरुषार्थ में मेरा उल्लास बढ़े । मुनिराज को दान देने से उनकी कृपा का मैं पात्र बनूँ और मेरे मन में क्षमा, नम्रता वगैरह गुणों का आविर्भाव हों । उनकी भक्ति करने से मेरा मन पवित्र बनें, मेरे मन में अच्छे विचार जागृत हो !'

ऐसे–ऐसे फल की अभिलाषा कर सकते हो । परंतु ऐसी अभिलाषाएँ तभी जागृत होगी, जब आपके चित्त में भौतिक–वैषयिक सुखों के प्रति वैराग्य पैदा

हुआ होगा । अथवा, 'देव-गुरु से मुझे संसार के सुख माँगने ही नहीं है,' ऐसा दढ़ निर्णय होगा ।

## मोक्षफल कौन माँग सकता है ? :

आप मोक्षफल भी माँग सकते हो । परंतु मोक्षफल की अभिलाषा मन में पैदा हुई हो तो । मोक्ष आपको पसंद आया हो तो !

**सभा में से :** 'मोक्ष' की कल्पना ही नहीं कर सकते हैं !

**महाराजश्री :** तो फिर मोक्षफल माँगने की बात ही कहाँ रहती है ? पहले मोक्ष का स्वरूप समझना चाहिए । आत्मा का विशुद्ध स्वरूप ही मोक्ष का स्वरूप है । आपको आत्मा की स्वभाव-दशा प्रिय लगी है ? विभाव-दशा से आप मुक्त होना चाहते हो ? जब तक विभाव-दशा प्रिय लगती है, स्वभाव-दशा का बोध नहीं है, स्वभाव-दशा का तीव्र आकर्षण नहीं है, तब तक मोक्षफल माँगने की बात गलत है । जिसको हम जानते नहीं, समझते नहीं, हमें जो प्रिय नहीं - वह माँगना मूर्खता ही है ।

इस जनम में माँगने पर भी मोक्ष मिलनेवाला नहीं है, फिर भी कल्पना करें कि माँगने से मोक्ष मिलता है ! आपने मंदिर में जाकर परमात्मा से मोक्ष माँगा, उसी समय भगवान की मूर्ति बोले कि 'तूझे मोक्ष देता हूँ, तूँ संसार छोड़कर यहाँ आ जा, आज ही आ जा !' तो आप संसार छोड़कर पहुँच जायेंगे क्या मंदिर में ? जरा आत्मसाक्षी से सोचो ।

सर्वप्रथम 'मोक्ष' को समझने का प्रयत्न करो । विशुद्ध आत्मदशा को समझने का प्रयत्न करो । वह आपको प्रिय लगे और अशुद्ध आत्मदशा अप्रिय लगे, तब आप मोक्ष माँग सकते हो ।

जिसको विशुद्ध आत्मदशा पाने की तीव्र इच्छा जागृत होती है, वह मनुष्य क्या दुनिया के प्रपंचों में उलझेगा ? वह वैषयिक सुखों में आसक्त रहेगा ? आपकी स्थिति कैसी है, सोचो जरा ।

मोक्ष पाने का मार्ग जानते हो ? मोक्ष की बात दूर रखो । वहाँ पहुँचने का मार्ग जानते हो ?

**सभा में से :** जहाँ जाने की इच्छा ही जगी नहीं है, वहाँ जाने का मार्ग क्यों जानें ?

**महाराजश्री :** मैं यही बात कहता हूँ। पहले 'मोक्ष' को समझो। क्या है मोक्ष ? कहाँ है मोक्ष ? कैसा है मोक्ष ? वह कैसा सुख है ? वहाँ जो सुख होता है वह सुख आपको पसंद है ? ये सारी बातें गंभीरता से सोचो।

जब तक हृदय में विशुद्ध आत्मदशा पाने की तीव्र तमन्ना पैदा नहीं होगी और आप मोक्ष माँगते रहोगे, तो आपको लाख भवों में भी मिलनेवाला नहीं है। कर्मों से–पापकर्मों से और पुण्यकर्मों से अशुद्ध आत्मदशा ही प्रिय लगती है, तब तक मोक्ष माँगने का अभिनय करना दंभ है।

एक धार्मिक पुरुष ने मुझसे कहा : 'मैं तो जो भी दान, शील, तप वगैरह करता हूँ मोक्ष की इच्छा से ही करता हूँ।' मैंने उसको पूछा : 'आप क्या मोक्ष का स्वरूप मुझे समझा सकते हो ? मोक्ष की इच्छा, मोक्ष प्रिय लगे बिना जग नहीं सकती और मोक्ष तब प्रिय लगेगा, जब मोक्ष का अद्‌भुत स्वरूप आपने समझा होगा। बताइये मुझे मोक्ष का स्वरूप।'

उसने कहा : 'मोक्ष का स्वरूप तो मैं नहीं जानता हूँ।'

मैंने कहा : 'संसार में भी, जिस वस्तु को हमने देखा नहीं, उसका वर्णन सुना नहीं, क्या उस वस्तु की इच्छा जगेगी मन में ? आपने मोक्ष का स्वरूप जाना नहीं है, सुना नहीं है, पढ़ा नहीं है, तो आपके मन में मोक्ष की इच्छा पैदा ही नहीं हो सकती है।'

उस भाई ने कबूल किया कि 'हम मात्र बोलते हैं कि मोक्ष के लिए धर्म करना चाहिए, परंतु मोक्ष को तो जानते ही नहीं है !'

## आध्यात्मिक विकास का प्रारंभ :

मैंने कहा : 'मोक्ष का राग बहुत आगे की बात है, मोक्ष के प्रति अद्वेष होना पहली बात है। सर्वप्रथम मनुष्य को मोक्षद्वेष से मुक्त होना चाहिए। मोक्षद्वेष दूर होने पर गुणवान पुरुषों के प्रति द्वेष नहीं रहता है !'

कुछ धार्मिक लोग ऐसे दुराग्रही दिखाई देते हैं कि उनको समझाना संभव

ही नहीं होता । न ज्ञान होता है, न निर्मल बुद्धि होती है ! ऐसे लोग प्रज्ञापनीय नहीं होते हैं ।

आध्यात्मिक विकास के लिए सर्वप्रथम व्रतमय जीवन, श्रावक जीवन होना आवश्यक होता है । शुभ भावनाओं से अंतःकरण पवित्र होना आवश्यक होता है । संसार के वैषयिक सुखों के प्रति अनासक्ति का भाव होना जरूरी होता है ।

शुभ भावना से साधु–साध्वी को दान देते रहो । गुण–द्रष्टि से दान देना । दोष देखने के ही नहीं हैं । सर्वगुण–संपन्न साधु इस धरती पर कहीं भी नहीं मिलेगा ! और आपकी द्रष्टि गुणमय बनेगी तो सर्वत्र गुणवान साधुपुरुष मिलेंगे । द्रष्टि को सुधारना आवश्यक है । दोष–द्रष्टि का ऑपरेशन करा दो । जैसे मोतिये का ऑपरेशन कराते हो न ? वैसे ।

## साधुओं का स्वरूप :

जिन साधुपुरुषों को दान के लिए सुपात्र बताये, उन साधुओं का स्वरूप–दर्शन टीकाकार आचार्यश्री ने कराया है कि जिसको साधुपुरुष आत्मसात् कर सकें ।

क्षान्तो, दान्तो मुक्तो जितेन्द्रियः सत्यवागभयदाता ।
प्रोक्तस्त्रिदंड विरतो विधिग्रहिता भवति पात्रम् ।।

साधु क्षमाशील होता है, इन्द्रियों का दमन करनेवाला होता है, कषायों से मुक्त होता है, जितेन्द्रिय होता है, सत्यभाषी होता है, अभयदाता होता है और मन–वचन–काया की अशुभ प्रवृत्ति से विरत होता है । विधिपूर्वक दान ग्रहण करनेवाला होता है । ऐसा साधु दान के लिए पात्र होता है ।

इसका अर्थ यह है कि जो साधु क्षमाशीलता वगैरह गुणों को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है और विधिपूर्वक दान ग्रहण करता है, वह दान के लिए पात्र साधु होता है ।

– साधु को चाहिए कि वह क्षमाशील बने रहने का प्रयत्न करें ।

– साधु को चाहिए कि वह अपनी इन्द्रियों को संयम में रखें ।

– साधु को चाहिए कि वह कषायों से मुक्त रहने का पुरुषार्थ करें ।

- साधु को असत्य नहीं बोलना है। सत्य बोलना है।
- एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के सभी जीवों को अभयदान देना हैं।
- मन–वचन–काया को अशुभ से मुक्त रखना है। शुभ में प्रवृत्त रखना है।

अभ्यास करने का है इन बातों का। अभ्यास–दशा में भूलें भी होती रहती हैं, परंतु प्रायश्चित से आत्मा को निर्मल करने का होता है।

क्षमा का अभ्यास करनेवाला साधु क्षमाशील कहलाता है। इन्द्रियों पर संयम रखने का अभ्यास करनेवाला साधु जितेन्द्रिय कहलाता है। इस प्रकार दूसरी बातों में समझना। कोई साधु अभ्यास में ज्यादा सफलता पाता है, कोई साधु कम सफलता पाता है। होता है ऐसा। स्कूल में, एक क्लास में एक ही विद्यार्थी प्रथम आता है ! कोई दूसरा, कोई तीसरा और कोई पचासवाँ ! पास भी होते हैं और नापास भी होते हैं। फिर भी वे विद्यार्थी हैं, पुनः अभ्यास करेंगे, पास होने का प्रयत्न करेंगे। वैसे साधुओं का है। सभी साधु प्रथम नंबर में नहीं आ सकते ! कोई प्रथम, कोई द्वितीय, कोई तृतीय और कोई पचासवे नंबर पर ! परंतु है सभी साधु ! साधु को साधु के रूप में ही देखना है और दान देना है।

दान देने का श्रेष्ठ क्षेत्र है साधु ! इस क्षेत्र में दिया हुआ दान महान फल देता है। जिस क्षेत्र में बहुत धान्य पैदा होता है, उस क्षेत्र को श्रेष्ठ कहा जाता है। ऐसे क्षेत्र में बीज ज्यादा बोने चाहिए, ताकि फसल ज्यादा मिले !

## जिनशासन के साधुओं की श्रेष्ठता :

आप लोगों को जन्म से जैन साधु मिले हैं, इसलिए उनका मूल्यांकन नहीं कर सकते हैं। जो मनुष्य जन्म से श्रीमंत होता है, वह पैसे का मूल्यांकन नहीं कर सकता है ! यदि आप तुलनात्मक द्रष्टि से अध्ययन करेंगे, तो दुनिया में जितने भी धर्म हैं, उन धर्मों के साधुओं की जीवन–पद्धति, आचार–मर्यादा देखें और जैन–धर्म के साधुओं की आचार–मर्यादा देखें। तुलना करें, तब आपको जैनधर्म के साधुओं की श्रेष्ठता की प्रतीति होगी।

ऐसा मत मानना कि मैं जैन साधु हूँ, इसलिए जैन साधु को श्रेष्ठ कहता

हूँ, यह कोई अभिमान की बात नहीं है; परंतु मेरे अध्ययन से मुझे मालुम हुआ है। विश्व के धर्मों का मैंने अध्ययन किया है। इस आधार पर मैं कह सकता हूँ कि जैन साधु जैसी श्रेष्ठ जीवन-पद्धति किसी भी धर्म के साधु की नहीं है।

ऐसे साधुओं को विनय से, भक्ति से, विधिपूर्वक दान देकर सुकृत उपार्जन करें, यही मंगल कामना।

आज बस, इतना ही।

* * *

# प्रवचन : ४६

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में श्रावक जीवन की सुंदर दिनचर्या बताई है। समग्र जीवन के दौरान करने योग्य सत्कार्यों का भी निर्देश किया है।

सुपात्र–दान के विषय में स्पष्ट मार्गदर्शन देने के बाद, अब वे अनुकंपा–दान के विषय में मार्गदर्शन देते हुए कहते हैं –

**दुःखितेष्वनुकंपा यथाशक्ति द्रव्यतो भावतश्च !**

दुःखी जीवों को अनुकंपा से प्रेरित होकर दान देना चाहिए। द्रव्य से दान देना चाहिए, भाव से दान देना चाहिए। इस विषय में मैं आपको पाँच बातें समझाना चाहता हूँ :

- दुःखी होने के कारण,
- अनुकंपा का भावार्थ,
- 'यथाशक्ति' का अर्थ,
- द्रव्य–अनुकंपा का तात्पर्य और
- भाव–अनुकंपा का तात्पर्य।

इतनी बातें आप अच्छी तरह से समझ पाओगे, तब सही रूप से आप अनुकंपा–दान दे पाओगे। सर्वप्रथम दुःख के प्रमुख कारण बताता हूँ !

## दुःखी होने के कारण :

बीते हुए अनेक जन्मों से जीव अनेक पाप करता रहा है। मिथ्यात्व के कारण, अविरति के कारण, कषायों के कारण, प्रमादों के कारण जीव मन–वचन और काया से पाप करता रहा है। हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह वगैरह अनेक पाप करता रहा है। पाप करने से पापकर्मों को बाँधता रहा है। जब बाँधे हुए पापकर्म उदय में आते हैं, तब दुःख आते हैं। पापों से ही दुःख आते हैं, पापों से ही जीव दुःखी होता है।

इसलिए दुःखी मनुष्यों को समझना चाहिए कि 'हम हमारे ही बाँधे हुए पापकर्मों की वजह से दुःखी हुए हैं। दूसरे किसी का भी दोष नहीं है। जो पापकर्म पूर्व जन्मों में मैने बाँधे हैं, उन कर्मों को मुझे भोगना ही पड़ेगा। यदि इस जीवन में मैं पाप नहीं करूँगा, धर्म की आराधना करूँगा, तो आनेवाले जन्मों में मुझे दुःखी नहीं होना पड़ेगा। समताभाव से मुझे दुःखों को सहन करने के ही हैं।'

ऐसी समझदारी दुःखी मनुष्यों को होनी चाहिए। ऐसी समझदारी जिनको नहीं होती है, वे लोग दुःखी होने पर भी पाप करते हैं! यहाँ तो दुःखी है ही, आनेवाले जन्मों में भी वे दुःखी ही बने रहेंगे। ज्यादा पाप करेंगे, तो पशुयोनि में अथवा नरकयोनि में जाना पड़ेगा, वहाँ के घोर दुःख सहन करने होंगे।

## यहाँ सुखी, परलोक में दुःखी :

कुछ लोग ऐसे हैं, जिनको यहाँ पुण्यकर्म के उदय से सुख के अनेक साधन मिले हैं। पूर्व जन्मों में उन्होंने धर्म की आराधना कर पुण्यकर्म बाँधे थे, वे पुण्यकर्म इस जन्म में उदय आने से, सुख के अनेक साधन प्राप्त हुए हैं। परंतु उन साधनों का वे दुरुपयोग यदि करते हैं, पापाचरण करते हैं, तो आनेवाले जन्मों में वे दुःखी ही होनेवाले हैं। कुछ लोग, जो इस तत्त्वज्ञान से वंचित हैं, वे पूछते हैं :

'ये लोग इतने सारे पाप करते हैं, फिर भी वे कितने सुखी हैं ? हम उतने पाप नहीं करते हैं, फिर भी दुःखी हैं, ऐसा क्यों ?' इस प्रश्न का जवाब मिल गया न ? आप पूर्व जन्म के पापों का फल इस जन्म में भोग रहे हैं, उनको इस जन्म के पापों का फल आनेवाले जन्मों में भोगना पड़ेगा... इतना ही अन्तर है।

'पापों से ही दुःख आते हैं,' इस सिद्धान्त को हृदय में स्थापित कर लेना। अपने पाप ही अपने को दुःखी करते हैं और कोई दुःखी नहीं करता है। इस सिद्धान्त को मानकर चलोगे, तो दुःख ज्यादा नहीं सतायेगा। और हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह वगैरह पापों से बचने का भरसक प्रयत्न करते रहोगे। 'पापों से ही दुःख आते हैं,' इसलिए पापों से बचने का है।

इस जन्म में जो दुःखी हैं वे पूर्व जन्मों के पापी हैं – उनके प्रति अपने हृदय

में अनुकंपा का भाव पैदा होना चाहिए ।

## अनुकंपा :

पहले मैं आपको 'अनुकंपा' शब्द का अर्थ समझाता हूँ । यह शब्द समझना बहुत ही आवश्यक है । क्योंकि 'अनुकंपा' समकित का एक लक्षण है । इतना ही नहीं, **'चरमावर्त काल'** में आये हुए जीवों का भी यह विशिष्ट लक्षण है । 'दुःखी जीवों के प्रति अत्यंत दया' – चरमावर्त काल में आये हुए जीवों में अवश्य होती है ।

'अनु' और 'कम्पा' – दो शब्द हैं । मुख्य शब्द है 'कम्पा' । 'अनु' उपसर्ग है । कम्पा यानी कम्पन । काँपना । कोई जीव दुःख से काँपता है, उसको देखकर आपका मन–हृदय काँपने लगे, उसको कहते हैं अनुकंपा । 'अनु' का अर्थ है पच्चाद्–बाद में । कोई जीव दुःख से काँपता है, उसको देखने के बाद आप भी सहानुभूति से काँपने लगें – यह अनुकंपा है ।

अनुकंपा हृदय का गुण है । कठोरता हृदय का दोष है । दुःखी जीवों को देखकर हृदय में संवेदन नहीं उठता हो, तो समझना चाहिए कि वह मनुष्य है, परंतु उसमें मानवता नहीं है । धार्मिकता तो बहुत दूर की बात है ।

धर्म का प्रारंभ दया से, अनुकंपा से होता है । **'दया धरम का मूल है ।'** अन्य भारतीय और विदेशी धर्मों ने भी यह बात मानी है । जैनधर्म में तो बताया गया है कि धर्म का मूल ही दया है ! दया का मूल है जीवत्व के प्रति प्रेम । हम जीव हैं, दूसरे जीवों के प्रति हमारे हृदय में प्रेम होना ही चाहिए । जिसके उपर हमारा प्रेम होता है, वह यदि दुःखी होता है तो हम भी दुःखी हो जाते हैं । बस, इसी को 'अनुकंपा' कहते हैं । जीवतत्त्व के प्रति, आत्मतत्त्व के प्रति हमारे हृदय में प्रेम होना, अनुकंपा की जड़ है ।

अनुकंपा, मनुष्य के हृदय का शुभ भाव है । क्योंकि अनुकंपा से प्रेरित होकर मनुष्य परोपकार करता है । धर्मतत्त्व के परमार्थ को जाननेवालों का इस विषय में कोई मतभेद नहीं है । ज्ञानी महर्षि ने कहा है :

**'अन्योपकारकरणं धर्माय महीयसे च भवति ।'**

परोपकार करना महान धर्म का असाधारण हेतु है । कारण में कार्य का उपचार किया जाता है । इस द्रष्टि से परोपकार महान धर्म है ।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दुःखी जीवों को दुःख से काँपते हुए देखकर, आपका हृदय काँपना चाहिए । उसका दुःख, आपका आंतरिक दुःख बन जाना चाहिए। हालाँकि, 'चरमावर्त काल' में जीव का जब प्रवेश होता है, प्रवेश किया नहीं जाता है, हो जाता है, तब सहजता से अनुकंपा का भाव आत्मा में प्रगट होता है । 'काल' के साथ जुड़ा हुआ यह गुण है । जब तक जीव 'चरमावर्त काल' में प्रवेश नहीं करता है, तब तक यह गुण आत्मा में प्रगट नहीं होता है । अनुकंपा–दया के साथ–साथ दूसरे दो गुण भी प्रगट होते हैं । गुणवान मनुष्यों के प्रति अद्वेष और जीवन के हर क्षेत्र में उचित कर्तव्यों का पालन । ग्रंथकार आचार्यदेव ने अपने दूसरे एक ग्रंथ में यही बात कही है –

**दुःखितेषु दयात्यंतं अद्वेषो गुणवत्सु च ।**
**औचित्यपालनं चैव सर्वत्रैवाविशेषतः ।।**

**– योगद्रष्टि समुच्चय**

दुःखी जीवों के प्रति अत्यंत दया ही अनुकंपा है । दुःखी जीव अनुकंपा के ही पात्र होते हैं, दया के ही पात्र होते हैं । दुःखी जीवों से हमें दूसरी अपेक्षाएँ नहीं रखनी चाहिए । कोई दुःखी मनुष्य सही राँस्ते पर चलता है, कोई दुःखी जीव गलत रास्ते पर चलता है । दुःख ही ऐसा तत्त्व है कि वह मनुष्य को, सामान्य कोटि के मनुष्य को सन्मार्ग पर नहीं चलने देता है, पथभ्रष्ट कर देता है । दुःख, अति दुःख मनुष्य को पाप करने, गलत काम करने पर मजबूर कर देता है, इसलिए वह दयापात्र होता है । कोई जीव कर्मवश हो गलत काम करता है, वह भी दयापात्र है ।

दुःखी जीवों का तिरस्कार नहीं करें । हाँ, उनको सन्मार्ग पर लाने के उपाय के रूप में उसको फटकारना पड़े, तो जरूर फटकारें । उसको सुधारने के लिए शिक्षा करनी पड़े, तो अवश्य करें । भाव चाहिए दया का, अनुकंपा का, करुणा का ।

## अनुकंपा यथाशक्ति करना है :

ग्रंथकार आचार्यदेव ने अनुकंपा की बात करते समय आपका खयाल किया है । आपकी शक्ति के अनुसार दया–अनुकंपा करने की बात कही है । यह बात द्रव्य–दया के विषय में कही है । भाव–अनुकंपा में 'यथाशक्ति' का प्रश्न ही नहीं उठता है ।

आपकी आर्थिक स्थिति के अनुसार आपको द्रव्य–अनुकंपा करने की है । शक्ति से कम नहीं, शक्ति से ज्यादा नहीं । '**यथाशक्ति**' शब्द का यह अर्थ है । आजकल कुछ लोग इस शब्द का दुरुपयोग करते हैं । शक्ति बहुत होती है, परंतु दान कम देते हैं । फिर भी कहते हैं 'हम यथाशक्ति दान देते हैं ।'

एक श्रावक को ही मैंने पूछा : 'आपने कभी कोई भिखारी को पेटभर भोजन दिया है क्या ?'

उन्होंने कहा : 'नहीं, भिखारी आते हैं, एक–दो रोटी देते हैं । कभी बचाखुचा दाल–चावल देते हैं । झूठ नहीं बोलूँगा आपके पास, कभी पेट भर के भिखारी को नहीं खिलाया ।'

मैंने पूछा : 'क्या आपकी शक्ति नहीं है पेट भर के खिलाने की ?'

उन्होंने कहा : 'शक्ति तो है, परंतु भावना होनी चाहिए न ?'

मैंने कहा : आप किसी स्नेही–स्वजन के वहाँ भोजन करने गये और उन्होंने आपको परिमित भोजन ही दिया, आपको पेट भर के भोजन नहीं दिया, तो आपके मन में कोई दुःख होगा ?

उन्होंने कहा : 'दुःख कम होगा, द्वेष ज्यादा होगा ।'

मैंने कहा : तो फिर भिखारी के मन में क्या होगा ? उसको दुःख होगा न ? मान लो कि कहीं से उसको भिक्षा नहीं मिलेगी, तो वह भूखा रहेगा न ? आपकी शक्ति है तो आप भिखारी को, गरीब को पेट भर के खिलाया करो । शक्ति है तो वस्त्र भी दिया करो । शक्ति होने पर रोगी भिक्षुक को दवाई भी दिया करो । शक्ति मिली है तो सदुपयोग करो ।

## उपभोग नहीं, उपयोग करना है :

पुण्यकर्म के उदय से आपको सुख के अनेक साधन मिले हैं, यदि आप उपभोग करेंगे, सदुपयोग नहीं करेंगे, तो पापकर्म का बँधन होगा। उपभोग मर्यादित और सदुपयोग ज्यादा करेंगे, तो पुण्यबंध करेंगे। नया पुण्यकर्म बाँधते रहेंगे। अज्ञानी लोगों की धारणा दूसरी ही होती है। 'जितना ज्यादा मिला है सुख, उतना ज्यादा भोगने का।' हाँ, ये लोग तभी भोगोपभोग कम करते हैं, जब भोगोपभोग की उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है अथवा उनका शरीर रोगाक्रान्त हो जाता है। ऐसे लोग ज्यादा हैं दुनिया में। क्योंकि उनको मोक्षमार्ग नहीं मिला है, उनको श्रावक जीवन की कल्पना भी नहीं होती है। ऐसे लोग शक्ति से ज्यादा भोगोपभोग करते हैं, शक्ति से बहुत कम सदुपयोग करते हैं।

जो श्रावक है, जो सुज्ञ जैन है, जो ज्ञानी सद्गृहस्थ है, वह उपभोग कम करेगा, उपयोग ज्यादा करेगा। बंबई में एक सद्गृहस्थ को मैं जानता हूँ, वे पति-पत्नी दो ही हैं। उनका भोग-उपभोग का खर्च महिने का तीन हजार है, परंतु दान २५-५० हजार का देते हैं। वे समझते हैं कि भोगोपभोग से पुण्य क्षीण होता जाता है, सदुपयोग से पुण्य की वृद्धि होती है। भोगोपभोग बहुत मर्यादित रखने से हम सुखी हैं, हमें शान्ति मिलती है। सदुपयोग करने से हृदय आनंद से भरा हुआ रहता है।

अज्ञानी लोग अपनी शक्ति को या तो समझते नहीं हैं अथवा शक्ति के अनुसार दान, अनुकंपा-दान देने की भावना नहीं होती है। थोड़ा-सा दान देकर भी वे बोलते हैं : 'यथाशक्ति अनुकंपा-दान देते हैं।'

एक सज्जन को मैने समझाया कि 'आपकी शक्ति कितनी है। आप इतने-इतने अनुकंपा के कार्य कर सकते हो। दुःखी जीवों को दान दे सकते हो।' और वे अनुकंपा-दान देने लगे। उनको मालुम ही नहीं था कि दुःखी जीवों को अनुकंपा-दान देना धर्म है और मैं इतना सारा दान दे सकता हूँ।

एक सुखी परिवार के लड़के को मैंने कहा : 'किसी दुःखी मनुष्य को भोजन देकर भोजन करना चाहिए। इससे दुःखीजनों की दुआ मिलती है।'

बहुत समय के बाद वह लड़का मिला। उसने कहा कि "एक दिन हमारे घर के पास एक अँध भिक्षुक बैठा था। मैं बहुत भूखा हूँ, कोई मुझे भोजन दो!" ऐसा बार-बार बोलता था। मुझे दया आ गयी। मैं उस अँध भिक्षुक का हाथ पकड़कर मेरे घर के आँगन में, कम्पाउन्ड में ले आया और उसको भरपेट खिलाया। वह संतुष्ट हुआ। मेरी आवाज से उसको मालुम हुआ होगा कि मैं छोटा लड़का हूँ। उसने मुझसे कहा : बेटा, तुम पढ़ते हो न? मैंने कहा : हाँ, पढता हूँ। अभी हमारी परीक्षा चल रही है। वह रोमांचित होकर बोल उठा : "बेटा, तुम पास हो जाओगे।" वह अपने रास्ते चला गया, मैं स्कूल चला गया। महाराज सा. मुझे आशा नहीं थी कि मैं पास हो जाऊँगा। मेरे दो पेपर अच्छे नहीं गये थे। परंतु मैं पास हो गया। मेरे मन में उस वृद्ध, अँध पुरुष की दुआ के शब्द गूँज रहे थे। "बेटा, तुम पास हो जाओगे।" सचमुच, गरीब लोगों की दुआ फलती है।

यह प्रसंग उस लड़के को अनुकंपा-दान में प्रेरक बन गया। वह अपनी शक्ति के अनुरूप, यथाशक्ति अनुकंपा-दान देता रहता है। अपनी शक्ति के अनुसार अनुकंपा करते रहता है।

### द्रव्य-अनुकंपा :

शक्ति के अनुसार दुःखी जीवों को भोजन, वस्त्र वगैरह देना द्रव्य-अनुकंपा है। कोई न कोई वस्तु देना, जो दुःखी जीवों के लिए उपयोगी हो। दुःखी जीवों के प्रति सहानुभूति जताते हुए देना। तिरस्कार कभी नहीं करना।

याद रखना, इस जनम में नहीं तो भूतकाल के जन्मों में हमने भी दुःखमय, त्रासमय और करुणास्पद जीवन जीया हैं। और क्या पता आनेवाले भविष्य में हम दुःखी नहीं बनेंगे? उस समय हम भी दूसरों की अनुकंपा की अपेक्षा रखेंगे। इस जनम में यदि हमने दूसरे दुःखी जीवों के प्रति अनुकंपा जताई होगी, तो हमारे प्रति अनुकंपा जतानेवाले मिलेंगे।

### भाव-अनुकंपा :

टीकाकार आचार्यश्री ने यहाँ **भाव-अनुकंपा** की बहुत अच्छी बात कही है।

अपने जो 'भाव' समझते हैं कि भाव से यानी मन से अनुकंपा–दान देना चाहिए, यह बात नहीं है। यहाँ तो निराली ही बात बताई है। वे कहते हैं कि **दुःखी मनुष्यों के मन में वैराग्य का भाव पैदा करें।** उस उत्त्रसित मनुष्य को चार गतिमय संसार में भटकता हुआ जीव कैसे–कैसे कष्ट सहता है, यह बात सुनाइये। कैसी–कैसी वेदनाएँ जीव को सहनी पड़ती है – यह बात सुनाइये। संसार ही दुःखमय है – यह बात उसके मन में उतारिये। **उसको वैराग्य हो जाना चाहिए। यह भावात्मक अनुकंपा है।**

**सभा में से :** इसको दुःखगर्भित वैराग्य कहते हैं न ?

**महाराजश्री :** नहीं, संसार का वास्तविक स्वरूप जानकर यदि दुःखी जीव भी वैरागी बनता है, तो वह ज्ञानगर्भित वैराग्य कहा जायेगा। हाँ, दुःखी मनुष्य यह सोचता है कि इस गृहस्थ जीवन में दुःख ही दुःख है। न अच्छा खाने को मिलता है, न अच्छे वस्त्र मिलते हैं। प्रयत्न करने पर भी पैसे नहीं मिलते, क्या करना संसार में रहकर ? इसकी बजाय साधु बन जाऊँ। वहाँ खाने–पीने का दुःख तो नहीं है। वहाँ कपड़े मिलते हैं, मकान मिलता है और उपर से मान–सन्मान मिलता है। चलो, साधु बन जायँ।' यह है दुःखगर्भित वैराग्य। परंतु दुःखी जीव, संसार का वास्तविक स्वरूप जान लेता है, संसार की चारों गति के प्रति विरक्त बनता है, संसार के दुःख और सुख, दोनों के प्रति विरागी बनता है, तो वह ज्ञानगर्भित वैराग्य कहा जायेगा।

## दुःख में वैराग्यभाव जगना सरल :

जिनके पास भरपूर वैषयिक सुख होते हैं, उनको संसार के प्रति वैराग्य होना सरल नहीं होता। कहिये, आप लोगों के मन में वैराग्य पैदा हुआ है क्या ? रोजाना परमात्मा की पूजा करनेवाले भक्त लोग परमात्मा से 'वैराग्य' माँगते हैं। माँगते हो न ?

'जयवियराय' सूत्र में 'भवनिव्वेओ' शब्द आता है न ? 'भवनिव्वेओ' का अर्थ है संसार के प्रति वैराग्य।

**सभा में से :** हम सूत्र बोलते हैं, अर्थ नहीं जानते।

**महाराजश्री :** यही तकलीफ है न ? अर्थ नहीं जानते, यह अच्छा है न ? जानते तो 'भववैराग्य' माँगते ही नहीं । आपको तो संसार के सुख ही चाहिए न ? जिनको संसार के सुखों में आसक्ति होती है, वे वैराग्य क्यों माँगेंगे ? चाहिए वैराग्य ? तो माँगना ।

संसार छोड़कर साधु बनना मुश्किल लगता हो, तो भले साधु नहीं बने, परंतु वैरागी तो बन सकते हो न ? हृदय में वैराग्य होना ही चाहिए । आप तो श्रावक हैं, पाँचवे अथवा चौथे गुणस्थानक पर हैं । परंतु जो पहले गुणस्थानक पर हैं, वे भी वैरागी बन सकते हैं । संसार के उपर सहज वैराग्य पैदा होता है ।

आपमें वैराग्य होना ही चाहिए । समकित द्रष्टि जीव वैरागी होने चाहिए । उनका लक्षण है वैराग्य, उनका लक्षण है अनुकंपा । आप लोग समकित द्रष्टि तो हो न ? समकित का गुण प्रगट हो गया है न ? आत्मनिरीक्षण करना । अपने भीतर देखना ।

दुःखी मनुष्य को ऐसी प्रेरणा, ऐसा उपदेश देना चाहिए कि उनके हृदय में वैराग्यभाव जागृत हो । यह भाव–अनुकंपा हम साधु–साध्वी कर सकते हैं । हमें भाव–अनुकंपा करनी चाहिए और द्रव्य–अनुकंपा का उपदेश देना चाहिए ।

## विचारों में परिवर्तन करना आवश्यक :

आपका कर्तव्य अलग है, हमारा कर्तव्य अलग है । दुःखी जीवों के प्रति आपको द्रव्य–अनुकंपा करना है, हमें भाव–अनुकंपा करना है । भाव–अनुकंपा करते समय, दुःखी मनुष्यों का विचार–परिवर्तन करना होता है । राग–द्वेषमय विचारों को मिटाने का काम महत्त्वपूर्ण काम है । 'ब्रेइन–वॉशिंग' कर उनके मन में शान्ति, प्रसन्नता और विरक्ति के भाव भरने होते हैं ।

जब विचारों में विरक्ति आती है तब मनुष्य का दुःख आधा दूर हो जाता है । मनुष्य तन और धन से जितना दुःखी होता है, उससे ज्यादा वह मन से दुःखी होता है । राग–द्वेष मनुष्य को ज्यादा दुःखी करते हैं । राग–द्वेष मन के दोष हैं । उन दोषों को मिटाना, भाव–अनुकंपा है ।

## अनुकंपा करनेवालों को भी फायदा :

दुःखी लोगों की अनुकंपा करके आप उनकी कृतज्ञता, स्नेह और आदर पाते हैं। जो किसी न किसी रूप में तनाव से आपकी रक्षा करते हैं। वैज्ञानिकों ने अब यह जानकारी पायी है कि **अच्छे कार्यों से आपकी रोग–प्रतिरोधक शक्ति को भी लाभ पहुँचता है। मस्तिष्क और यह रोग–प्रतिरोधक शक्ति का एक–दूसरे से घनिष्ट संबंध है।**

ज्ञानतंतु, मस्तिष्क को अस्थिमज्जा तथा प्लीहा से जोड़ते हैं, जो रोग की संक्रामकता से लड़ने के लिए अपेक्षित कोशिकाओं का उत्पादन करते हैं। अनुसंधानकर्ताओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि श्वेत रक्तकण मस्तिष्क द्वारा उत्पादित रसायनों – 'न्यूरोपेप्टाइड़ों' के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। **हार्वर्ड विश्वविद्यालय (मासाचुसेट्स) के मनोवैज्ञानिक डेविड़ मैक्क्लेलैंड** ने छात्रों को परहितवाद (अनुकंपा) की मधर टेरेसा की एक फिल्म दिखाई। उसमें वे कलकत्ता के रूग्ण एवं निर्धन गरीबजनों के बीच कार्य कर रही थी। उसी समय छात्रों की लार का विश्लेषण किया गया। लार में इम्युनोग्लोबिन 'ए' की वृद्धि पाई गई, जो श्वास रोग के संक्रमण से बचाने में सहायक होता है।

इस क्रिया–प्रतिक्रिया की पुष्टि भले ही हो न सके, पर कुछ अनुसंधानकर्ताओं का अभिमत है कि अन्य लोगों के प्रति आपके रवैये का, आपके हृदयरोग से ग्रस्त होने की आशंका पर अद्‌भुत प्रभाव पड़ता है!

क्या आप जानते हो कि वैरभाव, हृदयरोग का जोखिम बढ़ा देता है। 'क्रोधित हृदय' संबंधी इस नई जानकारी पर **साउथ फ्लोरिडा विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक चार्ल्स स्पीलबर्गर** ने आगे खोज जारी रखी है। अनुसंधान पहले ही यह सिद्ध कर चूका था कि हड़बड़ाहट में निरंतर प्रतिस्पर्धा के वातावरण में निरंतर काम करनेवालों 'ए' किस्म के व्यक्तियों के हृदयरोग से ग्रस्त होने की संभावना अधिक होती है। कहने का उनका तात्पर्य यह है कि छिपा हुआ क्रोध, चिड़चिड़ापन तथा आक्रमक स्पर्धात्मकता ही हृदयरोग की संभावना बढ़ाते हैं।

अनुकंपा–दया का भाव आपके हृदय को शान्त, स्वस्थ और करुणावंत बनाये रखता है । आपके हृदय में द्वेष और वैर की भावना बहुत ही कम हो जाती है । इससे हृदयरोग की संभावना नष्टप्रायः हो जाती है ।

**ड्यूक विश्वविद्यालय आयुर्विज्ञान केन्द्र के विशेषज्ञ रेडफोर्ड विलियम्स,** एक अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जिस व्यक्ति में जितना अधिक द्वेष होता है, उसकी हृदय की धमनियाँ उतनी ही अधिक अवरुद्ध हो जाती है ।

**कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में कार्यरत डॉ. आर्निश,** रोगियों को दूसरों की भलाई करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं । यह निर्विवाद सत्य है कि परोपकार, अनुकंपा, दया मंगलकारी ही है । पडौसी की, दूसरों की मदद करना, उनके हित में तो है ही, हमारे भी हित में है ! अनुकंपा करने से हमें एक ऐसी अपार्थिव अनुभूति होती है कि मन का सारा कलुष धुल जाता है ।

## अनुकंपा में प्रेम और क्षमाशीलता चाहिए :

अनुकंपा करने में एक खतरा यह होता है कि जिस दुःखी मनुष्य को हम अनुकंपा–दान देते हैं, वे जब हमसे या दूसरों से अच्छा व्यवहार नहीं करते हैं, कटु शब्दों का प्रयोग करते हैं, कभी वे आपस में लड़ाई–झगड़ा करते हैं, तो हमारे मन में द्वेष आ जाता है । अनुकंपा–दान नहीं देने की भावना पैदा हो जाती है । 'हम ऐसे लोगों को दान नहीं देते तो अच्छा होता' ऐसी दुर्भावना उभरती है । जो नहीं उभरनी चाहिए । यदि आपके हृदय में उन दुःखी आत्माओं के प्रति प्रेम होगा, तो आप उनको क्षमा कर दोगे ! प्रेम ही मनुष्य को क्षमाशील बनाता है । माता को जैसे अपने बच्चे पर प्रेम होता है, तो बच्चा कितने भी अपराध करता है, तो भी माँ उसको क्षमा कर देती है । उसका क्रोध लंबे समय तक टिकता नहीं है । बच्चे को कभी मारती भी है, तो थोड़ी देर बाद में स्वयं रोती भी है ।

एक श्रीमंत श्रावक ने कहा : एक दिन मैंने, हमारे घर में नौकरी करनेवाली गरीब लड़की पर चोरी का आरोप मढ़ दिया और उस लड़की को बहुत मारा। बेचारी १२/१३ साल की लड़की बेहोश हो गई । उसकी माँ लड़की को घर ले गई, अस्पताल में भर्ती करा दिया । उस दिन मेरा खाना–पीना हराम हो गया,

नींद भी नहीं आयी । इतना ही नहीं, मेरा रक्तचाप भी बढ़ गया । दूसरे दिन मेरे पुत्र ने चोरी का अपराध स्वीकार कर लिया, तब मैं फफक–फफककर रो पड़ा । मैं भगा–भगा अस्पताल पहुँचा । उस लड़की के पास जाकर बैठा । उसके सर पर हाथ रखकर बोला : 'बेटी, मेरा अपराध माफ कर दोगी न ? चोरी तुमने नहीं की थी, मेरे बेटे पंकज ने की थी, उसने कबूल कर लिया है । तूँ अच्छी लड़की है, मैंने बहुत बुरा काम किया, तुझे बहुत मारा, अब कभी तुझे नहीं मारूँगा ।' लड़की ने मेरा हाथ पकड़ लिया और रो पड़ी ।

मेरा रक्तचाप नियमित हो गया । मुझे नींद आ गई । मैंने अपने आपको बहुत हलका महसूस किया ।

## हेनरी फोर्ड – धन का सदुपयोग :

समूचे संसार में ख्यातिप्राप्त मोटर–गाड़ी के निर्माता एवं संस्थान के मालिक 'हेनरी फोर्ड' के जीवन की एक घटना पढ़ी है ।

एक बार उनके पौत्र ने एक छोटा सिक्का यों ही बाहर फेंक दिया । हेनरी फोर्ड देख रहे थे । उन्होंने पौत्र को पूछा : 'बेटे, तुमने सिक्का क्यों फेंक दिया ?' पौत्र ने कहा : 'दादाजी, आपके पास तो बहुत धन है, फिर एक सिक्का फेंक देने से क्या फर्क पड़ता है !'

हेनरी फोर्ड ने कहा : 'बेटा, हमारी तरह सभी के पास धन नहीं होता और हमारे पास जो धन है वह फेंकने के लिए नहीं है । हमें यह धन इसलिए मिला है कि हम उसका ऐसा उपयोग करें जिससे, जिनके पास धन नहीं है, जो दुःखी है, उनको भी उस धन का लाभ मिले ! धन दुःखी, अनाथ और विकलांग मनुष्यों की सेवा में खर्च होना चाहिए ।'

हेनरी फोर्ड का यह मानवतावादी दृष्टिकोण आपको पसंद आया क्या ? स्वयं सादगी से जीते थे । कभी फटा हुआ कोट भी पहन लेते थे ! परंतु परोपकार के कार्यों में कोई कसर नहीं रखते थे ।

## मानवतावादी संस्थाएँ :

अलबत्त, आज कुछ वर्षों से अपने देश में गरीबों के लिए, अनाथजनों के

लिए, अँध और विकलांग स्त्री–पुरुषों के लिए सेवाभावी संस्थाएँ अच्छी तादाद में स्थापित हुई हैं । उन संस्थाओं में उन दुःखी जीवों की देखभाल होती है । मानवतावादी अनेक श्रीमंत, ऐसी संस्थाओं में हजारों–लाखों रुपयों का दान देते हैं । यह अनुकंपा–दान कहा जा सकता है । सरकारों की ओर से 'बेगर्स–होम' भी खुले हैं । वहाँ भिखारियों को रखे जाते हैं और उनसे काम लिया जाता है। उनको खाना, पीना और मकान मिलता है । उनका भटकना मिट जाता है ।

अनुकंपा, द्रव्य से और भाव से करते रहना है । जीवन का यह महत्त्वपूर्ण धर्मकार्य है ।

आज बस, इतना ही ।

* * *

# प्रवचन : ४७

परम कृपानिधि, महान श्रुतधर, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वजी ने स्वरचित 'धर्मबिंदु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में 'श्रावक जीवन' के विषय में विशद मार्गदर्शन दिया है । जिसको अच्छी तरह श्रावक जीवन जीना है, उसके लिए यह ग्रंथ अत्यंत उपादेय है !

द्रव्य–अनुकंपा और भाव–अनुकंपा की बात करने के बाद, ग्रंथकार ने एक सावधानी बताई है लोकापवाद से डरते रहना ।

**'लोकापवाद भीरुता'** ।।७२।।

मनुष्य समाज के साथ जुड़ा हुआ प्राणी है । वह समाज की उपेक्षा नहीं कर सकता है । जो समाज की निगाहों में गिर जाता है, वह समाज का भक्ष्य बन जाता है । खा जाता है समाज उसको । इसलिए दक्ष बनकर जीना है । गफलत में नहीं रहना है । अति विश्वास भी नहीं करता है । सीताजी ने अपनी सहपत्नियों के उपर विश्वास किया, अति विश्वास किया और उन रानियों के सामने रावण के पैरों के पंजे का चित्र बना डाला ! वह चित्र ही सीताजी के अरण्यवास का निमित्त बन गया। अयोध्या में इस चित्र की चर्चा इस तरह चल पड़ी कि 'रामपत्नी सीता, दिन–रात रावण को याद करती रहती है, रावण के शरीर के भिन्न–भिन्न अवयवों के चित्र बनाती रहती है !'

यह समाज है । इसने किसी को नहीं छोड़ा है । एक बार समाज की जबान पर जिसकी निन्दा शुरू हुई संभव है कि उस व्यक्ति को गाँव छोड़ना पड़े, देश छोड़ना पड़े अथवा देह छोड़ना पड़े । इसलिए ग्रंथकार आचार्यश्री कहते हैं लोकसमूह से, समाज से डरते रहो । ऐसा एक भी काम मत करो, जिससे समाज आपकी निन्दा करें ।

## लोकप्रियता बनाये रखो :

कोई भी कार्य करना है, बुद्धि से सोचकर किया करो । कार्य के प्रतिभावोंके बारे में सोचें । 'मैं यह कार्य करने जा रहा हूँ, मेरी भावना अच्छी है, परंतु समाज

मेरे कार्य को किस द्रष्टि से देखेगा' यह भी सोचना होगा। मात्र अपनी अच्छी भावना से काम नहीं चलेगा। अच्छे कार्य को भी समाज खराब निगाहों से देख सकता है। इसलिए जिस प्रकार, कार्य की अच्छाई–बुराई का विचार करना है, वैसे समाज किस द्रष्टि से कार्य को देख सकता है, यह भी सोचना आवश्यक है।

**सभा में से :** बहुत से लोग इस प्रकार सोच नहीं सकते हैं।

**महाराजश्री :** इसलिए वे समाज की निन्दा के पात्र बन जाते हैं। बाद में वे महसूस भी करते हैं कि 'हमने इस प्रकार काम नहीं किया होता तो अच्छा होता।'

आचार्यश्री कहते हैं कि 'जिस प्रकार आपकी लोकप्रियता बनी रहे, उस प्रकार सतत उचित प्रवृत्ति करते रहें। क्योंकि सभी इच्छाओं को पूर्ण करनेवाली लोकप्रियता है। आपकी लोकप्रियता समाज में सिद्ध हो जाने के बाद आप निश्चिंत रहें। आपकी निन्दा होनेवाली नहीं है!'

## सकल समीहित सिद्धिविधायिनी जनप्रियता :

जनप्रियता का कितना महत्त्व बताया है टीकाकार महान आचार्यदेव ने? सभी अभिलाषाओं की सिद्धि, जनप्रियता से हो सकती है। आपको समाज में प्रिय होना होगा। समाज में प्रिय बनने के लिए आपको उचित प्रवृत्तियाँ करनी पड़ेगी। निरंतर–सतत उचित प्रवृत्तियाँ करनी पड़ेगी। सर्वप्रथम आपको आत्मसाक्षी से दृढ़ निर्णय करना होगा कि 'मुझे लोकप्रिय बनना है।'

याद रहें कि कोई भी व्यक्ति जन्मजात लोकप्रिय नहीं बन सकता है। लोकप्रिय बनने के लिए कुछ गुण विकसित करने पड़ते हैं, कुछ जोखिमभरे अच्छे कार्य भी करने पड़ते हैं।

## सदैव दूसरों को श्रेय दीजिए :

लोकप्रिय बनने का पहला उपाय है दूसरों को श्रेय देना। ऐसे व्यक्तियों को श्रेय दो जो कि सही कार्य कर रहे हों। और फिर सबको उसके कार्य के बारे में बताओ। इससे उन लोगों में जो वफादारी की भावना जागेगी, वह निःसंदेह

ही आपकी बड़ी दौलत होगी । दूसरों को श्रेय देना ऐसा उदारतापूर्ण कार्य है कि जिसको कभी भुलाया नहीं जा सकता । लोकप्रियता पाने का यह पहला उचित उपाय है ।

## जान–बूझकर जोखिम उठाएँ :

जब आपके आसपास कोई जोखिमभरा कार्य उपस्थित हो, तब आप आगे आइये और उस कार्य को उठा ले । अधिकांश व्यक्ति इस बात की प्रतीक्षा करते हैं कि जोखिम का खतरा दूसरे व्यक्ति उठाएँ । परंतु आप यदि लोकप्रिय बनना चाहते हों, तो तुम्हें असफल होना सीखना चाहिए । क्योंकि जोखिम उठाने के विचार के साथ–साथ असफल होने की संभावनाएँ भी रहती है ।

दुःख और पछतावे से हारकर नहीं बैठ जाना चाहिए । अपनी पूरी शक्ति बटोरकर एक बार फिर से अपना काम शुरू करना चाहिए ।

## पथप्रदर्शक बनिये :

आपको लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए कार्य करने की अदम्य इच्छाशक्ति हाँसिल करनी होगी । आपके पास कोई भी व्यक्ति अपनी समस्या लेकर आये, अपने प्रश्न लेकर आये, आप मुस्कराते हुए उसका स्वागत करें और उनकी बातों को एकाग्रता से सुनिये । सुनकर, विचारकर, उनकी समस्या को सुलझाने का उपाय बताइये । उनके समक्ष शीशे की तरह बिलकुल साफ और सही तरीके पेश करो और उनको स्पष्ट रूप से बता दो कि 'तुम्हारी समस्या अवश्य सुलझ जायेगी, चिंता मत करो । जब भी मेरा काम हो, आप निःसंकोच मेरे पास आया करो ।'

इससे आपकी लोकप्रियता बढ़ेगी ।

## दूसरों में अपना विश्वास बनाये रखो :

बड़े लोकप्रिय बने हुए पुरुष कहते हैं : अगर तुम्हें यह भरोसा है कि दूसरा व्यक्ति अच्छा कार्य करता है, तो वे सदैव अच्छा कार्य करेंगे । दूसरे व्यक्तियों को यह समझाने का प्रयत्न करो कि आपका उनमें विश्वास है । किसी दूसरे व्यक्ति में पूर्ण विश्वास करना, उसे आत्मविश्वास और संतुष्टि प्रदान करता

है । आप उसके लिए परम प्रिय व्यक्ति बनोगे ।

## एक निश्चित कार्यक्षेत्र रखें :

लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए आपके पास अपना निश्चित कार्यक्षेत्र होना चाहिए । यदि निश्चित कार्यक्षेत्र आपके पास होगा और आप आम लोगों को स्पष्टता से कार्यक्षेत्र की जानकारी देंगे, तो वे आपका अनुसरण करेंगे । व्यक्ति ऐसे लोगों का अनुसरण करना चाहते हैं, जो वायदा करते हैं और बदले में सफलता प्रदान करते हैं । लोगों को आप जो कार्य करने का वायदा करते हो और वह कार्य पूर्ण करते हो, तो आपकी लोकप्रियता व्यापक बनेगी ।

## अपना कार्य करते रहो :

- आप शांति से, निश्चित भाव से कार्य करते रहें । आपको पता होना चाहिए कि आपकी मंजिल कहाँ है ।
- आपकी वेशभूषा और तौर–तरीके भी दूसरों के सामने महत्त्व रखते हैं ।
- आप सदैव प्रसन्नचित्त दिखलाई पड़ने चाहिए ।
- आपकी वाणी मिठासभरी और सुसंस्कृत होनी चाहिए ।
- आपका व्यवहार संयत और विश्वसनीय होना चाहिए । आप लोकप्रियता के शिखर पर पहुँच जायेंगे ।

## सक्षम व्यक्ति बनिये :

आपकी योग्यता और विशिष्टता आपके व्यक्तित्व के अभिन्न अंग हैं । योग्यता दूसरे व्यक्तियों पर ऐसा प्रभाव डालती है कि जिसकी वजह से वे लोग परामर्शों और निर्देशों के लिए तुम्हारी ओर देखने लगेंगे । आपके पास ज्ञान की शक्ति होनी चाहिए । ज्ञान से आपका व्यक्तित्व प्रभावपूर्ण बनाइये । लोकप्रियता का संपादन करने के लिए ज्ञानशक्ति अनिवार्य रूप से आवश्यक है ।

## यश बाँटते रहें :

कोई अच्छा, परोपकार का कार्य आपने किया । आपके साथ दूसरे आठ–

दस व्यक्ति ने भी उस कार्य में सहयोग दिया है । अब जब कार्य की सफलता के लिए अभिनंदन देने का समारोह हो, तब आप कहें कि इस कार्य में बहुत अधिक व्यक्ति मेरे साथ जूड़े हुए हैं । मैं अकेला यह कार्य कभी कर ही नहीं सकता, इसलिए इस कार्य का यश मेरे साथियों को मिलना चाहिए । अभिनंदन पहले उनको मिलने चाहिए ।'

लोकप्रियता का यह विशिष्ट गुण है । यश बाँटते चलो !

## शिष्टाचार का पालन करें :

सभ्य और शिष्ट आचरण, समाज के व्यवहार को सुचारु ढंग से चलाने के उपाय है । यदि हम एक–दूसरे के प्रति आदर प्रकट करते हैं, तो आपस में प्रेम बढ़ता है । आपका आचरण सभ्य और शिष्ट होगा, तो लोग आपकी प्रशंसा करेंगे । आप समाज में प्रिय बनोगे । शालीन व्यवहार करनेवाले व्यक्ति, अधिकांश परिस्थितियों में अधिक सफल रहते हैं ।

– सबसे अच्छे वकील भी आम तौर पर बहुत सभ्य और शिष्ट होते हैं ।

– कूटनीतिज्ञ भी अपने शिष्टाचार के लिए विश्व में प्रसिद्ध है ।

शिष्टाचार, लोकप्रियता बनाये रखने का असाधारण उपाय है । हाँ, आपको मालुम होना चाहिए शिष्टाचार की विविध पद्धतियाँ । जहाँ जिसके साथ जैसा शिष्टाचार करना उचित हो, वैसा ही करना चाहिए ।

## आश्वासन देते रहो :

शत्रु को भी मित्र बनानेवाला उपाय है आश्वासन देने का ।

– किसी के युवा–पुत्र की मृत्य हुई, आपको मालुम होते ही आप उसके घर चले जाइये । उचित शब्दों में, परिमित शब्दों में आश्वासन देते रहें ।

– बरसात में किसी व्यक्ति का घर गिर गया, वह बेघर हो गया, आप उसके पास जाइये और योग्य शब्दों में आश्वासन दीजिए ।

– कार–अकस्मात हुआ हो, रेल्वे–अकस्मात हुआ हो या प्लेन–अकस्मात हुआ हो, और उसमें आपके परिचित परिवार का कोई व्यक्ति मर गया अथवा

घायल हुआ है, आपको मालुम होते ही आप उसके घर चले जाइये और आश्वासन के, सहानुभूति के दो शब्द कहिये ।

## दूसरों का विश्वास निभाइये :

आपके उपर जिन्होंने विश्वास किया हो, उस विश्वास को किसी भी परिस्थिति में निभाने से आप अत्यंत लोकप्रिय बन जाओगे । आपके उपर विश्वास कर किसी व्यक्ति ने आपको सुरक्षित रखने के लिए, अथवा व्यापार करने के लिए पैसे दिये, समयावधि पूर्ण होने पर आप पैसे लौटा देते हैं, तो आपकी इज्जत बढ़ती है ।

आपके स्नेही ने, मित्र ने, आपके उपर विश्वास कर आपको कहा : 'हमें सप्ताह के लिए बाहरगाँव जाना है । दो बच्चों को तुम्हारे घर छोड़ कर जाते हैं । उनकी स्कूल चालू है । सँभालना ।' जब वे बाहरगाँव से आते हैं, बच्चे उनको कहते हैं, 'हमें यहाँ बहुत आनन्द आया । हमारा बहुत खयाल करते थे अंकल ।' बस, हो गया काम । उस परिवार में आप प्रिय बन गये !

## दूसरे लोगों में गहरी रुचि लें :

अमेरिका के प्रकाशन संस्थान रैंडम हाउस के भूतपूर्व अध्यक्ष 'बेनेट सर्फ' दुनिया के सर्वाधिक प्रिय व्यक्तियों में से एक थे ! न तो उनका व्यक्तित्व भव्य था, न उनकी आवाज प्रभावशाली थी और न ही वह कोई बढ़िया वक्ता थे। परंतु बेनेट हमेशा प्रफुल्ल दिखते थे और दूसरे लोगों में गहरी रुचि लेते थे। उनके साथ दस मिनट बिताने पर आप एकदम से उनसे बातचीत में तल्लीन हो जाते और वह बातचीत होती भी पूरी तरह से आप ही के बारे में !

## दूसरों को शान्त और सहज रखिये :

लोकप्रिय व्यक्ति में यह गुण होना अति आवश्यक है कि वह दूसरों को शान्त और सहज रख सके । उनको अपने भावों को नियंत्रित रखने चाहिए । इससे स्थितियाँ दूसरों के लिए सहज हो उठती है । दूसरे लोग उस व्यक्ति के प्रति श्रद्धावान बन जाते हैं । उनका कहा मानते हैं । उनको अपने बीच पाकर लोग प्रसन्न होते हैं ।

## पत्रव्यवहार में नियमित रहें :

एक लोकप्रिय व्यक्ति ने बताया कि वे पत्रव्यवहार में बहुत ही नियमित रहते हैं । कुछ पत्र वे अपने सेक्रेटरी से लिखवाते हैं, कुछ पत्र वे स्वयं लिखते हैं। उनका कहना है कि लोग उनके हस्ताक्षरों से बेहद खुश होते हैं । पत्र की भाषा का तो पूछना ही क्या ! भोजन छोड़ कर, T.V. देखना छोड़कर लोग पहले उनका पत्र पढ़ते हैं । उन्होंने बताया कि पत्र लंबा लिखना आवश्यक नहीं होता, हृदयस्पर्शी थोड़े शब्द ही पर्याप्त होते हैं । 'मैं तुम्हे बहुत चाहता हूँ,' 'मुझे तुम्हारे स्वास्थ्य की चिंता होती हैं', 'मैं तुम्हारे पत्र का इन्तजार करता हूँ' – ऐसे–ऐसे वाक्य तो लिखने ही चाहिए ।

## दूसरों की सहायता करते रहो :

आप अपनी सर्वोत्तम शारीरिक और मानसिक शक्ति, उद्देश्यहीन कामों में या टेलीविजन के निरर्थक कार्यक्रम देखने में मत नष्ट करो । दूसरों की भलाई में अपनी शक्ति का उपयोग करो । इससे आपकी शक्ति कम नहीं होगी । हम सभी में शक्ति का अमूल भंडार भरा है । जो इतना विशाल है कि इस्तेमाल करना तो दूर, हम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते । यदि हम अपनी शक्ति के इस अजस्र स्रोत का केवल १० प्रतिशत भाग का ही प्रयोग करें, तो जीवन में आमूलचूल परिवर्तन कर सकते हैं । मुख्य बात यह है कि हम शक्ति का सदुपयोग करें । दूसरों की सहायता करें ।

## सदैव कार्यरत रहिये :

कार्यरत होने का दृढ़ निश्चय, आपकी मानसिक और आध्यात्मिक शिथिलता दूर करने में सक्षम है । आप प्रत्येक काम नहीं कर सकते, किंतु एक काम तो कर सकते हैं । बाद में दूसरा, फिर तीसरा.... । काम शुरू करने के लिए आप एक कागज पर अपनी प्राथमिकता निर्धारित कीजिए । दैनिक, साप्ताहिक और मासिक कार्यों का विभाजन कर डालिए । बाद में सर्वप्रथम दैनिक कार्य कर ही डालिए ।

लोकप्रिय बनने के लिए आपकी कार्यदक्षता आवश्यक है । इतना ही नहीं,

जो कार्य जिस अवधि में करना है, उस अवधि में कर डालने का दृढ़ निश्चय करना चाहिए । निराश हुए बिना कार्य करते चलो । आपका दृढ़ निश्चय ही आपमें शक्ति भर देगा ।

कोई भी काम पूरा कर डालने की अवधि निर्धारित करने का एक सरल उपाय है कि आप अपना यह निश्चय आपके जीवन में महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के सामने प्रकट कर दीजिए ।

## गतिशील रहिये :

टीकाकार आचार्यश्री ने एक बात बहुत ही अच्छी कही है । आप कोई भी कार्य करें वह निपुण बुद्धि से विशेष रूप से सोच कर करें । कहा है '**निपुणमत्या विचिन्त्य....** ।' पूरी तैयारी बिना कोई काम मत शुरू कीजिए । योजना सोच-समझकर और समय लगाकर बनाइये । हाँ, परंतु योजना ही बनाते मत रहिये ! आप जितना और जो कुछ कर सकते हैं बस, करिये ! गतिशील बने रहें ।

हाँ, किसी भी काम के साथ पर्याप्त विश्राम भी आवश्यक है । परंतु कोई सार्थक काम किये बिना, आराम निराशा भर देता है । रचनात्मक और सर्जनात्मक कामों की कमी नहीं है । काम करते-करते ही आप अपनी शक्ति और सामर्थ्य बढ़ा सकते हैं । एक बात आपकी डायरी के पहले पेज पर लिखकर रखिये -'अकर्मण्यता क्षीणता, उदासीनता और निराशा की जननी है ।' निराश हो, केवल हाथ पर हाथ धरकर बैठने के लिए यह जीवन नहीं है ।

## सच्चाई बरतते रहें :

लोकप्रिय व्यक्ति बनने के लिए आपको सच्चाई बरतनी होगी । अपनी अनुभूतियों को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त सत्य, सबसे प्रभावशाली होता है। हाँ, दूसरों का अपमान करने और अपना काम निकालने के लिए सत्य का सहारा मत लेना ।

सत्य आचरण करने से आपमें जोखिम, चुनौती तथा उत्साह तो भरता ही है । साथ-साथ इन सबसे बढ़कर कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है कि सत्य-आचरण आपमें निहित शक्ति को प्रकट करता है ।

## दान देते रहें :

'धर्मरत्न प्रकरण' नाम के ग्रंथ में 'लोकप्रियता' को धर्मक्षेत्र में प्रवेश पाने का एक विशिष्ट गुण बताया है। धार्मिक लोगों में यह गुण होना आवश्यक बताया है, और कहा है कि लोकप्रिय बनने के लिए उदारता से दान देते रहो। प्रेम से दान देते रहो। आप लोकप्रिय बन जाओगे।

एक जैन दानवीर के घर चार मुसलमान चले गये। गुजरात के एक गाँव के मुसलमान–समाज के वे अग्रणी थे। अपने गाँव में मस्जिद बनानी थी। स्थानिक लोग गरीब और मध्यम कोटि के थे। चंदा करने वे बंबई आये थे। किसी ने उस जैन दानवीर का पता दे दिया! वे दानवीर लोकप्रिय थे।

उचित सत्कार करने के बाद दानवीर ने पूछा : 'कहिये साब, मेरे योग्य सेवा फरमाइये।' मुसलमान आगेवान ने कहा : 'शेठ साब, हम अपने गाँव में मस्जिद बनवा रहे हैं। चंदा करने बंबई आये हैं।'

'कितना खर्च करना है?' दानवीर ने पूछा।

मुसलमान आगेवान ने कहा : '१० हजार में काम पूरा हो जायेगा।'

'अच्छा....' दानवीर ने १० हजार का चेक लिख कर दे दिया।

मुसलमान आगेवान ने कहा : 'शेठ साब, इतने सारे रूपये आपसे नहीं चाहिए। पाँच हजार रुपये तो हमने हमारे लोगों से इकट्ठे कर लिये हैं! हमें ५ हजार ही चाहिए।

दानवीर ने मुस्करा दिया और कहा : 'मैंने तो चेक दे दिया आपको! वापस नहीं लूँगा। आप अपने गरीब भाइयों को सहायता करना, परंतु.... ' बोलते बोलते अटक गये शेठ।

मुसलमान आगेवान ने तूर्त कहा : 'कहिये शेठ! क्यों रूक गये?'

शेठ ने कहा : 'मेरी ऐसी इच्छा रहती है कि लोग मांसाहार छोड़े और जो मांसाहार का त्याग करें उनको सहायता करना, ऐसा मुझे कहना था।'

'अवश्य शेठ साब, हम आपकी इच्छा के अनुसार ही काम करेंगे। और, जब तक मस्जिद तैयार नहीं होगी, तब तक हम चार भाई जो यहाँ उपस्थित

हैं, मांसाहार का अभी से त्याग करते हैं ।'

जब ये चारों मुसलमान अपने वतन में गये, वहाँ यह बात बतायी, तो पूरे गाँव में शेठ की प्रशंसा होने लगी । वहाँ शेठ लोकप्रिय बन गये ।

## अहमदाबाद के कुँवरजी झवेरी :

दूसरी एक घटना है अहमदाबाद की । जिस समय भारत के उपर मुगल बादशाह अकबर का साम्राज्य था । अहमदाबाद का सुबा था शिहाबखान । उस समय जैनशासन के महान आचार्य हीरविजय सूरीश्वरजी गुजरात में विचरते थे । मुसलमान सुबाओं का जैनप्रजा के साथ अच्छा व्यवहार नहीं था । अहमदाबाद में आचार्यदेव को सुबा की ओर से परेशानी हुई थी ।

इस दुःखद परिस्थिति में, अहमदाबाद के श्रेष्ठी कुँवरजी झवेरी ने सोचा : सल्तनत के सामने अपना कुछ नहीं चलेगा । प्रजा को अपने पक्ष में लेनी चाहिए । प्रजा में अपनी लोकप्रियता बढ़ेगी तो सुबा को देख लेंगे । कुँवरजी झवेरी करोड़पति श्रावक थे । उन्होंने प्रजा को दान देना शुरू किया । प्रेम से देने लगे, उदारता से देने लगे । हिन्दुओं को देने लगे, मुसल्मानों को भी देने लगे ! दो–तीन महिनों में तो कुँवरजी झवेरी सारे अहमदाबाद में प्रिय व्यक्ति बन गये । सुबा भी उनकी इज्जत करने लगा ।

## मांडवगढ़ के महामंत्री पेथड़ शाह :

आपने पेथड़ शाह के विषय में बहुत कुछ सुना है । कई बार मैंने उनके जीवन की कई प्रेरणादायी बातें कही हैं । वे मांडवगढ़ के राज्य में लोकप्रिय थे । राजा से भी ज्यादा लोकप्रिय थे । परंतु उनको देवगिरि में देरासर बनवाना था । देवगिरि–राज्य का महामंत्री ब्राह्मण था । कट्टर ब्राह्मण था । देवगिरि में एक भी घर जैन का नहीं था ।

पेथड़ शाह ने सोचा : 'बलप्रयोग नहीं करना है । देवगिरि के महामंत्री को प्रेम से वश कर, काम करना है ।' बहुत गंभीरता से सोचा । निपुण बुद्धि से योजना बनाई । अपने अत्यंत विश्वसनीय राजपुरुषों को काम सौंपा । योजना गुप्त रखने की थी ।

मांडवगढ़–देवगिरि के राजमार्ग के उपर 'विश्रामगृह' बनाया गया। पानी, भोजन और विश्राम की निःशुल्क व्यवस्था की गई। वहाँ पर व्यवहारदक्ष और प्रियभाषी कर्मचारी रखे गये। जो भी मुसाफिर आते हैं, नये विश्रामगृह को देखते हैं, भीतर जाते हैं, पानी पीते हैं, भोजन करते हैं, आराम करते हैं और जाते समय पूछते हैं : 'यह विश्रामगृह किस महानुभाव ने बनवाया है ?' कर्मचारी कहते हैं : 'देवगिरि के महामंत्री ने बनवाया है !' हर मुसाफिर को यही जवाब मिलता है।

देवगिरि के मुसाफिरों ने महामंत्री के पास जाकर उनकी प्रशंसा की : 'कितना अच्छा विश्रामगृह आपने बनवाया है ? धन्य है आपको, धन्य है आपके माता-पिता को !'

महामंत्री आश्चर्य के सागर में डूब जाता है। वह सोचता है – 'मैंने तो विश्रामगृह बनवाया नहीं है। किसने बनवाया होगा और किसलिए बनाया होगा ? वह सारा यश मुझे क्यों दे रहा है ? राज़ क्या है – मुझे खोजना पड़ेगा।'

एक दिन महामंत्री स्वयं उस विश्रामगृह में जाता है। वहाँ के कर्मचारी देवगिरि के महामंत्री को पहचानते नहीं थे। महामंत्री ने सारी व्यवस्था देखी, प्रभावित हुआ। जाते समय पूछता है : 'यह विश्रामगृह किसने बनवाया है और कौन महानुभाव इतना सारा अर्थ व्यय करता है ?'

कर्मचारी ने वही जवाब दिया – 'देवगिरि के महामंत्री ने.....'

महामंत्री ने बात काटते हुए कहा : 'नहीं, गलत नाम लेते हो, मैं ही देवगिरि का महामंत्री हूँ। सच बताओ, मेरे यश को सर्वत्र फैलानेवाला मेरा मित्र है। उस मित्र को मैं जानना चाहता हूँ और मिलना चाहता हूँ।'

कर्मचारी ने प्रणाम कर कहा : 'क्षमा करें, हमारे मालिक की आज्ञा के अनुसार हम जवाब देते हैं।'

'कौन है आपके मालिक ?' महामंत्री ने पूछा।

'मांडवगढ़ के महामंत्री पेथड़ शाह !'

'ओह ! पेथड़ शाह ? क्यों यह सब कर रहे हैं ? मैं उनसे मिलूँगा।'

बाद में दोनों महामंत्री मिलते हैं। आपस में गाढ़ मैत्री बँधती है। देवगिरि

के मध्य में देरासर बँध जाता है !

दान से दोस्ती बनती है। दान से मनुष्य लोकप्रिय बनता है। दान से इच्छित कार्य की सफलता प्राप्त होती है ।

## उपसंहार :

लोकप्रिय व्यक्ति की समाज में निंदा नहीं होती है । लोकापवाद नहीं होता है। कभी लोकप्रिय व्यक्ति की छोटी–बड़ी भूल हो सकती है, परंतु समाज माफ कर देता है । चर्चा नहीं करता है । भूल को भूल जाता है ।

आप श्रावक हैं । आप लोकप्रिय होंगे, तो दूसरे लोगों को जैनधर्म के प्रति आदरवाले बना सकेंगे । आपकी वजह से जैनसंघ की प्रशंसा होगी । आपकी वजह से जैनसंघ को कोई उपद्रव नहीं होगा। इसलिए 'लोकप्रिय' बनने का निर्णय कर, जो उपाय बताये हैं, उन उपायों का अमल करें ।

आज बस, इतना ही ।

* * *

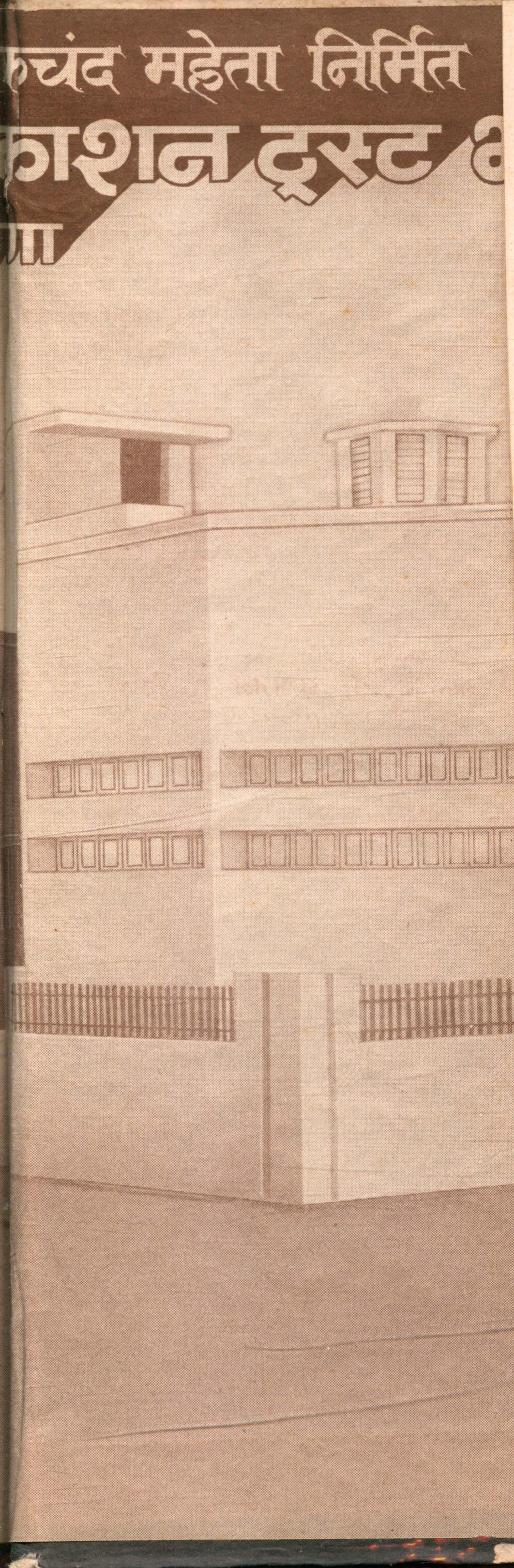


**श्री विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्ट**
कंबोईनगर के पास,
मेहसाना - 384002 (Gujarat)
***द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य***

- प्रशमरति भा. १-२
- न म्रियते
- सबसे ऊँची प्रेम सगाई
- नैन बहे दिन रैन
- राग विराग
- ज्ञानसार
- संसार सागर है
- मांगलिक
- मोती की खेती
- मायावी रानी
- प्रार्थना
- बच्चों का सुवास सेट (३ पुस्तकें)
- जिनदर्शन
- कथा दीप • छोटी सी बात
- फूलपत्ती
- पर्व प्रवचनमाला
- जिन्दगी इम्तिहान लेती है
- प्रीत किये दुःख होय
- जैन रामायण भा. १-२-३
- यही है जिन्दगी
- मारग साचा कौन बतावे
- श्रावकजीवन भा. १
- शोध प्रतिशोध
- द्वेष अद्वेष
- राजकुमार श्रेणिक.
- व्रतकथा
- बच्चों का विज्ञान सेट (३ पुस्तकें)
- चैत्यवंदन सूत्र
- नवपद भावना
- शुभरात्रि
- शांतसुधारस (सानुवाद)

**निकट भविष्य में (नवीन प्रकाशन)**

- कलिकाल सर्वज्ञ
- श्रावक जीवंन भा. २/३/४/

**निकट भविष्य में (पुन : प्रकाशन)**

- धम्मं सरणं पवज्जामि १/२
- जैन रामायण १/२/३/
- The Way of Life 1-2-3
- Jain Ramayana 1-2-3
- Bury Your Worry
- Guidelines of Jainism
- A code of conduct
- Tresure of Mind
- Rising Sun
- Story Story
- 13 Mini Booklets
- Science of Children (Atma-Karma-Dharma) -A set of 3 Book
- प्रतिमाह 'अरिहंत' के द्वारा ताजा चिंतन, प्रवचन, एवं साहित्य सर्जन

શ્રી વિશ્વ કલ્યાણ પ્રકાશન ટ્રસ્ટ • મહેસાણા